ही रहते हैं, जो जिस भावसे उन्हें भजता है, उसीके अनुकूल भावसे प्रभु भी उसके साथ प्रेम-व्यवहार करते हैं, यथा—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**' (गीता ४। ११)। दोनों भाइयोंका अत्यन्त प्रेम पूर्व कह आये हैं, यथा—'*पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनंदु अमाई।*' (३०७। ४) और यहाँ भी '*दंडवत करत दोउ भाई*' यह प्रेम दिखाया। इसकी जोड़में राजाका प्रेम यहाँ '*देखि नृपति उर सुखु न समाई*' कहकर दिखाया। इस प्रकार] यहाँ दोनों भाइयों और राजाकी अन्योन्य प्रीति दिखायी। दण्डवत्से व्यवहार-दक्षता दिखायी। '**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।**' (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—३ '*सुत हिय लाइ*' इति। (क) श्रीराम-लक्ष्मणजी राजाके प्राण हैं। (दोनों पुत्रोंको सौंपते समय राजाने विश्वामित्रसे यह बात स्वयं कही थी), यथा—'*मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ।*' (२०८। १०) (प्राण न रहनेसे शरीर मृतक हो जाता है। वैसे ही) मुनिके साथ दोनों पुत्रोंके जानेपर राजा मृतक-समान हो गये (अबतक मृतक-तुल्य रहे) अब प्राणोंसे भेंट हुई, प्राण हृदयमें रहता है, इसीसे हृदयमें लगानेसे '*प्रान जनु भेटे*' की उत्प्रेक्षा की। (ख) प्राणोंका निकलना ही 'दुःसह दुःख' है (मरते समय ऐसा ही दुःख होता है), यथा—'*जनमत मरत दुसह दुख होई।*' (७। १०९) श्रीराम-लक्ष्मणरूपी प्राणोंके जानेसे राजाको दुःसह दुःख रहा। (ग) 'हृदयमें लगाकर दुःसह दुःख मिटाया' कहनेका भाव कि जब प्राण अपने स्थान (हृदय) में आ गये तब दुःख मिट गया।

नोट—१ जब भगवान् राम चौदह वर्षके वनवासके पश्चात् श्रीअयोध्याजी आये उस समय माताओंका हर्ष भी इसी प्रकारका कहा गया है, यथा—'**पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः। आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो वाष्पौघैर्विजहुः शुचः॥**' (भा० ९। १०। ४८) अर्थात् (श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि) उस समय जैसे मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार हो जाय, वैसे ही माताएँ अपने पुत्रोंके आगमनसे हर्षित हो उठीं। उन्होंने उनको अपनी गोदमें बिठा लिया और अपने आँसुओंसे उनका अभिषेक किया। उस समय उनका सारा शोक मिट गया।'—ठीक यही सब भाव '*सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे॥*' में है। इसी तरह अपने सुहृद् विदुरजीको आये हुए जानकर जब श्रीयुधिष्ठिरजी भाइयों आदिसहित उनसे मिलनेको चले, तब उनके लिये श्रीसूतजीने यही उत्प्रेक्षा दी है कि वे ऐसे हर्षसे मिलने चले मानो मृत शरीरमें प्राण आ गया हो, यथा—'**तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः।**' ॥ ३॥'' **प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम्। अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वङ्गाभिवादनैः॥ ५॥ मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः॥ ६॥**' (भा० १। १३)

पुनि बसिष्ट पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥ ५॥
बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाई। मन भावती असीसैं पाईं॥ ६॥
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥ ७॥

अर्थ—फिर (अर्थात् पिताको दण्डवत् करनेके पश्चात्) उन्होंने वसिष्ठजीके चरणोंमें सिर नवाया। प्रेमसे आनन्दित होकर मुनिश्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया॥ ५॥ (तदनन्तर) दोनों भाइयोंने विप्रमण्डलीकी वन्दना की और सबसे मनभाई आशिषें पायीं॥ ६॥ भरतजीने छोटे भाई (श्रीशत्रुघ्नजी) सहित (श्रीरामजीको) प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रजीने (उन्हें) उठाकर हृदयसे लगा लिया॥ ७॥

टिप्पणी—१ '*पुनि बसिष्ट पद*' इति। (क) पिताजीसे मिलनेके पीछे वसिष्ठजीसे मिले, क्योंकि पिता वसिष्ठजीसे अधिक मान्य हैं, यथा—'**उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता। सहस्रं पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥**' इति। (मनुः) (दूसरे पिताका प्रेम सबसे अधिक है) इसी अभिप्रायसे पिताके प्रणाममें भी विशेषता दिखायी, पिताको साष्टाङ्ग दण्डवत् की थी और मुनिके चरणोंमें केवल सिर नवाया। (ख) '*प्रेम मुदित*' का भाव कि दोनों भाइयोंके धर्मकी मर्यादा देखकर प्रेम हुआ और आनन्दित हुए।

टिप्पणी—२ '*बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाई।*' इति (क)—वसिष्ठजीके चरणोंमें सिर नवाया और विप्रवृन्दकी

वन्दना की अर्थात् प्रणाम किया। (गुरुजीके चरणोंमें मस्तक नवाया और इनको केवल प्रणाम। यहाँ भी प्रणाममें विशेष और सामान्य भाव प्रत्यक्ष है। गुरु विप्रवृन्दसे विशेष हैं। इस तरह राजासे लेकर विप्रवृन्दतक क्रमशः विशेष और सामान्य दिखाया। (ख)—*'मन भावती असीसैं'* अर्थात् *'सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे'* यह आशीर्वाद मिला। **'मन भावती असीस'** का पाना कहकर जनाया कि आशीर्वाद सुनकर दोनों भाई सुखी हुए, जैसे विश्वामित्रजीने जब मनोरथ सुफल होनेका आशीर्वाद दिया था तब सुखी हुए थे, यथा—*'राम लखन सुनि भए सुखारे।'* (२३७। ४) 'मन भावती' अर्थात् मनोरथकी सफलता की; जो चाहते थे वही।

टिप्पणी—३ *'भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा।'''* इति। (क) [*'सहानुज'* से जनाया कि साथ-साथ दोनोंने प्रणाम किया] *'लिए उठाइ'* से जनाया कि पृथ्वीपर पड़कर (साष्टाङ्ग) प्रणाम किया था। यहाँ उठानेमें किसीका नाम न देकर जनाया कि दोनोंको साथ-साथ उठाया, क्योंकि यदि भरतजीका नाम लेते तो पाया जाता कि शत्रुघ्नजीको हृदयसे नहीं लगाया *'सहानुज कीन्ह प्रनामा'* और *'लिए उठाइ लाइ उर'* दोनोंके साथ हैं। [यदि एक-एकको उठाना कहते तो दूसरेके प्रति प्रेमका अभाव प्रकट होता। अतएव उठानेमें 'राम' नाम दिया; अर्थात् वे तो जगन्मात्रमें रमण करनेवाले हैं, सबको एक साथ रमा सकते हैं, उनके लिये दोनोंको एक साथ उठाना और हृदयसे लगाना क्या कठिन है। (प्र० सं०)] (ख) श्रीभरत-शत्रुघ्नजीका यहाँ विश्वामित्रजीको प्रणाम करना नहीं कहा गया, जैसे श्रीराम-लक्ष्मणजीका गुरु वसिष्ठादिको प्रणाम करना कहा गया? उत्तर—*'बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाईं'* यहाँ *'दुहुँ भाईं'* कहा, किसीका नाम नहीं दिया, वह केवल इसलिये कि अर्थ करनेमें इस तरह अन्वय वा अर्थ लगा लें कि श्रीराम-लक्ष्मण दुहुँ भाई विप्रवृन्द वन्दे एवं श्रीभरत-शत्रुघ्न दुहुँ भाई श्रीविश्वामित्रादि *'बिप्रबृंद बंदे'* (इसीसे इस अर्धालीको बीचमें रखा। नहीं तो जैसे उसके लिये सर्वनाम *'तिन्ह'* का प्रयोग किया वैसे ही *'दुहुँ भाईं'* की जगह वैसा ही सर्वनाम लिखते। प्रज्ञानानन्दस्वामीका मत है कि *'भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा'* में यह न खोला कि किसको प्रणाम किया। यह केवल इसलिये कि पाठक इसे पूर्व संदर्भके अनुसार विश्वात्रिजीमें और फिर श्रीरामजीमें लगा लें। (पर यहाँ उठा लेनेमें श्रीरामजीका नाम होनेसे यह प्रणाम किसको है स्पष्ट हो जाता है।)

हरषे लषन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥ ८॥

दो०—पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथा बिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत॥ ३०८॥

अर्थ—श्रीलक्ष्मणजी (श्रीभरत-शत्रुघ्न) दोनों भाइयोंको देखकर हर्षित हुए और प्रेमसे परिपूर्ण भरे हुए शरीरसे उनसे मिले॥ ८॥ परम कृपाल और विनीत (विनम्र, सुशील तथा नीति-व्यवहारयुक्त) प्रभु श्रीरामचन्द्रजी (श्रीअवधके) पुरवासियों, कुटुम्बियों, जातिके लोगों (रघुवंशियों), याचकों, मन्त्रियों और मित्रों सभीसे यथायोग्य मिले॥ ३०८॥

टिप्पणी—१ *'हरषे लषन'''* इति। (क) जैसे श्रीभरतजीने श्रीरामजीको प्रणाम किया वैसे ही श्रीलक्ष्मणजीने श्रीभरतजीको प्रणाम किया, यथा—*'भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम।'* (२। २४१) (चित्रकूटमें); और शत्रुघ्नजीने लक्ष्मणजीको प्रणाम किया। तब लक्ष्मणजीने उनको गलेसे लगा लिया, यथा—*'भेंटेउ लषन ललकि लघु भाई।'* (२। २४२। १) (ख)—*'हरषे लषन देखि दोउ भ्राता'* का अन्वय दोनों प्रकारसे होगा—लक्ष्मणजी दोनों भ्राताओंको देखकर हर्षित हुए तथा दोनों भ्राता लक्ष्मणजीको देखकर हर्षित हुए।

मा० पी० प्र० सं०—यहाँ लक्ष्मणजीका भरतजीको और शत्रुघ्नजीका लक्ष्मणजीको तथा भरतजीका विश्वामित्रजीको 'प्रणाम' करना नहीं लिखकर यह सूचित करते हैं कि जब श्रीरामजीने पिताको प्रणाम किया, उसी समय श्रीभरतजीने श्रीविश्वामित्रजीको और शत्रुघ्नजीने लक्ष्मणजीको प्रणाम किया। विस्तारके भयसे कविने इतनेहीसे सबका प्रणाम लक्षित कर दिया। प्रोफे० दीनजी कहते हैं कि *'मिले'* शब्दमें सबका उचित प्रणाम आदि आ जाता है।

टिप्पणी—२ '*पुरजन परिजन*…' इति। (क) '*मिले जथा बिधि सबहि*'—यथाविधि यह कि प्रथम पितासे मिले, तब वसिष्ठजीसे, इसी तरह क्रमशः भरतजी, शत्रुघ्नजी, पुरजन, परिजन, जातिजन, याचक, मन्त्री और मित्रोंसे मिले। अथवा पुरजन, परिजन…मीत, केवल इनसे मिलनेमें '*जथा बिधि*' मिलना कहा। अपनेसे जो छोटे हैं, जो बराबरके हैं और जो याचक हैं उनपर कृपा करके मिले और जो बड़े हैं उनसे विनम्र होकर मिले। [बड़ोंसे नम्रतापूर्वक मिले, छोटोंपर कृपा की, बराबरवालोंसे अंकमाल देकर (अर्थात् गले लगकर) मिले। (प्र० सं०)] '*सबहि*' सबसे मिलनेका भाव कि सबको श्रीरामजीके दर्शनोंकी लालसा है, यथा—'*सब के उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लषन दोउ बीर॥*' (३००) अतः प्रभु '*सबहि*' मिले। (ख) '*प्रभु*' इति। सबसे मिलनेमें '*प्रभु*' कहा। भाव यह कि इन सबोंसे एक साथ, एक ही समय और अत्यन्त अल्पकालमें अर्थात् पलमात्र या क्षणभरमें (क्योंकि सबको एक-सी दर्शन-लालसा है, सभीको परिपूर्ण प्रेम है) मिलनेमें आपने अपनी 'प्रभुता' प्रकट की कि श्रीलक्ष्मणजीसहित आप अनेक हो गये, जितने लोगोंसे मिलना था उतने ही रूप धारण कर लिये और किसीको यह रहस्य मालूम न हुआ। यही 'प्रभुता' है, यथा—'*प्रेमातुर सब लोग निहारी।*…*अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥*…*छन महुँ सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना॥*' (७। ६) '*अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥ यह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई। बिस्वरूप ब्यापक रघुराई॥*…' (४। २२)

रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥ १॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धनु धरमादिक तनु धारी॥ २॥
सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी॥ ३॥

अर्थ—श्रीरामजीको देखकर बारात शीतल हुई (अर्थात् बारातियोंके संतप्त हृदय एवं नेत्र शीतल हुए)। प्रीतिकी रीति (तो) बखानी नहीं जा सकती॥ १॥ राजा (श्रीदशरथजी) के पास चारों पुत्र ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, मानो धन-धर्मादि (चारों फल) शरीर धारण किये हुए (शोभित हैं)॥ २॥ पुत्रोंसहित श्रीदशरथजीको देखकर नगरके स्त्री-पुरुष बहुत ही प्रसन्न हो रहे हैं॥ ३॥

टिप्पणी—१ '*रामहि देखि*…' इति। [(क) पूर्व जो कहा था कि '*मनहुँ सरोवर तकेउ पिआसे।*' (३०७। ८) उसको यहाँ चरितार्थ कर रहे हैं।] श्रीराम-लक्ष्मणजी सरोवर हैं। सरोवरकी प्राप्तिसे शीतलता आती है, वैसे ही श्रीराम-लक्ष्मणजीकी प्राप्तिसे सब बारात शीतल हुई। '*कबहिं देखिबे नयन भरि राम लषन दोउ बीर*' यह जो दर्शनका मनोरथ सबका था वह पूर्ण हुआ। (ख) '*देखि*…*जुड़ानी*' इति। (सबके नेत्र दर्शनके लिये, '*कबहिं देखिबे नयन भरि*' इसीके लिये आकुल थे, इसीसे 'देखकर' जुड़ाना कहा।) तात्पर्य कि सबके नेत्र शीतल हुए। '*जुड़ानी*' का भाव कि सब अयोध्यावासी रामविरही थे, श्रीरामविरहसे संतप्त थे, विरह अग्निरूप है। यथा '*बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहि सरीरा॥*' (५। ३१) वह विरह मिट गया। [विरहाग्नि सरोवरका जल (श्रीराम-लक्ष्मणका दर्शन) पाकर बुझ गयी, सरोवरके सम्बन्धसे विरहको अग्नि कहा, क्योंकि अग्नि जलसे बुझ जाती है। उत्तरकाण्डमें श्रीरामजीको राकेश कहा है, उसके सम्बन्धसे विरहको सूर्य कहा है। यथा—'………*रघुपति बिरह दिनेस। अस्त भए बिकसित भईं निरखि राम राकेस।*' (७। ९)] इसी प्रकार श्रीसीताजीके वचन हैं—'*कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता।*' (५। १४) (मा० सं०) [पुनः भाव कि दूलहरहित बारात निर्जीव थी वह सजीव हुई। (वै०)] (ग) '*प्रीति कि रीति न जाति बखानी*' इति। प्रणाम करना, मिलना, देखना और शीतल होना इत्यादि ऊपरकी सब बातोंका वर्णन किया, परंतु अन्तर (हृदय) की प्रीति नहीं कहते बनती, इसीसे जवाब दिये देते हैं कि '*प्रीति कि रीति न जाति बखानी।*' (प्रीतिकी रीति ही ऐसी है कि उसका वर्णन हो नहीं सकता।

यथा—'*कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही।*' (१। ३२०) '*मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबि कुल अगम करम मन बानी॥*"' (२। २४१) श्रीअवधवासियोंको सब सुख (सब प्रकारके सुरपुर भोगविलास) प्राप्त हुए फिर भी वे बिना श्रीरामदर्शनके शीतल न हुए, संतप्त ही रहे, श्रीरामजीको देखकर हीं शीतल हुए, जैसे पपीहा (चातक) स्वातिबुन्द छोड़ किसी भी जलसे शीतल नहीं होता।—यह प्रीतिकी रीति है। [पुनः '*प्रीति*"*बखानी*' का भाव कि मिलनेमें, बोलनेमें जो प्रेमभाव प्रकट करते थे, वह कहा नहीं जा सकता। अथवा भाव कि आत्मसुखके जाननेवाले देह-सुखकी प्राप्तिसे अधिक प्रसन्न नहीं हो सकते, यह प्रीतिकी रीति है। (पं० रामवल्लभाशरणजी) मिलान कीजिये—'*सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद्र मुखचंद्र निहारी॥*' (२। १)]

टिप्पणी—२ '*नृप समीप सोहहिं सुत चारी*"' इति। भाव कि पूर्व दो पुत्र मुनिके पास थे और दो राजाके पास, अब चारों पुत्र राजाके पास हैं। '*नृप समीप सोहहिं*' का भाव कि अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये चारों पदार्थ राजाहीके यहाँ शोभा पाते हैं। 'धन' से अर्थ, धर्मसे 'धर्म' और 'आदि' से 'काम' और 'मोक्ष' कहे।

नोट—१ '*सोहहिं*' का तात्पर्य यह है कि राजाकी अर्थ-धर्मादिसे शोभा होती है और रामभक्त जो विरक्त हैं, यदि वे अर्थादिको ग्रहण करें तो उनकी शोभा नहीं, वे तो उनके होनेसे शोभारहित हो जाते हैं। अतः '*नृप समीप*' सोहना कहा। 'अर्थ-धर्मादि तो दशरथजीको स्वाभाविक प्राप्त थे ही, उससे उनकी शोभा अब कैसे कहते हैं?' इसीके समाधानके लिये '*तनु धारी*' शब्द दिये। भाव कि चारों फल तो सदा ही प्राप्त हैं, हाँ यदि वे शरीर धारणकर मूर्तिमान् होकर उनके पास आवें तो चक्रवर्तीजीके पास सोहैं (शोभित हों)। इस भावसे '*तनु धारी*' होना कहा।

टिप्पणी—३ '*जनु धनु धरमादिक तनु धारी*' इति। '*तनु धारी*' कहनेका भाव कि राजा ऐसे धर्मात्मा हैं कि चारों पदार्थ स्वरूप धारण करके मिले हैं। जब शरीरधारी होकर राजाको मिले तब सोह रहे हैं। तात्पर्य कि ऐसे ही मिलें तो इतनी शोभा न होती, क्योंकि राजाका सुकृत भारी है। सुकृतके अनुसार मिले तब शोभा हुई। अर्थरूप श्रीशत्रुघ्नजी, धर्मरूप श्रीभरतजी, कामरूप श्रीलक्ष्मणजी और मोक्षरूप श्रीरामजी हैं। दोनों भाइयोंकी जोड़ीके क्रमसे यहाँ कहा है।

नोट—२ ये चारों भाई अर्थ-धर्मादि नहीं हैं, ये तो चारों फलोंके भी फल हैं, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा की गयी। यहाँ 'अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

टिप्पणी—४ '*सुतन्ह समेत दसरथहि देखी।*' इति। नगरके सभी स्त्री-पुरुषोंके विशेष मुदित होनेका भाव कि—(क) राजाकी विशेष शोभा देखकर विशेष मुदित हुए। अथवा, (ख) पुत्रोंको देखकर मुदित और पुत्रोंसहित श्रीदशरथजीको देखकर विशेष मुदित हुए। अथवा, (ग) अन्योन्य शोभा देखकर मुदित हुए, नृपके समीप सुत शोभित हैं और पुत्रोंसहित दशरथजी शोभित हैं। अथवा, (घ) विशेष आनन्दसे सूचित किया कि ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होती है, जैसा आगे '*ब्रह्मानंद लोग सब लहहीं*' से स्पष्ट है। अथवा, (ङ) 'विशेष' मुदित हुए यह सोचकर कि ये चारों कुँवर परम सुकुमार परम सुन्दर और साथ ही वैसे ही परम ऐश्वर्यवान् हैं। अथवा, इससे कि प्रथम दो थे अब चार हुए। वा, इससे कि चारों भाइयोंसे चक्रवर्तीजीका और इनसे उनकी शोभा हो रही है। [पंजाबीजी और रा० प्र० के मतानुसार विशेष सुखी यह समझकर हुए कि चक्रवर्ती महाराजके चार पुत्र और राजा जनकके यहाँ चार कन्याएँ, यह विधि खूब बनी। (प्र० सं०) अथवा, नगर-नर मुदित हैं और पुरनारियाँ विशेष मुदित हैं। (पं०) अथवा, विशेष प्रसन्न हैं कि जैसे पुत्र सुन्दर हैं वैसे ही राजा भी सुन्दर हैं। (पं०) इससे स्पष्ट हुआ कि पुरनारियाँ जनवासेमें गयी थीं। (प० प० प्र०) पुनः, विशेष मुदितका भाव कि अब चारों भाइयोंको चारों दुलहिनोंसहित एक साथ बैठे देखनेको मिलेगा, वह शोभा कैसी अद्भुत होगी। (रा० प्र०)]

सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटी नाचहिं करि गाना॥ ४॥

सतानंदु* अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन॥५॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मागि फिरे अगवाना॥६॥

शब्दार्थ—**बरिसि** (वर्षि)=वृष्टि करके। **नाक**=आकाश, स्वर्ग, सुरलोक। **नटी**=नाचनेवाली। **नाकनटी**=आकाशमें नाचनेवाली=अप्सराएँ।

अर्थ—देवता लोग फूल बरसाकर डंके बजाते हैं, अप्सराएँ गा-गाकर नाच रही हैं॥ ४॥ (अगवानीमें आये हुए श्रीशतानन्दजी और विप्र एवं मन्त्री लोग, मागध, सूत, पण्डित और भाँट लोगोंने† बारातसहित राजाका आदर-सत्कार किया, (फिर ये) अगवानी लोग आज्ञा माँगकर लौटे॥५-६॥

टिप्पणी—१ *'सुमन बरिसि सुर''गाना'* इति। (क) भाव कि जो शोभा देख नगरके स्त्री-पुरुष मुदित हुए वही शोभा देखकर देवता और देवाङ्गनाएँ मुदित हुईं। (ख) गोस्वामीजी जीवोंके कल्याणके लिये यहाँ उपदेश करते हैं। वे अवधवासियोंको वेश्याओंका नाच देखना नहीं लिखते, स्वर्गकी अप्सराएँ भी जो नाच-गा रहीं हैं वे आकाशमें हैं। [कलियुगके लोगोंको मलिन मनवाले जानकर गोस्वामीजीने यहाँ वेश्याओंका बारातमें साथ जाना नहीं कहा। यह सोचकर कि यदि हम उनको यहाँ साथ लिखेंगे तो लोग हमारी तरफसे इसकी आज्ञा समझकर न जाने क्या कर उठावेंगे, अतः *'नाकनटी नाचहिं करि गाना।'* इतना ही कहकर रह गये। तात्पर्य कि बारातमें वेश्याओंकी प्रथा दूषित है। इस ग्रन्थके वक्ता और श्रोताओंको उनका त्याग करना चाहिये। आज भी राजा, रईस आदि बारातोंमें वेश्याको ले जाते हैं और उनका नृत्य-गान देखते-सुनते हैं, वह लोक-रीति भी यहाँ वेश्याओंके बदले *'नाकनटी'* का नृत्य-गान कहकर जना दी। (प्र० सं०) पर इस तीसरे संस्करणके समय प्रायः रेडियो (Radio) आदिने वेश्याओंकी प्रथा उठा दी है।]

टिप्पणी—२ *'सतानंदु अरु बिप्र''* इति। (क) शतानन्दजी आदिको गिनाकर यहाँ बड़े लोगोंसे मिलनेकी विधि दिखाते हैं कि इन सबोंका समूह साथ लेकर मिले। यथा—*'संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बर गुर ग्याति। चले मिलन मुनि नायकहि मुदित राउ येहि भाँति॥'* (२१४) (ख) यहाँ शतानन्दजी मुख्य हैं। जनक महाराज अगवानीमें नहीं आये; जबतक 'सामध' (समधौरा) नहीं होता तबतक कन्याका पिता वरके पितासे नहीं मिलता, यह रीति है। (ग) *'गन'* का सम्बन्ध सबसे है—विप्रगण, सचिवगण, मागधगण इत्यादि। यहाँ बारातकी अगवानीके लिये आये हैं, इसीसे मागध, सूत, बन्दीजन भी साथ हैं। (घ) शतानन्दजी आदिको गिनानेका दूसरा भाव यह है कि राजाके सम्मानके लिये ये ही लोग थे, इनके अतिरिक्त और जितने हाथी, घोड़े तथा रथके सवार इत्यादि अगवानीमें आये थे, वे सब देखनेवाले थे, देखकर चले गये। शतानन्दजी निमिकुलके पुरोहित हैं, जैसे वसिष्ठजी रघुवंशियोंके। इनका आदर श्रीवसिष्ठ और विश्वामित्रजीके समान होता था।

टिप्पणी—३ *'सहित बरात राउ सनमाना''''''।'* इति। (क) बारातसहित राजाके सम्मानका भाव यह है कि बिना बारातके सम्मानके केवल राजाका सम्मान करनेसे राजाका सम्मान नहीं होता (बारात राजाके साथ है। केवल राजाका सम्मान करनेसे राजा प्रसन्न न होते), इसीसे राजाहीके समान उन्होंने सब बारातियोंका भी सम्मान किया। (ख) *'आयसु मागि फिरे'* इति। आज्ञा माँगकर लौटना यह भी राजाका सम्मान है (और शिष्टाचार भी है)। (ग) *'फिरे अगवाना'* कहकर जनाया कि ये अगवानी लेने गये थे तबसे अब लौटे। [*'चले लेन अगवाना'* ३०४ उपक्रम है और *'फिरे अगवाना'* उपसंहार]

---

* १६६१ की प्रतिमें 'सदानंदु' पाठ है।

† अर्थान्तर—राजा दशरथने शतानन्दजी''''का आदर-सत्कार किया। (वै०, वीरकवि) प्रज्ञानानन्द स्वामी इसी अर्थके पक्षमें हैं। वे कहते हैं कि यदि यह अर्थ न किया जायगा तो राजा दशरथका श्रीशतानन्दादि विप्रवृन्दको नमस्कार भी सिद्ध न होगा। राजा विप्रोंको नमस्कार न करे यह कदापि सम्भव नहीं। बैजनाथजी लिखते हैं कि ब्राह्मणोंसहित श्रीशतानन्दजीका दान-मान-स्तुतिद्वारा सम्मान किया। मन्त्रियों आदिसे प्रेमपूर्वक वार्ता की और मागधादिको दान दिया।

प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई॥ ७॥
ब्रह्मानंदु लोगु सब लहहीं। बढ़हुँ दिवस निसि बिधि सन कहहीं॥ ८॥
दो०—रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज॥ ३०९॥

अर्थ—बारात लग्नसे पहले आ गयी। इससे नगरमें प्रमोद (अत्यन्त अधिक आनन्द) बढ़ता जा रहा है॥ ७॥ सब लोग ब्रह्मानन्द प्राप्त कर रहे हैं और ब्रह्माजीसे कहते (विनय करते) हैं कि दिन-रात बढ़ जायँ॥ ८॥ श्रीराम-सीताजी शोभाकी मर्यादा (सीमा) हैं और दोनों राजा पुण्यकी सीमा हैं—जहाँ-तहाँ पुरवासी स्त्री-पुरुषोंके समाज मिल-मिलकर ऐसा कह रहे हैं॥ ३०९॥

टिप्पणी—१ *'प्रथम बरात''* इति। (क) पुरवासियोंका प्रसङ्ग *'सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी॥'* (३) पर छोड़ा था, अब वहींसे फिर उठाते हैं—*'तातें पुर प्रमोदु अधिकाई।'* [(ख) बारात लग्नसे पहले ही आ गयी, इस कथनसे सिद्ध हुआ कि लग्न पूर्व ही निश्चित हो गयी थी और पुरवासी इसे जानते भी थे। यथा—*'लिखि लगन तिलक समाज सजि कुलगुरुहि अवध पठाएऊ।* ७०.........*दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ।* ....*'* (७३) (जानकी-मंगल) लग्न अर्थात् विवाहका मुहूर्त मार्गशीर्ष शु० ५ (अगहन सुदी पंचमी) को है। (गौड़जीके मतानुसार शु० ९को है) बारात कार्तिक कृ० १३ को आ गयी। इस प्रकार एक महीना ग्यारह (वा सात) दिन पहले ही बारात आ गयी।] (ग) *'तातें पुर प्रमोद'* इति। ***प्रमोद***=प्रकर्षसहित आनन्द। ***'प्रमोद'*** का भाव कि पुत्रोंसहित श्रीदशरथजीको देखकर आनन्द हो ही रहा था, उसपर दूसरा आनन्द यह है कि बारात लग्नसे पहले आ गयी है, इससे पुत्रोंसहित राजाके दर्शन बहुत दिनोंतक होते रहेंगे, अतः मोदसे अब ***'प्रमोद'*** हो गया, पहले मुदित थे अब प्रमुदित हो गये। (और यह प्रमोद भी बढ़ता ही जाता है) अथवा श्रीरामचन्द्रजीकी प्राप्ति ही ब्रह्मानन्द है, यथा—*'मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥'* (२। १०६) (भरद्वाजजी) इसीसे पुरनरनारि विशेष मुदित हैं। ब्रह्मानन्द अन्य सब आनन्दोंसे विशेष है, उसी विशेष आनन्दको यहाँ 'प्रमोद' कहा है, अगले चरणमें इसे ब्रह्मानन्द कहा ही है।

टिप्पणी—२ (क) *'ब्रह्मानंदु लोगु सब लहहीं'* इति। *'लोग सब लहहीं'* का भाव कि अभीतक श्रीजनकपुरमें ब्रह्मानन्द केवल श्रीजनकमहाराजको ही प्राप्त था, अब सब लोगोंको प्राप्त हो गया। [ब्रह्म ही अंशोंसहित चार भाइयोंके रूपमें प्रकट हुआ, यथा—*'अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकरबंस उदारा॥'* (१८७। २) *'अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥'* (१५२। २) इस प्रकार चारों भाई ब्रह्मरूप वा सच्चिदानन्द-विग्रह ही हैं। इसीसे सबको ब्रह्मानन्द प्राप्त हो रहा है। यहाँ ब्रह्मानन्द और कोई नहीं है। (प्र० सं०) (ख) ***'बढ़हुँ दिवस निसि'***—भाव यह कि लग्नकी तिथि तो बढ़ेगी नहीं, विवाह तो उसी मुहूर्तमें होगा, वह तो टलेगी नहीं और विवाह हो जानेपर बारात अवश्य लौट जायगी, अतः दिन और रात, जो अभी बीचमें हैं उन्हींको बढ़ा देनेकी प्रार्थना करते हैं—(प्र० सं०)] (ग) *'बिधि सन कहहीं'* इति। ब्रह्मासे प्रार्थना करनेमें भाव यह है कि ब्रह्माका दिन-रात सबसे बड़ा होता है। चारों युग सब एक हजार बार बीत जाते हैं तब ब्रह्माका एक दिन होता है, और इतनी ही बड़ी उनकी एक रात होती है। (यथा—**चतुर्युगसहस्त्राणि दिनमेकं पितामहः**', '**सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥**' (गीता ८। १७) अर्थात् ब्रह्माके दिनको सहस्रयुगतक रहनेवाला और रात्रिको भी सहस्रयुगतक रहनेवाली जो जानते हैं वे लोग दिन-रात्रिको जाननेवाले हैं।) अतएव उनसे विनती करते हैं कि आप इन दिनों और रातोंको अपने दिन और रातोंके समान बड़े कर दीजिये। लग्नके अभी बहुत दिन हैं पर उनको इतनेमें भी सन्तोष नहीं है, अतः विधाताको मनाते हैं। [यह प्रेमकी दशा है। भाव यह कि इनको सदा ही देखते रहनेकी चाह है। गीतावलीसे मिलान कीजिये—*'जबतें राम लषन चितए*

री। रहे इकटक नर नारि जनकपुर, लागे पलक कलप बितए री॥ प्रेम बिबस माँगत महेस सों देखत ही रहिए नित ए री॥ कै ए सदा बसहु इन्ह नयनन्हि कै ए नयन जाहु जित ए री।' (७६) पुरवासी मनाते हैं कि लग्नका दिन शीघ्र न आ जाय, नहीं तो हमारा आनन्द जाता रहेगा। यहाँ वियोगीकी अक्षमतामें 'उत्सुकता संचारीभाव' है। (वीरकवि) (प्र० सं०)]

टिप्पणी—३ *'रामु सीय सोभा अवधि'''* इति। (क) *'मिल नर नारि समाज'* अर्थात् स्त्रियोंके समाजमें स्त्रियाँ परस्पर एक-दूसरेसे कहती हैं [जैसा आगे *'कहहिं परस्पर कोकिलबयनी'* से स्पष्ट है] और पुरुषोंके समाजमें पुरुष परस्पर ऐसा कहते हैं। *'जनक सुकृत मूरति बैदेही।'* (३१०। १) से *'लेब भली बिधि लोचन लाहू।'* (३१०। ६) तक नरोंकी उक्ति है और *'कहहिं परस्पर कोकिलबयनी।'* (३१०। ७) से लेकर *'कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन।'* (३११) तक स्त्रियोंकी उक्ति है।—*'जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज'* इस उत्तरार्धका निर्वाह दोहा ३११ तक है।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥ १॥
इन्ह सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन्ह समान फल लाधे॥ २॥
इन्ह सम कोउ न भयेउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥ ३॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भये जग जनमि जनकपुर बासी॥ ४॥

शब्दार्थ—**देही**=देह, यथा—*'चोचन्ह मारि बिदारेसि देही।'* (३। २९। २०) **अवराधना**=आराधना करना; उपासना वा पूजा करना। यथा—*'केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू।'* (१। ७८) **लाधना**=प्राप्त करना, पाना। मरुकान्तार देशमें 'पाने' को '**लाधना**' कहते हैं। ☞यह शब्द 'राधना' का अपभ्रंश है। 'रकार-लकार-सावर्ण्य होनेसे 'राधे' को 'लाधे' कहा। '**राध संसिद्धौ**' राध साध धातुसे 'सम्यक् प्रकारकी सिद्धि' का अर्थ देता है।' (पं० रामकुमार) अथवा, 'लाध' लब्धका अपभ्रंश है। **लाधना**=उपलब्ध करना=प्राप्त करना।

अर्थ—श्रीजनकजीके सुकृतोंकी मूर्ति श्रीजानकीजी हैं। श्रीदशरथजीके सुकृत देह धरे हुए श्रीरामजी हैं॥ १॥ इनके समान किसीने भी शिवजीकी आराधना नहीं की (और) न इनके समान किसीने फल ही पाये॥ २॥ इनके समान संसारमें कभी कहीं भी कोई न हुआ, न है और न होनेवाला है॥ ३॥ हम सब सम्पूर्ण पुण्योंकी राशि हैं कि जगत्में जन्म लेकर श्रीजनकपुरके निवासी हुए॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) दोहेमें श्रीसीतारामजीकी शोभाकी अवधि, *'राम सीय सोभा अवधि',* कहा और यहाँ कहते हैं कि जनकजीके सुकृतोंकी मूर्ति वैदेहीजी हैं और दशरथ-सुकृत देह धरे श्रीराम हैं। इस प्रकार दोनों राजाओंके सुकृतोंकी शोभा कथन की गयी। अर्थात् जो श्रीराम-जानकीजीकी शोभा है वही इनके सुकृतोंकी शोभा है। पुनः, दोहेमें *'सुकृत अवधि दोउ राज'* कहकर अब यहाँ सुकृतोंके फलोंकी अवधि (सीमा) दिखाते हैं कि दोनों राजाओंका सुकृत श्रीराम-जानकी हैं, और श्रीराम-जानकी (फलकी) अवधि हैं। (ख) '**मूरति**' कहनेका भाव कि मूर्ति होनेसे सबको उनका दर्शन होता है; दर्शन होनेसे सब लोग (दर्शक) सुकृती हो जाते हैं, यथा—*'जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी।* [(ग) *'सुकृत अवधि दोउ राज'* कहा। अब सुकृतका स्वरूप कहते हैं। सुकृत फलके द्वारा जान पड़ता है, दूसरी तरह नहीं। श्रीसीतारामजी शोभाकी अवधि हैं सो इनको प्राप्त हैं, यह फल देखकर समझते हैं कि दोनों राजा सुकृतकी सीमा हैं। श्रीसीतारामजी ही उनके सुकृतोंकी शोभा और मर्यादारूप विराजमान हैं। पुनः, *'सुकृत अवधि'* कहनेका कारण यह कि परोक्ष सुकृत अपनेको सुख देते हैं और इन्होंने तो उनको मूर्तिमान् करके और सबको भी सुकृती बना दिया, जैसा आगे कह रहे हैं। (प्र० सं०)] (घ)—ये पुरवासी श्रीजनकपुरके हैं, इसीसे वे 'वैदेही' जीको प्रथम कहते हैं—*'जनक बैदेही'* (पीछे श्रीदशरथजी और श्रीरामजीको)।

टिप्पणी—२ *'इन्ह सम काहु न सिव अवराधे'''* इति। (क) दोनों राजाओंका कौन सुकृत है जो मूर्तिमान् श्रीराम-जानकी होकर प्रकट हुआ, यह यहाँ कहते हैं—*'इन्ह सम'''।'* अर्थात् श्रीशिवजीका आराधन

इनका सुकृत है। इस कथनसे जनाया कि शिवसेवासे श्रीराम-जानकीजीकी प्राप्ति होती है। (ख) *'काहु न इन्ह समान फल लाधे'* इति। शिवसेवाके समान दूसरा सुकृत नहीं है, इसीसे इसका फल भी सबसे अधिक है। आगे दोनों राजाओंके द्वारा शिवसेवाका माहात्म्य कहते हैं—*'इन्ह सम कोउ न भएउ'''।'* किसीने इनके समान फलकी सिद्धि नहीं की, अर्थात् श्रीराम-जानकीजीका अवतार किसीके यहाँ नहीं हुआ।

टिप्पणी—३ *'इन्ह सम कोउ न भयेउ'''* इति। *'भयेउ'* भूतकालिक, 'है' वर्तमान और *'होनेउ'* भविष्यकालिक क्रियाएँ हैं। तात्पर्य कि दोनों राजाओंके समान सुकृत तीनों कालोंमें कोई नहीं है। यह कहकर आगे अपनेको भी तीनों कालोंमें सुकृती कहते हैं। पुनः, भाव कि दोनों राजाओंने ऐसा भारी सुकृत किया कि उन्होंने अपने सुकृतोंसे तीनों कालोंके सुकृतियोंको जीत लिया। *'जग माहीं'*=ब्रह्माण्डभरमें। यथा—*'सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयेउ न है कोउ होनेउ नाहीं।'''।'* (२९४। ५-६) *'मोर भाग्य राउर गुनगाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥'* (३४२। ३) [भाव यह कि 'कन्या-पिता' में जनकसमान और 'पुत्र-पिता' में दशरथसमान भाग्यवान् त्रिकालमें कोई नहीं। 'सीता'-जैसी कन्या और राम-जैसा जामाता मिलनेके लिये जनकसमान और रामसरिस पुत्र तथा सीता-सी पुत्रवधूकी प्राप्तिके लिये दशरथसमान सुकृती होना चाहिये। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—४ *'हम सब सकल सुकृत'''* इति। (क) *'सकल सुकृत'* का वर्णन उत्तरकाण्डमें है, यथा—*'जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥ ज्ञान दया दम तीरथमज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥'* (७। ४९) (ख) *'भये जग जनमि'''*—भाव कि जगमें जन्म होना भी सुकृत है, क्योंकि जगत्के भी लोग श्रीराम-जानकीजीको देखते हैं। इस तरह *'सकल सुकृत कै रासी'* का भाव हुआ कि जगत्के लोग सुकृती हैं और हम जनकपुरमें पैदा हुए, इससे हम सकल सुकृतोंकी राशि हैं कि दिन-रात दोनोंकी छबिको देखते हैं। (पुनः, भाव कि चर-अचर जिसे एक बार भी दर्शन हुआ वह सुकृती है, यथा—*'धन्य भूमि बन पंथ पहारा।'''''हम सब धन्य सहित परिवारा॥ दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा।'* (२। १३६) इत्यादि। और हम रात-दिन देखते हैं अतः समस्त सुकृतोंकी राशि हैं।) (ग) *'जनकपुर बासी'*—भाव कि यदि यहाँ जन्म न होता तो यह लाभ न मिलता; यही आगे कहते हैं—*'जिन्ह जानकी राम'''।'* [यह सत्य ही है। अवधपुरकी स्त्रियोंको विवाह देखनेका सौभाग्य कहाँ? इसमें मिथिलावासियोंका भाग्य विशेष ही है। (प० प० प्र०) अवधवासी सभी पुरुषोंको भी यह सौभाग्य प्राप्त नहीं।]

जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिशेषी॥५॥
पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥६॥
कहहिं परसपर कोकिल बयनी। येहि बिआह बड़ लाभु सुनयनी॥७॥
बड़े भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई॥८॥
दो०—बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय॥३१०॥

अर्थ—जिन्होंने श्रीजानकीजी और श्रीरामजीकी छबि देखी (उन) हमारे समान विशेष (एवं हमारे समान अथवा विशेष) पुण्यात्मा कौन होगा?॥५॥ फिर (इतना ही नहीं किंतु अभी) श्रीरघुवीर-विवाह भी देखेंगे और भली प्रकार नेत्रोंका लाभ लेंगे॥६॥ जिनकी वाणी कोयलके समान मधुर, सुरीली और कोमल है वे कोकिलबयनी स्त्रियाँ एक-दूसरेसे कहती हैं कि हे सुनयनी (सुन्दर नेत्रोंवाली)! इस विवाहमें बड़ा लाभ है॥७॥ बड़े भाग्यसे (अर्थात् हमारे बड़े भाग्य हैं कि) विधाताने (सब) बात बना दी। दोनों भाई नेत्रोंके अतिथि होंगे॥८॥ प्रेमके वश जनक महाराज बार-बार श्रीसीताजीको बुलावेंगे (तब) करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर दोनों भाई उन्हें लेने (बिदा कराने) आया करेंगे॥३१०॥

टिप्पणी—१ *'जिन्ह जानकी राम'''* इति। (क) *'जिन्ह'* कहकर सभी जनकपुरवासियोंको सूचित किया। अर्थात् सब जनकपुरवासी हमलोग जिन-जिनने श्रीजानकी-रामजीकी छबि देखी। (*'हम'* और *'जिन्ह'* दोनों बहुवचन हैं। भाव यह कि हम सब जनकपुरवासी जिन्होंने यह छबि देखी है।) यदि *'जिन्ह'* न कहते तो केवल परस्पर बातचीत करनेवालोंहीका दर्शन करना (और सुकृती होना) पाया जाता। (ख) *'को सुकृती हम सरिस विशेषी'* इति। हमारे बराबर कौन है? और हमसे अधिक कौन है? अर्थात् सभी सुकृती हमसे न्यून हैं। [*'सरिस बिशेषी'* अर्थात् हमारे समान ही कोई नहीं, विशेषकी बात ही क्या? सब हमसे नीचे दर्जेमें हैं]। श्रीराम-जानकीजी श्रीदशरथ-जनकजीके सुकृत हैं, सो उनके दर्शनसे मिथिलावासी (अपनेको विशेष) सुकृती (कहते) हैं। तात्पर्य कि दोनों राजाओंके सुकृतसे सुकृती हैं, इसीसे वे अपनेको अद्वितीय सुकृती कहते हैं। पुनः प्रथम कहा कि दोनों राजाओंके समान जगमें कोई नहीं है। उसीपर (उसीकी पुष्टिमें) कहते हैं कि दोनों राजाओंके यहाँ तो श्रीराम-जानकीका अवतार हुआ, उनकी बराबरीका कौन हो सकता है (जब कि) हमलोगोंकी ही समानताका त्रिकालमें कोई नहीं है कि केवल उनके दर्शन ही कर रहे हैं। [यहाँ इस कथनसे जनाया कि दोनों राजा और दोनोंकी प्रजा सब-के-सब महान् सुकृती थे। प० प० प्र०]

टिप्पणी—२ *'पुनि देखब रघुबीर बिआहू'''।'* इति। (क) पुरवासी उत्तरोत्तर अपने सुकृतोंकी अधिकता कहते हैं—जनकपुरमें जन्म लेनेसे 'सुकृतकी राशि' हैं। फिर श्रीराम-जानकीजीकी छबि देखनेसे 'विशेष सुकृती' हैं और आगे श्रीरघुवीर-विवाह देखेंगे इससे विशेषतर सुकृती हैं। (ख) तीनों कालोंमें अपनेको सुकृती कहते हैं। *'भये जग जनमि जनकपुर बासी'* से भूतकालमें (क्योंकि जनकपुरवासी बहुत दिनोंसे हैं)। *'जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिशेषी'* से वर्तमानमें और *'पुनि देखब रघुबीर बिआहू'* से भविष्यमें सुकृती हैं। (तीनों कालोंमें अपने समान कोई सुकृती नहीं, यह जनाया) (ग) *'लेब भली बिधि'''*—भाव कि अभी तो जब ये निकलते हैं तब दर्शन होता है और विवाहमें निकटसे बैठकर दर्शन करेंगे। (घ) यहाँतक पुरुषोंकी उक्ति कही, आगे स्त्रियोंकी उक्ति है। (अथवा, यहाँतक स्त्री-पुरुषों दोनोंके वचन हैं। प० प० प्र०)

टिप्पणी—३ *'कहहिं परसपर'''*' इति। (क) *'कहहिं'* के सम्बन्धसे *'कोकिलबयनी'* कहा। तात्पर्य कि मधुर वाणीसे बात करती हैं। देखनेके सम्बन्धसे *'सुनयनी'* कहा, देखना आगे लिखते हैं—*'नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई।'* पुनः *'कहहिं'* के साथ कोकिलबयनी विशेषण दिया गया और 'विवाह' के सम्बन्धसे *'सुनयनी'* कहा, क्योंकि श्रीराम-जानकीसम्बन्धी वार्ता करती हैं और नेत्रोंसे श्रीरामदूलहकी छबि देखेंगी (प्र० सं०) [अवधवासिनी साधारण स्त्रियोंके सम्बन्धमें कहा कि *'सुनि कलरव कलकंठि लजानी॥'* (२९७। ३) और मिथिलावासिनियोंको *'कोकिलबयनी'* कहते हैं। इस तरह अवधपुरीकी स्त्रियोंकी विशेषता दिखायी। प० प० प्र०।] (ख) *'बड़ लाभु'* *'येहि बिआह बड़ लाभु सुनयनीं'* इति। 'लाभ' यह कि अभी देखती हैं, आगे विवाह देखेंगी और विवाह हो जानेपर दोनों भाई श्रीजानकीजीको विदा कराने बारम्बार आयेंगे तब देखेंगी। पुनः *'बड़ लाभ'* का भाव कि बड़े सुकृतोंसे बड़ा लाभ होता है, जैसा ऊपर पुरुषोंकी उक्तिमें कह आये—*'को सुकृती हम सरिस बिशेषी'* इसीसे बड़ा लाभ कहती हैं।

टिप्पणी—४ *'बड़े भाग बिधि बात बनाई''''''''''।'* इति। (क) ऊपर जो कहा कि *'येहि बिआह बड़ लाभु'* उसीके सम्बन्धसे यहाँ *'बड़ भाग'* कहा। बड़ा लाभ बड़े भाग्यसे होता है (पूर्व भी एक पुरवासिनीने कहा है—*'नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि। येहु संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि॥'* (२२२) वह 'संघट' अब बना, वह मनोरथ पूर्ण हुआ। पुनश्च *'जौं बिधिबस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥'* (१। २२२) इसीसे *'बड़ लाभु'* कहकर *'बड़े भाग'* कहा। (ख) *'बिधि बात बनाई'* इति। विधाताके बनानेसे यह बात बनी है, क्योंकि विधि ही कर्मफलदाता हैं, यथा—*'कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता॥'* (२। २८२) [पूर्व जो कहा कि *'को सुकृती*

हम सरिस बिशेषी' उसके सम्बन्धसे यहाँ कहती हैं कि *'बिधि बात बनाई।'* अर्थात्] हम सुकृती हैं, यह हमारे सुकृतोंका फल है जो विधिने प्राप्त कर दिया है, यथा—*'को जानैं केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हें बिधि आनी॥'* (१। ३३५) (ग) *'नयन अतिथि होइहहिं'*—इसका कारण आगे कहती हैं, यथा—*'बारहिं बार''''।'* (घ) *'अतिथि'* कहनेका भाव कि जैसे अतिथिकी सेवा बड़े आदरसे होती है, उसी प्रकार हमारे नेत्र बड़े आदरसे इनकी सेवा करेंगे, अर्थात् बड़े आदरपूर्वक इनका दर्शन करेंगे। यथा—*'अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के'* (१। ३२। ८ में 'अतिथिके सम्बन्धमें देखिये)।

प० प० प्र०—पुरनारियोंको तो इस विवाहमें श्रीजानकीविरह-दुःख ही सहना होगा यह स्पष्ट ही था, तब इसमें इनको महद्भाग्य कैसे जान पड़ता है? इसका समाधान आगेकी चौपाइयोंमें मिलता है। वह यह कि इनके नेत्रोंको श्रीराम-लक्ष्मणका सौन्दर्य श्रीसीताजीकी शोभा-सौन्दर्यसे अधिक आकर्षक और सुखकारक जान पड़ता है, यह *'कोटि काम कमनीय'* विशेषणसे ही सूचित हो रहा है।

टिप्पणी—५ *'बारहिं बार सनेह बस''''* इति। [(क) जो कहो कि विवाह हो जानेपर तो फिर श्रीजानकीजीके भी दर्शन न होंगे, दोनों भाइयोंके दर्शन तो दूर ही रहे, तो उसपर कहती हैं कि *'बारहिं बार·······'*] (ख) *'सनेह बस'* सबके साथ लगता है। श्रीजनकजी श्रीसीताजीके स्नेहवश हैं, इससे वे बार-बार सीताजीको बुलायेंगे। श्रीरामजी सीताजीके स्नेहके वश हैं, अतः वे बार-बार उन्हें लेने आयेंगे। (ग) *'लेन आइहहिं बंधु दोउ'* इति यह लोकरीति है कि दुलहिनको बिदा करानेके लिये दूलह जाता है (और उसके साथ शहबाला भी जाता है जो प्रायः छोटा भाई होता है। छोटे भाईके अभावमें ही दूसरा कोई बालक जाता है)। इसीसे दोनों भाइयोंका लेने आना कहती हैं (घ) *'कोटि काम कमनीय'* इति। स्त्रियोंकी भावना सुन्दर स्वरूपकी होती है। (स्त्रियोंको शृङ्गार अत्यन्त प्रिय है, यथा—*'नारि बिलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप। जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥'* (२४१) यह विशेषण उन्होंने अपने दृष्टिकोणसे दिया है।) इसीसे अपने देखनेमें सुन्दर स्वरूप कहती हैं।

नोट—पं० श्रीविजयानन्द त्रिपाठीजी कहते हैं कि यहाँ भी अष्टसखियोंका संवाद है। उनका लेख आगे ३११ (२) में देखिये।

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥ १॥
तब तब राम लषनहि निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी॥ २॥
सखि जस राम लषन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥ ३॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए॥ ४॥
कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे॥ ५॥
भरतु रामहीं की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥ ६॥
लषनु सत्रुसूदन एक रूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥ ७॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥ ८॥

शब्दार्थ—**पहुनाई**=आये हुए व्यक्तिका भोजन-पान आदिसे सत्कार करना; मेहमानदारी। **सासुर**=ससुराल; ससुर। **ढोटा**=पुत्र, यथा—*'ए दोऊ दसरथ के ढोटा।'* (१। २२१) **सहसा**=एकाएक। *अनुहार*=सदृश; एकरूप। आकृति, रूप-रेखा।

अर्थ—अनेक प्रकारसे (उनकी) पहुनाई होगी। हे माई! ऐसी ससुराल किसको प्यारी न लगेगी?॥ १॥ तब-तब श्रीराम-लक्ष्मणजीको देख-देखकर सब पुरवासी सुखी होंगे॥ २॥ हे सखि! जैसी श्रीराम-लक्ष्मणजीकी जोड़ी है वैसे ही राजाके साथ दो (और) पुत्र हैं (अर्थात् पुत्रोंकी जोड़ी है)॥ ३॥ एक श्याम हैं, दूसरे गोरे हैं, सभी अङ्ग सुन्दर हैं, जो लोग देख आये हैं वे सब-के-सब ऐसा कहते

हैं॥ ४॥ एक बोली कि मैंने आज ही देखे हैं। (ऐसे जान पड़ते हैं) मानो ब्रह्माने अपने हाथों सँवारा (रचकर बनाया) है॥ ५॥ श्रीभरतजी श्रीरामजीहीकी रूप-रेखाके हैं, एकाएक कोई स्त्री-पुरुष उन्हें पहचान नहीं सकते॥ ६॥ श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजी एकरूप हैं। नखसे शिखा (चोटी) पर्यन्त सब अङ्ग अनुपम (उपमारहित, अत्यन्त सुन्दर) हैं॥ ७॥ मन-ही-मन भाते हैं, मुखसे (उनका) वर्णन नहीं किया जा सकता। तीनों लोकोंमें उनकी उपमाके योग्य कोई नहीं है॥ ८॥

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी—**'कहहिं परसपर कोकिलबयनी। एहि बिआहु बड़ लाभु सुनयनी॥''होइहहिं सब पुरलोग सुखारी।'** इति। कोकिलबयनी सुनयनीको सम्बोधन करके कहती हैं। यह कहकर जनाया कि नरसमाजका हाल कह चुके, अब नारी-समाजका हाल कहते हैं। यद्यपि नगर-दर्शनके समय (**'कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥'** (२२०। ५) से **'हिय हरषहिं''''।'** (२२३) (तक) सभी घरोंकी स्त्रियोंने सरकारकी प्रशंसा की तथापि संवाद अष्टसखीका ही लिखा गया। इसी भाँति यहाँ भी अष्टसखीका संवाद कहते हैं।

(१) नगरदर्शनमें जिसने कहा था कि **'जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। सोइ स्यामल बर रचेउ बिचारी॥'** (२२३। ७), वह कहती है कि **'एहि बिआह बड़ लाभु सुनयनी।'** भाव कि दूसरेसे विवाह होनेमें अननुरूप जोड़ी हो जाती। सबसे बड़ा लाभ है कि अनुरूप जोड़ी मिली इससे दम्पतिका लाभ, दोनों पक्षका लाभ तथा दर्शनका लाभ। लाभ-ही-लाभ तो है।

(२) **'कोउ कह संकर चाप कठोरा। ये स्यामल मृदु गात किसोरा॥ सब असमंजस अहै सयानी।'** (२२३। २-३) जिसके ये वचन हैं, वह कहती है कि **'नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई'** अर्थात् अब इन दोनों भाइयोंका कभी-न-कभी दर्शन होता रहेगा। राजाके तो अतिथि होंगे और हम लोगोंके नयनोंके अतिथि होंगे।

(३) जिसने कहा था कि **'नाहि त हम कहँ सुनहु सखि इन्हकर दरसन दूरि। यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि॥'** (२२२) वही कहती है कि **'बारहिं बार सनेह बस''।'** अर्थात् महाराज जनक बड़े दुहितृवत्सल हैं, वे स्नेहवश बार-बार बेटीको बुलावेंगे, तब बिदा कराने दोनों भाई आया करेंगे। अतः दर्शन होता रहेगा। बिना पतिके बिदा कराने आये, स्त्रियोंका सम्मान नहीं होता।

(४) जिसने कहा था कि **'(कोउ कह) ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥'** (२२२। ३), वही कह रही है कि बिना सम्बन्ध हुए ही जब इतना सम्मान हुआ था तो अब तो सम्बन्ध हो गया, अतः अनेक प्रकारसे पहुनाई होगी। ऐसी ससुराल किसे प्यारी न लगेगी? अतः अवश्य आते-जाते रहेंगे।

(५) जिसने कहा था **'जोग जानकी यह बरु अहई॥ जौ सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करै बिबाहू।'** (२२२। १-२), वही कह रही है कि **'तब तब रामलषनहिं निहारी। होइहहिं सब पुरलोग सुखारी॥'**

(६) जिसने कहा था **'ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बालमरालन्ह के कल जोटा॥'** (२२१। ३), वही कह रही है **'सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥'** पर अपने पतिसे सुनकर कहती थी, यथा—**'जो मैं सुना सो सुनहु सयानी।'** अब कहती हैं **'ते सब कहहिं देखि जे आये।'** जैसे **'राम लषन सब अंग सोहाए'** हैं, वैसे ही वे दोनों भी **'स्याम गौर सब अंग सोहाए'** हैं।

(७) जिसने कहा था कि **'कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥'** (२२१। १), वही कहती है **'मैं आजु निहारे'** यह पहली सखीके बातकी पुष्टि करती है, कहती है **'भरत राम ही की अनुहारी'** इत्यादि।

(८) जिसने कहा था कि **'सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती।''कोटि सत काम॥'** (२२०), वही कहती है **'लषन सत्रुसूदन एक रूपा।''एइ अहैं।'** दो भाई एक रंगके और दो दूसरे रंगके हैं, एकाएक पहिचाने नहीं जाते। इत्यादि।

इस भाँति यहाँ भी उन्हीं आठों सखियोंका संवाद है। भेद क्रममें है। सरकारके नगर-दर्शनके स
जिस सखीने सबसे पीछे कहा था, यहाँपर वही पहले बोली। इनके पहिलेकी बातोंसे अबकी कही
बातें ऐसी सम्बद्ध हैं कि लाचार होकर मानना पड़ता है कि ये वही सखियाँ हैं।

दूसरी बात यह है कि आधिदैविक दृष्टिसे आठों सखियाँ आठ अपरा प्रकृति हैं, यथा—'**भूमिरापोऽन
वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥**' (गीता ७। ४) इनमेंसे कोई पृथ्वीत
है, कोई जलतत्त्व है, कोई बुद्धितत्त्व है इत्यादि। पहलेके अष्टसखी संवादपर विचार करनेसे यह
स्पष्ट हो जाती है। परा प्रकृति और परम पुरुषका साक्षात्कार पुष्पवाटिकामें होनेके पहिले अपरा प्रकृति
संवाद देना प्राप्त था, अब उनका सम्बन्ध होने जा रहा है, अतः सम्बन्ध होनेके पहिले पुनः महा
कवि अपरा प्रकृतियोंका संवाद देते हैं।

नोट—१ (क) जो कहो कि विदा कराने आयेंगे तो दो-चार दिन ही तो रहकर चले जायें
उसपर कहती हैं कि '*बिबिध भाँति*…।' अर्थात् पहले तो श्रीजनकमहाराजके ही यहाँ कई दिन पहु
होगी, फिर उनके भाइयोंके यहाँ होगी। बैजनाथजी लिखते हैं कि श्रीह्रस्वरोममहाराजकी तीन रानि
थीं—शुभजया, सदा और सर्वदा। इनमेंसे प्रथमसे दो पुत्र शीरध्वजमहाराज और कुशध्वज, दूसरीसे च
पुत्र शत्रुजित्, यशशालि, अरिमर्दन और रिपुतापन तथा तीसरीसे भी चार पुत्र महिमंगल, बलाकर, तेज
और महावीर्य। इस प्रकार जनकमहाराज दस भाई थे। दो-दो दिन भी प्रत्येक भाईकी पहुनाई स्वीक
करेंगे तो भी एक मास तो अवश्य बीत जायगा। फिर मन्त्रियों, सखाओं आदिके यहाँ होगी, हम लं
भी पहुनाई करेंगी, घर-घर वे अतिथि होंगे। इस प्रकार बहुत दिन ठहरना पड़ेगा, क्योंकि सभी पुरवा
अपने-अपने यहाँ उनकी पहुनाई करना चाहेंगे और अनेक भाँतिसे करेंगे। इस तरह बहुत दिन दश
होंगे। (ख) '*प्रिय न काहि*'—किसे प्रिय नहीं! सभीको प्रिय लगती है, उनको भी प्रिय लगेगी। अतः
वे अवश्य बहुत दिन रह जायँगे। (ग) '*अस सासुर*' अर्थात् ऐसा प्यार एवं प्रिय करनेवाली ससुराल
(घ) '*माई*'—यह सम्बोधन बूढ़ी अथवा बड़ी स्त्रीके लिये आता है, आदरसूचक है। यथा—'*कह
झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥*' (२। १६) '*सीय स्वयंबरु माई दोउ भाई अ
देखन।*' (गीतावली १। ७३) जान पड़ता है कि यह उसने अपनेसे बड़ीसे कहा है, अथवा '*सखि*
के ही भावमें इसका प्रयोग कहीं होता हो।

टिप्पणी—१ (क) '*तब तब राम लषनहि*…' इति। पुरके लोगोंके सुखी होनेमें भाव यह है कि पुरवासियोंक
भावना सुन्दर स्वरूपकी है, यथा—'*पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नर-भूषन लोचन सुखदाई।*' (२४१। ८
इसीसे दोनों भाइयोंको देखकर वे सुखी होते हैं। पूर्व भी कहा है '*सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदि
नगर नर नारि बिसेषी॥*' (३०९। ३) वैसे ही यहाँ भी सुखी होना कहते हैं। (ख)—'*स्याम गौर स
अंग सुहाए*…' इति। प्रथम यह कहकर कि श्रीराम-लक्ष्मणजीकी जैसी जोड़ी है वैसी ही एक दूसरी जोड़
है। अब उनका रूपादि कहती हैं। '*ढोटा*' कहकर समवयस्क एक ही अवस्थाके जनाया और '*स्याम
गौर*…' से उनका स्वरूप दिखाया कि जैसे श्रीराम-लक्ष्मण श्याम-गौर हैं और जैसे इनके सब अङ्ग सुन्द
हैं वैसे ही उन दोनों लड़कोंका भी श्याम-गौर वर्ण है और सब अङ्ग सुन्दर हैं। तात्पर्य कि रंग, रूप
अवस्था और अङ्ग सब एक-से हैं। [(ग)—'*ते सब कहहिं देखि जे आए*'—इससे जनाया कि सुनी हु
कहती है, यह भी जान पड़ता है कि परदेमें रहनेवाली है।]

टिप्पणी—२ (क) '*मैं आजु निहारे*' इति। '*आजु*' कहनेसे पाया गया कि पूर्ववाली सखीने किसी औ
दिनका सुना हुआ कहा था। (ख) '*निहारे*' का भाव कि तुम तो दूसरेसे सुनी हुई और वह भ
कल-परसों आदिकी बासी कहती हो और मैंने तो आज ही थोड़ी देर हुई उन्हें देखा है, अपने आँख
देखी कहती हूँ—'*यह सब मैं निज नयनन्ह देखी।*' आँखों देखी बात विशेष प्रामाणिक होती है। ['*निहारे*
अर्थात् सूक्ष्म-दृष्टिसे अच्छी तरह देखा, कहनेका भाव यह है कि उनपर दृष्टि पड़नेपर हटाये नहीं हटर्त

देखनेवाली परवश हो जाती है। आगे *'नख सिख तें सब अंग अनूपा'* कथनसे भी स्पष्ट है कि इस स्त्रीने अङ्ग-अङ्गका निरीक्षण किया है। (प० प० प्र०)] (ग)—*'बिरंचि'* नामका भाव कि ये विशेष रचैया (रचयिता) हैं, इनसे अधिक रचना करनेवाला कोई नहीं, कैसी अद्भुत सृष्टि रची है। (घ) *'निज हाथ सँवारे'*—भाव कि ब्रह्मा और सब सृष्टि तो कल्पना (संकल्प) मात्रसे रच डालते हैं, पर इनको अपने हाथसे अच्छी तरह रचकर बनाया है। विरंचिने स्वयं रचा और अपने हाथसे, वह भी सँवारकर। मानो दो-दोको एक-एक साँचेसे ढाला है। [जानकीमङ्गलके *'स्यामल गौर किसोर मनोहरतानिधि। सुखमा सकल सकेलि मनहुँ बिरचे बिधि॥'* (१९) *बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची रुचिरता रंचौ नहीं। दसचारि भुवन निहारि देखि विचारि नहिं उपमा कहीं॥'* इसके सब भाव यहाँ हैं। इस कथनसे शोभाकी उत्कृष्टता दिखायी] (ङ)—राजाकी बारात बहुत भारी है, स्त्री वहाँ जा नहीं सकती। यह कैसे गयी? इस शंकाका समाधान यह है कि जब श्रीभरतशत्रुघ्नजी बारातसे बाहर स्नान वा संध्या करने अथवा बाग देखने गये तब उसने देखा।

टिप्पणी—३ (क) *'भरतु रामहीं की अनुहारी।'''* इति। ऐसा ही चित्रकूटके मगवासियोंने भी कहा है। यथा—*'कहहिं सपेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥ बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥ बेषु न सो सखि सीय न संगा।'''सखि संदेहु होइ एहि भेदा॥'* (२। २२२) [(ख) *'लखनु सत्रुसूदन एकरूपा'''''* इति। एक जगह *'अनुहारी'* और दूसरी जगह *'एकरूपा'* कहकर दोनोंको पर्याय जनाया। अर्थात् *'अनुहारी'* का अर्थ 'एकरूप' है, यह स्पष्ट कर दिया। *'सब अंग अनूपा'* का भाव कि एक अङ्गकी भी उपमा नहीं है, तब समस्त अङ्गोंकी उपमा कौन कहेगा! ☞यह सखी रंग, अङ्ग और अवस्थाका वर्णन नहीं करती क्योंकि पूर्व सखी कह चुकी है। पिछली सखीने सब अङ्गोंको *'सुहाए'* कहा, इसीसे इसने *'सुहाए'* न कहकर 'अनुपम' कहा]। *'सहसा लखि न सकहिं'* अर्थात् निकटसे अच्छी तरह देखनेपर ही पहचाने जा सकते हैं।

टिप्पणी—४ *'मन भावहिं'''''* इति। भाव कि रूप अद्भुत है, मुखसे नहीं कहते बनता। यदि उपमा देकर कहा चाहें तो त्रिभुवनमें उपमा नहीं है। अङ्गकी उपमा वस्तु है, रूपकी उपमा पुरुष है, सो ये दोनों नहीं हैं। [इसमें यह आशय है कि ग्रन्थकारके मनमें दोनों भाइयोंका स्वरूप ज्यों-का-त्यों देख पड़ता है, पर कहा नहीं जाता। पहले *'सब अंग अनूपा'* कहकर तीनों लोकोंमें किसी भी अङ्गके लिये कोई वस्तु उपमा-योग्यका न होना निश्चय किया और *'उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाहीं'* यहाँ तीनों लोकोंके मनुष्योंको भी उपमा-योग्य न ठहराया (प्र० सं०)। *'त्रिभुवन'* कह देनेसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आ गये। मिलान कीजिये—*'सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनियत नाहीं॥ बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥'* (२२०। ६-७) (प० प० प्र०)]

(हरिगीतिका)

छंद—उपमा न कोउ, कह दास तुलसी, कतहुँ कबि कोविद कहें।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्हसे एइ अहें॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ येहि पुर हम सुमंगल गावहीं॥

सो०—कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥ ३११॥

अर्थ—दास तुलसी कहता है और कवि कोविद (पण्डित) कहते हैं कि इनकी कहीं भी कोई उपमा नहीं है। बल-विनय-विद्या-शील-शोभाके समुद्र इनके समान ये ही हैं। सब जनकपुरकी स्त्रियाँ अञ्चल

फैलाकर ब्रह्माजीको यह वचन सुना रही हैं—'चारों भाइयोंको इसी नगरमें ब्याहिये, हम सुन्दर मङ्गल गान करें॥' आपसमें स्त्रियाँ नेत्रोंमें जल भरे और शरीरसे पुलकित हो कह रही हैं कि, 'हे सखि! पुरारि महादेवजी सब (मनोरथ पूरे) करेंगे, दोनों राजा पुण्यके समुद्र हैं॥' (३११)

टिप्पणी—१ ***'उपमा न कोउ कह'''*** इति। (क) ***'कबि कोबिद कहें'*** का भाव कि कवि नवीन बनाते हैं और कोविद वेद-पुराण-शास्त्र पढ़ते हैं, ये कहते हैं कि कोई उपमा कहीं नहीं है। तात्पर्य यह हुआ कि न कोई नवीन उपमा मिली और न कोई वेद-शास्त्र-पुराणमें मिली। (ख)—बल-विनय आदिके ***'सिंधु'*** कहनेका भाव कि न तो गुणोंकी कोई उपमा है और न सिंधुकी; उपमेय और उपमान दोनों ही अनुपम हैं। गुणके समुद्र कहकर जनाया कि गुणोंकी कोई उपमा नहीं है! इस तरह अङ्ग, रूप और गुण तीनोंको अनुपम कहा। (ग) ***'इन्ह से एइ अहें'***—गुणोंके समुद्र कहकर 'इनके समान ये ही हैं' कहनेका भाव कि जैसे समुद्रके समान समुद्र ही है वैसे ही इनके समान ये ही हैं।

नोट—१ (क) मिलान कीजिये—'**काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुरचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारांनिधिः। कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगा नैतांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते॥**' (चाणक्य); अर्थात् कल्पवृक्ष तो लकड़ी है, सुमेरु अचल है, चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य तीक्ष्ण किरणवाला है, शशि क्षयीरोगयुक्त है, क्षीण हुआ करता है, समुद्र खारा है, कामके शरीर नहीं, बलि दितिका पुत्र दैत्य है, कामधेनु पशु है, ये कोई उपमा योग्य नहीं हैं। इनसे रघुपतिको कैसे उपमित किया जाय? (ख) पुरनारियोंने ये ही पाँच गुण देखे हैं, इससे इन्हींका नाम यहाँ लिखा गया, नहीं तो चारों भाइयोंके गुण तो अनन्त हैं। एक भाई श्रीरामजीका बल और विद्या धनुष-भंगमें देखी; बल तोड़नेमें और विद्या शीघ्रतामें—***'अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा।'*** (२६१। ५), ***'लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा'''।'*** (२६१। ७) विनय और शील परशुरामके प्रसङ्गमें, यथा—***'बिनय सील करुना गुन सागर।'*** (१। २८५) और शोभा-समुद्रमें तो नगरभर डूब रहा ही है। शरीरकी शोभा देखी है। (प्र० सं०)। लक्ष्मणजीका तेज और गुण धनुष टूटनेके पूर्व और पश्चात् परशुराम-संवादमें देखा है। शेष दो भाई उन्हींकी ***'अनुहारी'*** हैं, अतः उनमें भी बल-प्रतापादि हैं। पुनः, (ग) ***'बल बिनय'''*** का भाव कि जिसमें बल अधिक होता है उसमें प्रायः नम्रता नहीं होती। ये दोनों भी हुए तो विद्यामें निपुणता नहीं होती। और यदि विद्यावान् हुआ तो अभिमान भी होता है, सुशीलता दुर्लभ है। ये चार गुण भले ही किसीमें हों पर वह ऐसा सुन्दर नहीं होगा। सुन्दर भी हों तो चार, भाइयोंका एक-से गुण, रूप आदि संयुक्त मिलना असम्भव है। अतः इनके समान ये ही हैं। (पं०) पुनः भाव कि बलकी शोभा नम्रतासे है, विनयकी शोभा विद्यासे है, विद्याकी शोभा शीलसे है, अतः इन चारोंको क्रमसे कहा। और शोभासिंधुमें तो डूबी हैं अतः अन्तमें उसे कहा।

नोट—२ ***'पुर नारि सकल पसारि अंचल'''*** इति। 'अंचल, अँचला, अँचरा' साड़ी, ओढ़नी या दुपट्टाका वह भाग कहलाता है जो सिरपरसे होता हुआ सामने छातीपर फैला होता है। जब देवता या किसी बड़ेसे कुछ याचना की जाती है तो स्त्रियाँ माँगते समय अपने अञ्चलको आगे फैला देती हैं। यह स्त्रियोंकी रीति है, इससे दीनता, विनय और उद्वेग सूचित होते हैं, यथा—***'अंतरहित सुर आसिष देहीं। मुदित मातु अंचल भरि लेहीं॥'*** (३५१। ३), ***'रमारमनपद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥'*** (२। २७३), ***'चरन नाइ सिर अंचलु रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा॥'*** (६। ६) तथा यहाँ ***'पसारि अंचल।'***

टिप्पणी—२ (क) ***'बिधिहि बचन सुनावहीं'*** इति। वचन सुनानेका भाव कि प्रथम (स्वयंवरके समय रङ्गभूमिमें सब मनहीमें विधाताको मनाती थीं, यथा—***'सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं॥'*** (२४९। २); अब विधातासे वचनद्वारा प्रार्थना करती हैं, क्योंकि यहाँ अब कोई संकोच नहीं है। (ख) ***'ब्याहिअहु चारिउ भाइ येहि पुर'*** इसी पुरमें अर्थात् राजा जनकके ही यहाँ चारोंका ब्याह हो जाय, सो नहीं, किन्तु नगरभरमें बहुत-से निमिवंशी हैं जिनके बहुत कन्याएँ हैं, उनमेंसे चाहे जिसके

यहाँ विवाह हो, पर हो इसी पुरमें; क्योंकि हमें तो चारों भाइयोंके दर्शनसे काम है; इसीसे *'ब्याहिअहु चारिउ भाइ नृप गृह'''* ऐसा नहीं कहतीं। नगरमें कहीं भी ब्याह हो हमें इतनेहीसे प्रयोजन है, क्योंकि हमारी लालसा तो केवल सुमङ्गलगानकी ही है। पुनः *'सुमंगल गावहीं'* का दूसरा भाव कि हमें चार ठौर मङ्गल गानेका अवसर मिलेगा, हमारे बड़े भाग्य होंगे।

टिप्पणी—३ *'कहहिं परस्पर नारि'''* इति। (क) यहाँ *'बारि बिलोचन' 'पुलकि तन'* कहा और अगली चौपाईमें *'आनँद उमगि उमगि उर भरहीं'* कहते हैं। इस तरह सूचित किया कि सब स्त्रियाँ मन, वचन, कर्मसे प्रमुदित हैं। वचनसे *'कहहिं'*, तनसे पुलकित हैं और मनसे हर्षित हैं। (ख)—*'कहहिं परस्पर कोकिलबयनी।'* (३१०। ७) उपक्रम है और *'कहहिं परस्पर नारि'* उपसंहार है। (ग) *'पुरारि'* का भाव कि जैसे सबको सुख देनेके लिये त्रिपुरका नाश किया वैसे ही हम सबोंको सुख देनेके लिये हमारे सब मनोरथ पूरे करेंगे। (घ) *'पुन्य पयोनिधि भूप दोउ'* इति। भाव कि दूसरी सखी कहती है कि पुरभरमें कहीं भी ब्याहनेकी क्या बात, महाराजहीके यहाँ चारोंका विवाह होगा, क्योंकि दोनों राजा पुण्यके समुद्र हैं। कौन पुण्य है, यह पूर्व ही कह आये हैं, यथा—*'इन्ह सम काहु न सिव अवराधे।'* जिस पुण्यसे दशरथमहाराजने चार पुत्र पाये और राजा जनकने चार कन्याएँ पायीं, उसी (शिवाराधनरूपी) पुण्यसे यह संयोग भी बनेगा। इसीसे *'सब करब पुरारि'* कहा। पूर्व दोनों राजाओंको *'सुकृत अवधि'* कहा था, इसीसे यहाँ *'पुन्य पयोनिधि'* कहा। पयोनिधि भी *'अवधि'* है।

टिप्पणी—४ (गी० १। १०४) से मिलान कीजिये। यथा—*'मनमें मंजु मनोरथ हो री। सो हर गौरि प्रसाद एक तें कौसिक कृपा चौगुनो भो री॥ १॥ कुँवर कुँवरि सब मंगलमूरति नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी। राजसमाज भूरिभागी जिन्ह लोचनलाहु लह्यो एक ठौरी॥ ३॥ ब्याह उछाह राम सीता को सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यो री। तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जेहि उर बसति मनोहर जोरी'॥ ४॥*

येहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं॥ १॥
जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए॥ २॥
कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन* गये महिपाला॥ ३॥
गये बीति कछु दिन येहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥ ४॥

अर्थ—इस प्रकार सभी मनोरथ कर रही हैं और उमग-उमगकर (उत्साहपूर्वक) हृदयको आनन्दसे भर रही हैं (अथवा, आनन्द उमड़-उमड़कर उनके हृदयमें भर रहा है। अर्थात् इसमें उनको आनन्दका अनुभव होता जाता है, स्वाद मिलता है)॥ १॥ जो राजा श्रीसीताजीके स्वयंवरमें आये थे, उन्होंने सब भाइयोंको देखकर सुख पाया॥ २॥ श्रीरामजीका निर्मल उज्ज्वल और विशाल (बहुत बड़ा, सुन्दर भव्य और प्रसिद्ध महान्) यश कहते हुए (वे सब) राजा अपने-अपने घर गये॥ ३॥ कुछ दिन इस प्रकार बीत गये। सभी पुरवासी और बाराती बहुत ही आनन्दित हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'येहि बिधि सकल'''* इति। सब स्त्री-पुरुषोंका मनोरथ पूर्व कह आये। *'पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥'* यह पुरुषोंका मनोरथ है और *'ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ येहि पुर हम सुमंगल गावहीं॥'''* यह स्त्रियोंका मनोरथ है। *'येहि बिधि सकल मनोरथ करहीं'* कहकर सबोंका मनोरथ एकत्र कर दिया। पुनः, *'येहि बिधि'* का भाव कि यहाँतक मनोरथकी पूर्तिकी पुष्टिमें चार विधियाँ कही हैं। एक तो अपना भाग्य, यथा—*'बड़े भाग बिधि बात बनाई।'* दूसरी श्रीसीताजीपर राजा जनकका स्नेह, यथा—*'बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय'''।'* तीसरी, विविध प्रकारकी पहुनाई, यथा—*'बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥'* चौथी विधि दोनों राजाओंका अद्वितीय सुकृती होना,

* गेह—१७२१, १७६२, छ०। भवन-१६६१, १७०४, को० रा०।

यथा—'*सखि सब करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।*' अतः कहा कि '*येहि बिधि*…' (ख) '*आनँद उमगि*…' इति। अर्थात् जब मनोरथ करती हैं (और जैसे-जैसे करती हैं (तब) तैसे-तैसे) आनन्द उमड़ता है और उमड़-उमड़कर स्त्री-पुरुषोंके हृदयोंमें भरता है। आनन्द नदी है, स्त्री-पुरुषोंका हृदय समुद्र है। लोग बहुत हैं, इसलिये '*उमगि उमगि भरहीं*' कहा।

२ '*जे नृप सीय स्वयंबर आए*…' इति। ये साधु राजा हैं। कुटिल राजाओंका जाना पूर्व लिख आये, यथा—'*अपभय कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गँवहि पराने॥*' (२८५। ८), अब यहाँ साधु राजाओंका जाना कहते हैं। ये सब अभीतक चारों भाइयोंको देखनेके लिये रुके रहे, इसीसे '*देखि सब बंधु*' सब भाइयोंको देखकर सुख पाना कहा। इससे यह भी जनाया कि इन राजाओंने सुन रखा था कि श्रीदशरथजीके यहाँ चतुर्व्यूह अवतार हुआ है, इसीसे चारों भाइयोंके दर्शनार्थ इतने दिन टिके रह गये। (पूर्व भी इन्होंने इस जानकारीका परिचय दिया है यथा—'*जगतपिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥ सुंदर सुखद सकल गुनरासी। ए दोउ बंधु संभु उर बासी॥*''*हम तो आजु जनम फलु पावा। अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥*' (२४६। २—७)

टिप्पणी—३ '*कहत राम जसु*…' इति। श्रीरामयश विशद है, यथा—'*जिन्ह के जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे॥*' (२९२। २) विशाल है, यथा—'*महि पातालु नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥*' (२६५। ५) (श्रीरामयशका वर्णन करते हुए मार्ग जान नहीं पड़ता, पहुँचनेपर जान पड़ता है कि बहुत शीघ्र आ गये) यथा—'*बरनत पंथ बिबिधि इतिहासा। बिश्वनाथ पहुँचे कैलासा॥*' (५८। ६), '*पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥*' (३। १२। ५) तथा यहाँ '*कहत राम जसु*…*निज निज भवन गये*…'। (पं० रामकुमारजी '*गये*' का अर्थ 'पहुँच गये' करते हैं, इसीसे यह भाव लिखा है। पर मेरी समझमें '*गये*' का साधारण अर्थ यहाँ अभिप्रेत है। उदाहरणोंमें '*पहुँचे*' शब्द है, '*गये*' नहीं।)

टिप्पणी—४ '*गये बीति कछु दिन*…' इति। लग्नसे बारात पहले ही आ गयी थी, वही कुछ दिन जो बीचमें रह गये थे, बीत गये। (तिथि अथवा दिनकी गणना नहीं की, क्योंकि इसमें मतभेद है। कम-से-कम एक मास सात दिन पहले बारात आयी थी।) पुनः, '*कछु दिन*' का भाव कि सुखके दिन बहुत शीघ्र बीत जाते हैं, (जाते हुए जान नहीं पड़ते), यथा—'*मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ*'' (१९५) इत्यादि। '*सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥*' (२। २८०। ८), '*राम भरत गुन गनत सप्रीती निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥*' (२। २९०। १), '*जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति।*' (७। १५) इत्यादि। इसीसे एक महीना सात दिनको '*कछु दिन*' कहा (वे कुछ ही जान पड़े)'*प्रमुदित पुरजन सकल बराती*' कहकर जनाया कि बारातसे पुरजन प्रमुदित हैं और पुरजनोंसे बारात प्रमुदित हैं। (यह भी भाव है कि दोनों ही विशेष आनन्दमें मग्न रहनेसे दिन बीतते न जान पाये।)

बारात तथा मिथिलापुरीप्रमोदवर्णन समाप्त।

मंगलमूल लगन दिनु आवा। हिमरितु अगहनु मासु सुहावा॥ ५॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥ ६॥
पठै दीन्हि नारद सन सोई*। गनी जनक के गनकन्ह जोई*॥ ७॥
सुनी सकल लोगन्ह येह बाता। कहहिं जोतिषी आहि† बिधाता॥ ८॥
दो०—धेनु धूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।

* सोइ, जोइ—१६६१। † अपर—१७२१, १७६२, छ०, रा० प्र०। आहि—१६६१, १७०४। विप्र- को० रा०।

बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥ ३१२॥

नोट—लग्न, ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, बारके विस्तृत अर्थ दो० १९० में देखिये।

अर्थ—मङ्गलोंका मूल लग्नका दिन आ गया। हेमन्त-ऋतुमें सुहावना अगहनका महीना (आया)॥ ५॥ सुन्दर श्रेष्ठ ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, दिन और लग्न शोधकर ब्रह्माजीने उसपर विचार किया॥ ६॥ और उस (लग्नपत्रिका) को नारदजीके हाथ (उन्होंने राजा जनकके पास) भेज दी, जिसे (अर्थात् उसी लग्नमुहूर्तको) राजा जनकके ज्योतिषियोंने (प्रथम ही) विचारकर रखा था॥ ७॥ सब लोगोंने यह बात सुनी (तो) कहने लगे कि ज्योतिषी (भी) विधाता (ही) हैं॥ ८॥ निर्मल और सभी सुन्दर मङ्गलोंका मूल गोधूलिका अनुकूल समय और अनुकूल शकुन जानकर ब्राह्मणोंने विदेहजीसे कहा॥ ३१२॥

टिप्पणी—१ *'मंगलमूल लगन⋯'* इति। (क) मङ्गलमूल लग्नका दिन कहनेका भाव कि यदि लग्नका दिन उत्तम होता है तो मङ्गल बढ़ता है, वंश और धन-सम्पत्ति आदिकी वृद्धि होती है, अमङ्गल नहीं होते। इसीसे ब्रह्माने स्वयं लग्नको शोधा है। (ख) *'हिमरितु अगहन मासु'* कहनेका भाव कि हिम-ऋतुमें अर्थात् वृश्चिकके सूर्यमें विवाह होता है, तुला और धनमें विवाह नहीं होता। हिम-ऋतुके अगहन और पौष दो मास हैं, हिम-ऋतु कहनेसे संदेह रहता कि किस मासमें ब्याह हुआ, अतः *'हिमरितु'* कहकर *'अगहन मास'* भी कहा। (अगहन ही कह देते, हिम-ऋतु लिखनेका क्या प्रयोजन था? यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है। इसका उत्तर यह है कि विवाह तुला अथवा धनके सूर्यमें नहीं होता है और वृश्चिकके सूर्यमें हो तो अगहनमें कभी-कभी तुलाके सूर्य रहते हैं। इसलिये *'हिमरितु'* भी कहकर जनाया कि अगहन भी था और वृश्चिकके सूर्य भी थे। पुनः, ऋतु राशिसे होती है और कभी हिम-ऋतुका प्रवेश कार्तिकमें ही होता है, इसलिये *'हिमरितु'* कहकर अगहन भी कहा।) (ग) *'सुहावा'* इति। अगहन मास भगवान्‌का स्वरूप है, यथा—'**मासानां मार्गशीर्षोऽहम्**' (गी० १०। ३५), इसीसे उसे *'सुहावा'* कहा।

नोट—१ (क) अगहन मास भगवान्‌का स्वरूप है।⋯अतः सुहावा और मङ्गलमूल कहा। पुनः इससे कि रावणने सब लोकोंका मङ्गल उठा दिया था, अब इस ब्याहसे सबका मङ्गल होगा—'**मंगलेषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च। दश मासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः॥**' (प्र० सं०) (ख)—'**माघफाल्गुनवैशाखे यद्यूढा मार्गशीर्षके। ज्येष्ठे वाऽऽषाढमासे च सुभगा वित्तसंयुताः॥ श्रावणे वापि पौषे वा कन्या भाद्रपदे तथा। चैत्राश्वयुक्कार्तिकेषु याति वैधव्यतां लघु॥**' (ज्योतिःप्रकाशे व्यासः—)। '**माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः। कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निन्दिताः परे॥**' (नारदः) निर्णयसिन्धु विवाह प्र० मासनिर्णयमें दिये हुए इस श्लोकके आधारपर कुछ महानुभावोंका मत है कि अगहन मास तो मध्यम श्रेणीका माना गया है तब इसमें विवाह क्यों हुआ? इसका उत्तर मेरी समझमें यह है कि उस समय यह मास उत्तम माना जाता था, किंतु कुछ ऋषियोंने यह समझकर कि इसमें विवाह होनेसे श्रीजानकीजीको सुख नहीं मिला आगे इसको मध्यम श्रेणीका मानने लगे। विशेष नोट ३ में देखिये।

नोट—२ सोधना=खोजना, ढूँढ़ना लग्न शोधकर अर्थात् उस समय पूर्व क्षितिजपर कौन राशि है यह देखकर, फिर उसपर विधिने विचार किया। अर्थात् तत्काल ही लग्न खोज निकाली फिर लग्नके ग्रह आदिका विचार किया। लग्नमें ग्रहका विचार करना होता है। ग्रहके विचारसे युति दोषका विचार समझना चाहिये। यथा—'**यत्र गेहे भवेच्चन्द्रो ग्रहस्तत्र यदा भवेत्। युतिदोषस्तदा ज्ञेयो विना शुक्रं शुभाशुभम्॥**' (बृहज्ज्योतिष्-सार मुहूर्त-प्रकरण) अर्थात् जिस घरमें चन्द्रमा हो उसी घरमें शुक्रको छोड़कर यदि कोई अन्य ग्रह हो तो अशुभ है। इसीको युतिदोष कहते हैं। (पं० रामकुमार) 'ग्रह' अर्थात् श्रीरामजीके रवि दूसरे, गुरु नवें और भौम दूसरे हैं और श्रीसीताजीके रवि दसवें, चन्द्र ग्यारहवें, भौम दसवें, गुरु पाँचवें हैं। *'तिथि'* शुक्ला पञ्चमी। *'नखत'* (नक्षत्र) उत्तराषाढ़ा, 'योग' वृद्ध, श्रेष्ठ 'बार' (दिन) भृगुवासर (शुक्र)। तैंतीस पंद्रह इष्टपर कर्क लग्न शुद्ध है अर्थात् जिनके सातवें कोई ग्रह नहीं है ऐसी लग्न शोधकर विचारकर देख लिया कि शुद्ध है। (वै०)

नोट—३ विवाहके उपयुक्त नक्षत्र मृगशिरा, हस्त, मूल, अनुराधा, मघा, रोहिणी, रेवती, तीनो उत्तरा और स्वाती ये हैं। यथा—'**निर्वेधैः शशिकरमूलमैत्र पित्र्य ब्राह्मान्त्योत्तरपवनैः शुभो विवाहः। रिक्तामरहित तिथौ शुभेऽह्विवश्वप्रान्त्यांघ्रिः श्रुतितिथिभागतोऽभिजित् स्यात्॥**' (मुहूर्तचिन्तामणि विवाह-प्रकरण श्लो० ५३)। इस श्लोकका पीयूषधाराटीकामें नारदजी और वसिष्ठजीके जो वचन उद्धृत हैं, उनमें भी पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रका उल्लेख नहीं है। परंतु वाल्मीकीयमें पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें विवाह होना कहा है। यथा—'**मघा ह्यद्य महाबाहो तृतीये दिवसे विभो। फाल्गुन्यामुत्तरे राजंस्तस्मिन्वैवाहिकं कुरु॥**' (१। ७१। २४) '**उत्तरे दिवसे ब्रह्मन्फाल्गुनीभ्यां मनीषिणः। वैवाहिकं प्रशंसन्ति भगो यत्र प्रजापतिः॥**' (१। ७२। १३) '**युक्ते मुहूर्ते विजये।**' (१। ७३। ८) श्रीजनकजी कह रहे हैं कि आप कल आये हैं, आज मघा नक्षत्र है। कल तीसरे दिन पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है, उसमें आप वैवाहिक कृत्य करें। कल पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है जिसके देवता भगनामक प्रजापति हैं। इस समयकी प्रशंसा विद्वान् करते हैं। वाल्मीकिजी लिखते हैं कि विवाहके योग्य विजय मुहूर्त आनेपर चारों भाई वैवाहिक वेषमें आये। ('विजय' को ही 'अभिजित्' कहते हैं। १९१। १ में देखिये।)—इसमें मास, तिथि, दिन आदिका उल्लेख नहीं है। अ० रा०, प० पु०, स्कन्दपु०, भा०, हनु० ना० इत्यादिमें भी मासादि नहीं दिये हैं। पूर्वाफाल्गुनीमें श्रीसीतारामविवाह हुआ यह निश्चित है। इससे सिद्ध होता है कि यह नक्षत्र उस समय शुभ माना जाता था, परंतु आगे चलकर ऋषियोंने इसे विवाहके उपयोगी नक्षत्रोंमें नहीं रखा, क्योंकि इसमें विवाह होनेसे श्रीजानकीजीको सुख नहीं मिला। अपने मतका प्रमाण भी खोज करनेसे हमें मिल गया। श्रीकेशवार्कजीने 'विवाह-वृन्दावन' में लिखा है कि यद्यपि वाल्मीकिजीने इस नक्षत्रको विवाहके लिये शुभ कहा है तथापि उसमें सीताजीको सुख नहीं हुआ। यथा—'**प्राचेतसः प्राह शुभं भगर्क्षं सीता तदूढा न सुखं सिषेवे। पुष्यस्तु पुष्यत्यतिकाममेव प्रजापतेरपि स शापमस्मात्।**' (१। ४)

नागेश और केशवार्कजी पूर्वाफाल्गुनीमें विवाह लिखते हैं और गोविन्दराजीय टीकामें उत्तराफाल्गुनी अर्थ किया गया है।

श्रीप्रज्ञानानन्दजी कहते हैं कि 'उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी अथवा नवमीको भी होना असम्भव है'। श्रीअवध-मिथिला-प्रान्तोंमें विवाह मार्गशीर्ष शु० ५ को ही मनाया जाता है। सम्भव है कि तिथिमें मतभेद होनेसे कविने तिथि न दी हो। यह भी हो सकता है कि जैसे जन्म-समयके नक्षत्रादि कभी एक साथ नहीं पड़ते, पर श्रीरामजन्मपर पड़े, वैसे ही विवाह-समय भी मुहूर्त, नक्षत्र आदि ऐसे ही पड़े थे जो आज असम्भव हैं। विवाह मार्गशीर्ष शुक्ला ५ को ही हुआ यह बृहद्विष्णुपुराणान्तर्गत मिथिला-माहात्म्य पराशर-मैत्रेयसंवाद अ० ९ में स्पष्ट लिखा हुआ है; यथा—'**मार्गशीर्षे सिते पक्षे पञ्चम्यां च शुभे दिने। सीता विवाहिता यत्र रामेण परमात्मना॥ ११॥ तस्मान्मण्डपमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते।**...' अर्थात् अग्रहण मासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि शुभ दिनमें जिस मण्डपमें साक्षात् परमात्मा श्रीरामने श्रीसीताजीसे विवाह किया, उस मण्डपका माहात्म्य वर्णन करना मेरी शक्तिसे बाहर है। अतः जिनके अवतारके समय असम्भव बात सम्भव हुई, जो नक्षत्र कभी एकत्र हो ही नहीं सकते वे एकत्र हो गये, उनके विवाहके समय भी अपूर्व एवं असम्भव नक्षत्र एकत्रित हो गये तो इसमें आश्चर्य क्या? प० तथा मा० त० वि० पूर्वभाद्रनक्षत्रमें पञ्चमीको विवाह लिखते हैं पर प्रमाण नहीं दिया है।

नोट—४ 'ब्रह्माने लग्न शोधी फिर भी वनवासादि कष्ट हुए।' यह शंका होती है। समाधान यह है कि लग्नका विचार इसलिये होता है कि विवाह निर्विघ्न हो, पति-पत्नीमें स्नेह हो, उत्तम संतान हो। और वनवासादि कष्ट तो जन्मके समयके नक्षत्रोंके अनुसार होते हैं। यह भी स्मरण रहे कि अवतार भूभारहरणार्थ हुआ है। जो कार्य श्रीरामावतार होनेपर प्रभुको करना है, उनकी पूर्तिके लिये जो लग्न आवश्यक है वही शोधकर लिखी गयी। वही मुहूर्त शुभ है जिसमें जिस कार्यके लिये मनुष्य उद्यत हुआ है वह सिद्ध हो। भगवान्‌की प्रेरणासे वैसी ही लग्न ज्योतिषियोंको उत्तम सूझी।

टिप्पणी—२ *'पठै दीन्हि'* से सूचित हुआ कि ब्रह्माजीने लग्नको कागजपर लिखा था, वही उन्होंने नारदजीको दे दिया। (ख) *'नारद सन'* (नारदसे अर्थात् उनके हाथ) भेजनेका भाव कि नारदजी सर्वत्र आते-जाते हैं और व्यवहारमें बड़े चतुर हैं (श्रीसीतारामजीके भक्त भी हैं। पत्रिका ले जानेमें उनको बड़ा सुख होगा)। (ग) *'गनी जनकके गनकन्ह जोई'* कहकर जनाया कि श्रीजनकजीके पण्डितोंने प्रथम ही लग्न शोध—विचार रखी थी, ब्रह्माने लग्न पीछे शोधा। *'जोई-सोई'* यत्-तत्का सम्बन्ध रहता है, यत् प्रथम रहता है तत् पीछे। यह भी जनाया कि जनकजीके ज्योतिषी यह नहीं जानते थे कि ब्रह्मा लग्न विचारकर भेजेंगे, नहीं तो वे क्यों विचार करते। (घ) *'सुनी सकल लोगन्ह येह बाता'* से पाया गया कि नारदजी जब पत्रिका लाये तब वह सभामें पढ़ी गयी (पढ़नेपर यहाँके ज्योतिषियोंको भी लग्नपत्रिका दिखायी गयी। दोनोंका मिलान हुआ। तब सभाने कहा कि यह तो वही है *'गनी जनकके गनकन्ह जोई'*) यह बात सबोंने सुनी कि ब्रह्माके और ज्योतिषियोंके विचार एक हैं। (ङ) *'कहहिं ज्योतिषी आहि बिधाता'*—यहाँ *'गनक'* का अर्थ 'ज्योतिषी' स्पष्ट कर दिया। (दोनोंके एक होनेसे ज्योतिषीको ब्रह्मा कहते हैं।)

नोट—५ *'धेनु धूरि बेला बिमल'''* इति। (क) धेनु धूरि बेला=गोधूलिवेला=वह समय जब कि गौएँ जंगलसे चरकर घरको लौटने लगतीं हैं और उनके खुरोंसे धूल उड़नेके कारण धुँधली छा जाती है। ऋतुके अनुसार गोधूलीके समयमें कुछ अन्तर भी माना जाता है। हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें सूर्यका तेज बहुत मन्द हो जाने और क्षितिजमें लालिमा फैल जानेपर; वसन्त और ग्रीष्ममें जब सूर्य आधा अस्त हो जाय; वर्षा तथा शरद्कालमें सूर्यके बिलकुल अस्त हो जानेपर गोधूली होती है। यथा—'**पिण्डीभूते दिनकृति हेमन्तर्तौ स्यादर्धास्ते तपसमये गोधूलिः। सम्पूर्णास्ते जलधरमाला काले त्रेधा योज्या सकलशुभे कार्यादौ॥**' (मुहूर्तचिन्तामणि विवाहप्र० १०१)

(ख) *'बेला बिमल'* इति। फलित ज्योतिषके अनुसार गोधूलिका समय सब कार्योंके लिये बहुत शुभ होता है और उसपर नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, वार, योग और जामित्र आदिके दोषका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इस सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंके और भी कई मत हैं। यथा—'**नास्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्त्तस्य चर्चा। नो वा योगो न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषो गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता॥**' (मु० चि० विवाहप्र० १००) मु० चि० का मत है कि यह वेला सबके लिये शुभ है। पर दैवज्ञमनोहर और मुहूर्तमार्तण्डने इसको केवल शूद्रादिकोंके लिये शुभकर कहा, द्विजातियोंके लिये नहीं। यथा—'**घटी लग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं शुभम् (स्मृतम्)। शूद्रादीनां बुधाः प्राहुर्न द्विजानां कदाचन॥**' दैवज्ञमनोहरका आशय यह है कि द्विजातियोंको लग्न, घटी आदि शुभ मुहूर्तमें ही विवाह करना चाहिये, यदि लग्न आदि ठीक न हो तो केवल गोधूलीको शुभ जानकर शुभ कार्य न करना चाहिये। यहाँ श्रीरामविवाहमें लग्न आदि सभी शुभ हैं और पवित्र गोधूलिवेला भी है। फिर बारात ही गोधूलिवेलामें बुलायी गयी, विवाह तो उसके पश्चात् हुआ है; अतएव कोई शंकाकी जगह ही नहीं है। आज भी प्रायः सभी वर्णोंमें द्वारचारके लिये गोधूलिवेला ही शुभ मानी जाती है। काशीके प्रसिद्ध महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदीके घरानेमें आज भी द्वारचार इसी वेलामें होता है, यह समय टलने नहीं दिया जाता। फिर यह भी सम्भव है कि गोधूलिवेलामें विवाह होना ज्योतिषियोंने पीछे वर्जित कर दिया, त्रेतामें यह वेला शुभ ही मानी जाती थी, तभी उसे कवि *'बिमल सुमंगल मूल'* विशेषण दे रहे हैं।

टिप्पणी—३ (क) *'सुमंगल मूल'* कहनेका भाव कि लग्नका दिन मङ्गलमूल है, यथा—*'मंगल मूल लगन दिनु आवा'* और गोधूलिवेला *'सुमंगल मूल'* है। क्योंकि लग्नका दिन स्थूल काल है और गोधूलिवेला सूक्ष्म है। स्थूलसे सूक्ष्मकाल विशेष है। इसीसे यहाँ 'मंगल' के साथ 'सु' उपसर्ग दिया। (ख)—*'बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन'*—भाव कि यह काल बहुत उत्तम है और सूक्ष्म है, इसीसे ज्योतिषियोंने स्वयं राजासे कहा जिसमें विलम्ब न हो, जैसा कि आगेके, *'अब बिलंब कर कारनु काहा'* से स्पष्ट है। (ग) *'जानि सगुन अनुकूल'*

इति। भाव कि अनुकूल समय आनेपर उसी समय अनुकूल (अर्थात् शुभ) शकुन होने लगे। ☞इससे ज्ञात होता है कि उस दिन गोधूलिवेला बहुत देरतक स्थित रही, जैसे जन्म-समय सूर्य स्थिर रह गये थे, यथा—'*मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ। रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥*' (१९५)

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा॥१॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए॥२॥
संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥३॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥४॥
लेन चले सादर येहि भाँती। गये जहाँ जनवास बराती॥५॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥६॥

अर्थ—राजाने उपरोहितसे कहा कि अब देरका क्या कारण है?॥१॥ तब शतानन्दजीने मन्त्रियोंको बुलाया। वे सब सब मङ्गल सजाकर ले आये॥२॥ बहुत-से शङ्ख नगाड़े और ढोल खूब बजने लगे। मङ्गल कलश और शुभ शकुन सजाये गये॥३॥ सुन्दर सौभाग्यवती स्त्रियाँ सुन्दर गीत गा रही हैं। पवित्राचरणवाले ब्राह्मण पवित्र वेदध्वनि कर रहे हैं॥४॥ इस प्रकार (लोग) आदरपूर्वक (बारातको) लाने चले। जहाँ जनवासेमें बराती थे वहाँ गये॥५॥ कोसलराज श्रीदशरथजी महाराजका समाज (वैभव) देखकर उन्हें देवराज (और उसका वैभव) बहुत ही तुच्छ लगा॥६॥

टिप्पणी—१ (क) '*उपरोहितहि कहेउ*⋯' इति। ज्योतिषियोंने जनकजीसे और इनने पुरोहितसे कहा। इससे सूचित हुआ कि लग्नके विचारनेवाले ज्योतिषी और हैं और पुरोहित और हैं। (ख) '*बिलंब कर कारनु काहा*'—विलम्बका कारण पूछनेका भाव कि विवाहके पूर्व नहछू और सुहाग आदि होते हैं; ये ही विलम्बके कारण होते हैं।

टिप्पणी—२ '*सतानंद तब सचिव*⋯' इति। (क) यहाँ स्पष्ट कर दिया कि शतानन्दजी पुरोहित हैं। यथा—'*सतानंद उपरोहित अपने तिरहुतिनाथ पठाए।*' (गी० १।१००) (शतानन्दजी महर्षि गौतमके पुत्र हैं।) (ख) '*मंगल सकल*' अर्थात् '*हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मंगल मूला॥*⋯' (३४६।३—६) '*साजि सब ल्याए*'—'सब' अर्थात् सब मन्त्री। सजाकर लाये अर्थात् सुवर्णके थालोंमें सब मङ्गल-द्रव्योंको सँवारकर पूरा थाल भरकर लिवा लाये। यथा—'*कनकथार भरि मंगलन्हि कमल करन्हि लिए मात।*' (३४६) '*भरि भरि हेम थार भामिनी। गावत चलीं सिंधुरगामिनी॥*' इत्यादि।

टिप्पणी—३ '*संख निसान*⋯' इति। (क) बारात लेने जा रहे हैं, इसीसे बाजे बहुत बजे। '*मंगल कलस*' जिन कलशोंमें आम्रपल्लव पड़े हैं, यव, धान्य और दीपक रखे हैं, शुद्ध जल भरा है इत्यादि, वे '*मंगल कलस*' कहलाते हैं; यह सब मङ्गल-द्रव्य कलशमें रखना ही कलशका सजाना है। विशेष २९६ (८) में देखिये। (ख) '*सगुन सुभ साजे*'—प्रथम 'सकल मङ्गलों' को सजाकर लाना कहा। यहाँ मङ्गलकलश और माङ्गलिक शकुनोंका सजाना कहा। अगवानीके समय भेंटके पदार्थ और मङ्गल शकुन लेकर गये थे, यथा—'*मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥*' (३०५।५), परंतु यहाँ भेंटके पदार्थ ले जानेका कोई प्रयोजन नहीं है, केवल मङ्गलकलश और मङ्गल शकुन लेनेका काम है, इससे इन्हींका वर्णन किया। '*मंगल शकुन*'—३०५ (५) में लिखे गये हैं अर्थात् सवत्सा गौ वत्सको दूध पिलाती हुई, दही और जीवित मछली लिये हुए मनुष्य, दो वेदपाठी ब्राह्मण हाथोंमें पुस्तकें लिये हुए इत्यादि।

टिप्पणी—४ (क) '*सुभग सुआसिनि गावहिं*⋯' इति। यह रीति है कि सुहागिनी स्त्रियाँ मङ्गल कलश सिरपर लिये मङ्गल गीत गाती हुई जनवासेतक जाती हैं। '*बेद धुनि बिप्र पुनीता*'—यहाँ वेदध्वनिको पुनीत और सुहागिनोंके गीतोंको सुभग कहनेका भाव यह है कि गीतोंकी ध्वनि इतनी सुन्दर है कि जो सुनता

है वह मोहित हो जाता है और वेद-ध्वनिको जो सुनता है वह पवित्र होता है। ☞शंख, निशान, मङ्गल-गीत और वेद-ध्वनि—ये सब 'सगुन' हैं। यथा—'**भेरी मृदङ्गमर्दलशङ्खवीणावेदध्वनिर्मङ्गलगीतघोषाः**'। (पुनीत विप्रका लक्षण वि० पु० में यह है '**सावित्रीमन्त्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितास्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥**' अर्थात् गायन्त्रीमन्त्र जिसके ऋषि विश्वामित्र हैं, सविता देवता और गायत्री छन्द है। जो अपने धर्मको छोड़कर विषयोंमें लौ लगाता तथा वेदविहीन है वह पुनीत विप्र नहीं है। प० प० प्र०(ख)—'***लेन चले सादर येहि भाँती***' इति। बाजे बज रहे हैं, सुहागिनियाँ गीतें गा रही हैं, वेद-ध्वनि हो रही है, इस तरह जा रहे हैं, यही 'सादर' जाना है।

टिप्पणी—५ '***कोसलपति कर देखि समाजू।***' इति। (क) श्रीकौसल्याजीके पिताने उत्तरकोसल अपने जामाता श्रीदशरथजीकी दहेजमें दिया था। '**(कृत्वा) स्वराज्यं जामात्रे ददौ प्रीत्या हि पुत्रिकाम्। तदारभ्य कोसलेन्द्राः प्रोच्यन्ते रविवंशजाः।**' (आनन्दरा० सारकाण्ड) तबसे रघुवंशी कोसलपति कहे जाने लगे। (ख) 'समाज' से रघुवंशियोंका समाज और सब वैभव समाज (सामग्री) दोनोंका कथन हो गया। यथा—'***सुख समाज नहिं जाइ बखानी***', '***कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू।***' (२। १८७) '***वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।***' (७। १२) ['***समाजू***'=साज, सामान, सामग्री, सभा-वैभव। सिंहासनपर बैठे हैं, छत्र लगा है, चँवर चल रहा है, बन्दी-मागध-सूत बिरदावली-वंशावली इत्यादि उच्चारण कर रहे हैं, मन्त्री, ऋषि, मुनि, विप्र-मण्डली इत्यादि विराजमान हैं, इत्यादि। यह सब समाजमें आ गया।] (ग) '***अति लघु लाग***' इति। भाव कि राजाका वैभव अति विशेष है। इन्द्रका वैभव पुराणोंमें सुना है और राजाका विभव आँखों देख रहे हैं, उस सुने हुए-से यह अति विशेष देख पड़ा, इसीसे सुरराज '***अति लघु***' लगा। (घ) पूर्व राजाको इन्द्र-समान कह आये हैं, यथा—'***सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुरगुरु संग पुरंदर जैसे॥***' (३०२। १) और यहाँ कहते हैं कि '***अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू***'। इसमें कोई विरोध नहीं है। पूर्व जो कहा वह स्वरूपकी समानता है, स्वरूपमें राजा इन्द्रके समान हैं, जैसे इन्द्र दिव्य वैसे ही राजा दिव्य हैं। परंतु विभवमें इन्द्र कम है। यहाँ वैभवमें अति लघु कहा गया। पुनः '***अति लघु लाग***' का दूसरा भाव कि बारातियोंका वैभव देखकर सुरराज लघु लगा और कोसलपतिका विभव देखनेपर वह '***अति लघु***' लगा। लघु लगना कहा, इसीसे '***लाग***' एकवचन कहा। '***सुरराज***' इति। अर्थात् इतना बड़ा देवताओंका राजा वह भी अति लघु लगा। ☞जनकपुरके सम्बन्धमें कहा था कि '***जो सम्पदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥***' (२८९। ८) उसीकी जोड़में यहाँ कहते हैं कि '***कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥***'

भयेउ समय अब धारिअ पाऊ। येह सुनि परा निसानहि घाऊ॥ ७॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥ ८॥
दो०—भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि॥ ३१३॥

अर्थ—(उन्होंने आकर विनती की कि) अब समय हो गया, अब पधारिये (चलिये)। यह सुनते ही नगाड़ोंपर चोटें पड़ने लगीं॥ ७॥ गुरुजीसे पूछकर और कुलरीति निबटाकर राजा मुनियों और साधुओंके समाजके साथ चले॥ ८॥ ब्रह्मादि देवता श्रीअवधेशजीका भाग्य और वैभव देखकर तथा अपना जन्म व्यर्थ समझकर सहस्रमुख शेषकी एवं सहस्रमुखसे उनकी प्रशंसा करने लगे॥ ३१३॥

टिप्पणी—१ (क) '***येह सुनि परा***…' इति। भाव कि बरातियोंको चलनेके लिये कहना न पड़ा, 'चलिये' यह सुनते ही बाजावाले बाजा बजाने लगे। '***घाऊ***' कहकर जनाया कि नगाड़े बड़ी जोरसे बजाये गये। (ख) '***चले संग मुनि साधु समाजा***'—मुनि साधुसमाजके संगमें कहनेका भाव आगे '***साजु समाज संग महि देवा।***…' (३१५। ५) में स्पष्ट किया है। ☞श्रीअयोध्याजीसे बारातके प्रस्थानके समय एक बार सबका

सवारीमें चढ़कर चलना और जनकपुरमें आकर सवारीसे उतरना लिख आये। जहाँसे उतरे वहाँसे पाँवड़े पड़ने लगे थे। इसीसे यहाँ सवारीपर चढ़ना नहीं लिखते। एक बार लिखनेसे वैसे ही यहाँ सवारियोंपर चढ़कर चलना समझ लें। यदि सवारीपर न चढ़े होते तो पाँवड़ोंका पड़ना कहते। आगे सवारीका वर्णन भी है, यथा—'*बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा॥*' (३१६। ५) इत्यादि। बारात नगरके बाहर है, वहाँसे राजमहलतक जाना है, घर दूर पड़ता है, इससे पाया जाता है कि पैदल नहीं गये।

नोट—१ सेना, परिजन इत्यादि बारातियोंको साथ न कहकर मुनि-साधु-समाजको संगमें कहनेका अभिप्राय यह है कि राजाकी यात्रा कहनेसे ही सेना, बारात, परिजन इत्यादि उनके साथ समझ लिये जाते हैं, क्योंकि उनका राजाके साथ होना जरूरी है पर ऋषि-मुनिका नाम न देनेसे यह नहीं समझा जा सकता था कि वे अवश्य इस समय साथ होंगे। इनको माङ्गलिक जान इनको साथ लिया। बाबा हरिहरप्रसादजी कहते हैं कि यहाँ जनाते हैं कि मुनि-साधु सदा इनके साथ रहते हैं, वैसे ही यहाँ भी इन्हें साथ लेकर गये। (पं०) प्र० स्वामीजीका मत है कि यहाँ '*संग*' शब्द मुनि, साधु और समाज तीनोंके साथ है। राजाओंका अपना-अपना समाज भी होता है, यथा—'*बैठे निज निज आसन राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥*' अतः अर्थ हुआ—'मुनि साधु और अपना सब समाज लेकर चले।'

टिप्पणी—२ '*भाग्य बिभव अवधेस कर*…' इति। (क) भाग्य यह कि इनके यहाँ ब्रह्म स्वयं अंशोंसहित अवतीर्ण हुए और वैभव ऐसा कि जिसे देखकर इन्द्र अत्यन्त लघु लगता है। (ख) '*देखि देव ब्रह्मादि लगे सराहन*' इति। ब्रह्मादि देखकर भाग्य और वैभवकी सराहना करते हैं, अपना जन्म व्यर्थ कहते हैं, इस कथनसे पाया गया कि ऐसा भाग्य ब्रह्मादि देवताओंका भी नहीं है (इन्द्रको तो पहले ही '*अति लघु*' कह आये हैं) और न ऐसा वैभव ब्रह्मलोकादिमें है। इससे राजाके वैभवको अप्राकृत जनाया। अथवा, मुनियों और साधुओंके सङ्गसे भाग्यकी बड़ाई करते हैं, यथा—'*बड़े भाग पाइअ सतसंगा।*' (ग) '*सराहत सहस मुख*'—यहाँ समस्त देवता एकत्र हैं और सभी सराहना कर रहे हैं, अतः '*सहस मुख*' कहा। अथवा, एक ही मुखसे हजार मुखकी सामर्थ्यके बराबर प्रशंसा करते हैं, इससे '*सहस मुख*' कहा, जैसा खल-वन्दना प्रसङ्गमें कहा है—'*बंदौं खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ परदोषा॥*' (१। ४)

नोट—२ विनायकी टीकाकार यह अर्थ करते हैं—'मानो एक स्वरसे सहस्रमुखवाले शेषनागकी सराहना करने लगे (कि धन्य हैं हजार मुँह और दो हजार जिह्वावाले शेषनागजी, जो इनकी सराहना करनेकी योग्यता रखते हैं, हम दो-चार मुँहवाले कहाँतक कर सकते हैं। हितोपदेशमें लिखा है कि **'एतस्य गुणास्तुतिं जिह्वा सहस्रेण यदि सर्पराजः कदाचित् कर्तुं समर्थः स्यात्।'** अर्थात् इनकी स्तुति शेषनागजी हजार जीभोंसे कदाचित् कर सकें तो कर सकें)।' यहाँ सराहनेमें शेषजीको धन्य कहते हैं। इसी तरह नेत्रोंसे दर्शन करनेमें सहस-नयन इन्द्रकी प्रशंसा करेंगे। (प० प० प्र०)

नोट—३ अपने जन्मको व्यर्थ समझते हैं कि हम सेवाको न पहुँचे। (दीनजी) पुनः, यह कि धिक्कार है हमारे जीवनको कि स्वर्ग आदिके सुखमें नाहक फँसकर बरबाद हुआ। (रा० प्र०) यथा—'*धिग जीवन देवसरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥*' (६। ११०) पुनः, यहाँ दशरथजीके भाग्य-वैभवकी उत्कृष्टता दिखानेके लिये ऐसा कहा गया। यहाँ 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलङ्कार' है। वा, दशरथजीके अनन्य प्रेम और भक्तिके फलकी ओर देखकर ब्रह्मादि अपनेको न्यून मान रहे हैं, जैसे श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धमें ब्रह्माजीने गौओं, व्रजवनिताओं, गोपबालकों इत्यादिके जीवनको धन्य माना और अपने भाग्यकी निन्दा की है। (पंजाबीजी) इसी तरह रावणवध होनेपर देवताओंने कहा है—'*हम देवता परम अधिकारी। स्वारथरत प्रभु भगति बिसारी॥ भव प्रबाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे॥*' (६। १०९)

नोट—४ प० प० प्र० का मत है कि यह ब्रह्मादिका देखना अपने-अपने लोकोंमें बैठे देखना है, क्योंकि उनका चलना आगे कहा है। पं० रामकुमारजीका मत ३१४ (२-३) टि० ३में है, मैं उसीसे सहमत हूँ।

सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना॥ १॥
शिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥ २॥
प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥ ३॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे॥ ४॥
चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥ ५॥

अर्थ—देवता सुन्दर मङ्गलका अवसर जानकर नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसा रहे हैं॥ १॥ श्रीशिव-ब्रह्मादि (अपने-अपने वाहनोंपर और) देवताओंके वृन्द नाना प्रकारके यूथ (टोलियाँ) बनाकर विमानोंपर चढ़े॥ २॥ और प्रेमसे पुलकित शरीर हो हृदयमें उत्साह भरे हुए श्रीराम-विवाह देखने चले॥ ३॥ श्रीजनकजीके पुरको देखकर देवता (ऐसे) अनुरक्त हो गये (कि) सबको अपने-अपने लोक तुच्छ लगे॥ ४॥ वे सब विचित्र मण्डपको आश्चर्ययुक्त होकर देख रहे हैं। अनेक प्रकारकी जितनी रचनाएँ हैं वे सभी अलौकिक (अप्राकृत) हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना…।'* इति। (क) *'सुमंगल अवसरु'* यह कि परम माङ्गलिक धेनुधूलिवेला प्राप्त हो गयी है, यथा—*'धेनु-धूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।'* यही मङ्गल-अवसर है। पुनः मङ्गल-अवसर यह कि बारात विवाहके लिये जा रही है, मनुष्योंने मङ्गल-अवसर जानकर मङ्गल द्रव्य, मङ्गल कलश और मङ्गल सगुन सजाये हैं, शङ्ख-निशानादि बज रहे हैं, सुहागिनी स्त्रियाँ सुन्दर मङ्गल गीतें गा रही हैं, पवित्र वेदध्वनि हो रही है, जनकपुरवासी जनवासेमें बारात लेने गये हैं; अतएव बारात चलते समय हमारी ओरसे भी मङ्गल शकुन होने चाहिये। यह सोचकर उन्होंने भी मङ्गल समयमें मङ्गल किया। (ख) *'बरषहिं सुमन'*—यह देवताओंका मङ्गल है। पुष्पोंकी वृष्टि 'मङ्गल' है, यथा—*'बरषहिं सुमन सुमंगल दाता।'* (३०२। ४) देवता अवसर पाकर ही फूल बरसाते हैं, यथा—*'समय समय सुर बरिसहिं फूला।'* (१। ३१९) इसीसे मङ्गलका अवसर जानकर इस समय भी फूल बरसाये। जो देवता बारातके समय आये हैं, उनका नाम आगे देते हैं।

प० प० प्र०—इन्द्रादि देवताओंने कब-कब पुष्पोंकी वृष्टि की यह देखनेसे स्पष्ट हो जायगा कि जिस कार्यसे उनके स्वार्थकी सिद्धि है उसके अवसरपर ही वे ऐसा करते हैं। यथा—(१) *'बरषहिं सुमन सुअंजलि साजी। गहगह गगन दुंदुभी बाजी॥'* (१९१। ७), *'सुमनबृष्टि आकास तें होई।'* (१९४। २) (यह श्रीरामावतारका समय है।) (२) *'बाजे नभ गहगहे निसाना',* (३) *'बरिसहिं सुमन।'* (२६४), (४) *'देवन्ह दीन्ही दुंदुभी प्रभु पर बरिसहिं फूल॥'* (२८५) (परशुरामवाला विघ्न दूर होनेपर।) (५) *'हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहिं सुमन सुमंगलदाता॥'* (३०२। ४), *'बरषि सुमन सुरसुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभी बजावहिं।'* (३०६। १) (यह बारातके पयान और जनकपुर पहुँचनेपर।)

अब देखिये कि पुष्पवृष्टिके योग्य और भी कितने अवसर थे। यज्ञरक्षाके लिये मुनिके साथ जाते समय *'प्रभु हरषि चले मुनि भय हरन',* ताटका-सुबाहुवध तथा यज्ञरक्षा होनेपर जनकपुर-प्रस्थान, पुष्पवाटिका इत्यादि प्रसङ्गोंके अवसरोंपरकी कौन कहे, श्रीराम-लक्ष्मण-विश्वामित्र-दशरथ-मिलाप, ऐसे सुन्दर समय भी कि जब प्रभुको स्वयं अत्यन्त आनन्द हुआ देवताओंने सुमनवृष्टि नहीं की; इसी प्रकार अन्य काण्डोंमें पाठक देख लें। इससे सिद्ध है कि श्रीरामजीके आनन्दमें देवताओंको आनन्द नहीं होता। जहाँ स्वार्थसिद्धि होती देखते हैं वहीं आनन्द होता है। इससे *'सुर स्वारथी'* सिद्धान्त चरितार्थ होता है।

टिप्पणी—२ *'शिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा…।'* इति। (क) यहाँ *'बरूथा'* और *'जूथा'* एक ही अर्थके दो शब्द आये हैं। परंतु यहाँ पुनरुक्ति नहीं है, क्योंकि यहाँ *'बिबुध बरूथा'* से देवताओंका समूह कहा गया। इस समूहमें अनेक 'यूथ' हैं। जब विमानोंपर चढ़े तब अनेक यूथ हो गये, एक-एक यूथ एक-

एक विमानपर है, जितने विमान हैं उतने ही 'यूथ' हैं। (प्रोफे० दीनजी कहते हैं कि यहाँ यूथ विमानोंके लिये है और वरूथ देवताओंके लिये। एक किस्मके जितने विमान हैं वे एक यूथमें चले। विमान बहुत तरहके होते हैं; कोई हंस, कोई मोरपङ्खी, कोई पुष्पाकार इत्यादि। बैजनाथजी एवं मालवीय इत्यादि दो-एक टीकाकारोंने ऐसा अर्थ किया है—'शिव-ब्रह्मादिक देववृन्द नाना भाँतिके झुंडोंमें विमानोंपर चढ़े।') (ख) यहाँ शिवजीको सबसे प्रथम कहा, क्योंकि जब सब देवता चकित हो मोहमें पड़ जायँगे तब ये ही सबको समझाकर सावधान करेंगे, यथा—*'सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु॥'* (३१४) इसीसे सब देवताओंमें उनको प्रधान रखा।

टिप्पणी—३ *'प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू।'''* इति। (क) *'प्रेम पुलक तन'* से देवताओंकी भक्ति दिखायी कि सब देवता रामभक्त हैं, भक्तिके कारण विवाह देखने चले। *'हृदय उछाहू'*— हृदयमें श्रीरामविवाह देखनेका उत्साह है, क्योंकि जानते हैं कि इस विवाहसे ही हम सब रावणके बन्दीखानेसे छूटेंगे; दूसरे वे विवाह देखनेका माहात्म्य जानते हैं कि *'सिय-रघुबीर-बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन रामजसु॥'* (३६१) जब कहने-सुननेका यह माहात्म्य है तब भला देखनेके माहात्म्यको कौन कह सके? फिर प्रत्यक्ष विवाह देखनेमें बड़ा भारी आनन्द है। अतः *'हृदय उछाहू'* कहा। (ख) *'चले बिलोकन'''* इति। गोस्वामीजी देवताओंका चलना संगतिसे लिखते हैं। जब राजा मुनि-साधु-समाजसहित जनवासेसे चले तब देवता भी फूल बरसाते हुए चले। साधुसमाज और सुरसमाज दोनों साथ-साथ चले।

टिप्पणी—४ *'देखि जनकपुरु सुर अनुरागे'''* इति। (क) जब देवता चले तब जनकपुर देख पड़ा, इससे पाया गया कि बारात पुरके बाहर रही है। (ख) जनकपुर देखकर अनुराग हुआ, अतः अनुरागसे देखने लगे। (ग) *'सबहि लघु लागे'* इति। देवताओंमें प्रायः मत्सर रहता है, यथा—*'ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥'* (२।१२) इसीसे जनकपुरको अपने-अपने लोकोंसे मिलाने लगे। मिलानेपर किसीका लोक तुलनामें न आया। इन्द्रलोक, शिवलोक, ब्रह्मलोक, कुबेरलोक इत्यादि कोई भी उसके समान न निकला।

टिप्पणी—५ *'चितवहिं चकित बिचित्र बिताना।'''* इति। (क) अभी देवता जनकराजमहलतक नहीं पहुँचे, वितान देखकर चकित हो गये। देवता आकाशमें हैं, वहाँसे उनको सब देख पड़ता है। जो लोग नीचे हैं वे अभी मण्डप नहीं देख पाये, उनका देखना आगे लिखते हैं, यथा—*'देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥ मंडपु बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे।'* (१। ३२०) (ख) जनकपुर देखकर देवता चकित नहीं हुए, पर वितानको देखकर चकित हो रहे हैं। इससे जनाया कि जनकपुरसे यह विचित्र है। (ग) *'सकल अलौकिक'* अर्थात् ऐसी रचना किसी भी लोकमें नहीं है। सब लोकोंसे देवलोक विशेष है, देवलोकसे जनकपुर विशेष और जनकपुरसे वितान विशेष है; इस प्रकार उत्तरोत्तर अधिक सुन्दरता (उत्कर्ष) कही। (अलौकिक=लोकोत्तर; इस लोकको नहीं, अमानुषी, अप्राकृत)

नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥६॥
तिन्हहि* देखि सब सुर सुरनारी। भये नखत जनु बिधु उजियारी॥७॥
बिधिहि भयेउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥८॥
दो०—सिव समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥३१४॥

* तिन्हे—१६६१।

शब्दार्थ—**सुघर** (सुघड़)=सुडौल। 'सु' उपसर्ग जिस शब्दके साथ लगता है उसमें श्रेष्ठ, सुन्दर, अच्छा, बढ़िया आदिका भाव आ जाता है; जैसे यहाँ ***'सुधरम'*** और ***'सुसील'*** में। **करनी**=करतूत, करतब, कारीगरी।

अर्थ—नगरके स्त्री-पुरुष रूपके निधान हैं, उनके सब अङ्ग सुडौल हैं, वे बड़े धर्मात्मा हैं, सुशील और सुजान हैं॥ ६॥ उन्हें देखकर सब देवता और देवाङ्गनाएँ ऐसे फीके पड़ गये जैसे चन्द्रमाके प्रकाशमें तारागण॥ ७॥ ब्रह्माजीको बहुत ही आश्चर्य हुआ, उन्होंने कहीं भी कुछ भी अपनी करनी न देखी॥ ८॥ शिवजीने सब देवताओंको समझाया कि आश्चर्यमें न भुला जाओ, धीरज धरकर हृदयमें विचार तो करो कि यह श्रीसिय-रघुवीरजीका विवाह है॥ ३१४॥

टिप्पणी—१ ***'नगर नारि नर रूप·······'*** इति। (क) ***'नगर नारि नर'*** का भाव कि जो जनकपुरवासी स्त्री-पुरुष हैं, वे सर्व बाहरके आये हुए लोग नहीं। [(ख) अङ्गोंकी रचनारूप हैं। रूपके निधान हैं अर्थात् कुछ ऊपरसे ही सुन्दर नहीं लगते, किंतु रूपके निधान हैं। 'सुघर' हैं, अर्थात् जो अङ्ग जैसा सुडौल चाहिये, जितना बड़ा, छोटा, गठीला आदि चाहिये वैसा ही है। 'सुघरता' शरीरकी शोभा है। सुन्दरताकी शोभा तभी है जब धर्म, शील और सुजानता भी हो, यथा—***'धरमसील सुंदर नर नारी। बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं।'*** (१। ९४) इन गुणोंके बिना सुन्दर रूप भी प्रशंसनीय नहीं होता। बेशहूर रूपवान् भी किस कामका?] (ग) ***'नारि'*** को प्रथम कहा, क्योंकि स्त्रियाँ रूपमें पुरुषोंसे विशेष हैं। (छन्द बैठानेमें जहाँ जैसा ठीक होता है वैसा लिखा जाता है। ***'नरनारी' 'नारिनर' 'नरनारि'***। अन्यथा जहाँ ***'नरनारि'*** है वहाँ पुरुषोंको अधिक सुन्दर आदि कहना पड़ेगा। स्त्री-पुरुष आदि मुहावरा है। प० प० प्र०) (घ) जनकपुरवासी सब गुणोंमें सबसे विशेष हैं, इसीसे सब गुणोंकी विशेषता दिखानेके लिये सब जगह 'सु' उपसर्ग दिया है।—सुघर, सुधर्म, सुशील, सुजान और रूपकी विशेषता दिखानेके लिये ***'रूपनिधान'*** कहा। [पंजाबीजी ***'सुघर'*** का अर्थ 'सुन्दर व्यवहार चतुर' और प० प० प्र० 'उत्तम श्रेष्ठ घरके' अर्थ करते हैं, क्योंकि 'रूपनिधान' में सुन्दर गठन आ जाता है। रा० प्र० कार 'बोलनेमें चतुर' अर्थ देते हैं। ***'सुघर'*** का अर्थ चतुर, दक्ष, प्रवीण भी होता है। (श० सा०)]

टिप्पणी—२ ***'तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारी·····'*** इति। (क) स्थान और स्थानी दोनोंसे दोनोंकी लघुता दिखायी। ***'देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे॥'*** (४) जनकपुरसे देवलोकोंकी लघुता, स्थानसे स्थानकी लघुता हुई। और यहाँ जनकपुरवासियोंसे देवी-देवताओंकी लघुता कह रहे हैं, यह स्थानीसे स्थानीकी लघुता है। (ख) ***'सब सुरनारी'*** से पाया गया कि सब देवताओंकी स्त्रियाँ श्रीसिय-रघुवीरविवाहमें मङ्गल गाने आयी हैं जैसा आगे स्पष्ट है, यथा—***'सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥ कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहि जाई॥ करहिं गान कल मंगल बानी। हरष बिबस सब काहु न जानी॥'*** (३१८। ६—८) (ग) जनकपुरवासियोंके रूप, सुघरता, सुधर्म, सुशीलता और सुजानता—ये पाँच गुण यहाँ कहे हैं। ये पाँचों गुण चन्द्रमामें हैं। वह रूपनिधान है (इसीसे समय-समयपर रूपके लिये इसकी उपमा दी जाती है), सुघड़ है, धर्मात्मा है; क्योंकि इसने राजसूय यज्ञ किये हैं। सुशील है, यथा—***'सोम से सील'*** (क० ७। ४३) और 'सुजान' भी है, क्योंकि 'द्विजराज' है। इसीसे यहाँ चन्द्रमाकी उत्प्रेक्षा की गयी। यहाँ जनकपुरवासी चन्द्रमा हैं, उनके रूप, सुघरता आदि चन्द्रमाकी 'उजिआरी' है। देवी-देवता नक्षत्र हैं। चन्द्रके प्रकाशमें तारागण फीके पड़ ही जाते हैं। यहाँ 'उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा' है।

टिप्पणी—३ ***'बिधिहि भयेहु आचरजु·······'*** इति। (क) ***'आचरजु बिसेषी'*** का भाव कि सब देवताओंको आश्चर्य हुआ और ब्रह्माको 'विशेष' आश्चर्य हुआ, इसका कारण दूसरे चरणमें कहते हैं कि अपनी कुछ करनी नहीं देखी। (ख) ***'निज करनी कछु कतहुँ न देखी'*** इति। इससे सूचित किया कि जैसा कुछ जनकपुर और यहाँका वितान है ऐसा ब्रह्माकी सृष्टिभरमें कुछ भी नहीं है; इसीका समाधान आगे शिवजी करते हैं। अपनी कुछ भी करनी न देखी, इस कथनका तात्पर्य यह है कि यहाँ यह सब श्रीजानकीजीकी

करनी है। '**कछु**' का भाव कि जितनी करनी यहाँ बनी है उतनीमें अपनी करनीसे किंचित् भी मिलान न देखा। तात्पर्य कि यहाँकी सब कारीगरी ब्रह्माजीकी कारीगरीसे पृथक् (एवं विलक्षण) है। (ग) देवता जनकपुर, पुरवासी और वितानकी शोभा देखकर भुला गये और ब्रह्माजी पुर-पुरवासी और वितानको अपनी करनीसे पृथक् देखकर भूल-भुला गये। भेदमें भाव यह है कि देवताओंको अपनी सुन्दरताका (अपने रूप और सुन्दर स्थानका) अभिमान है, इसीसे वे शोभासौन्दर्य देखकर भूले और ब्रह्माको अपनी कारीगरी-(सृष्टिके विशेष रचयिता होने-) का अभिमान है, इससे वे विचित्र रचना देखकर भुला गये। [इस तरह दोनोंका गर्व जाता रहा। विधिकी करनी क्या है? ***'बिधि प्रपंच गुन अवगुन साना'*** यही उनकी करनी है, उनकी सृष्टि प्राकृत है, इसमें गुण और अवगुण दोनों सने हुए हैं और श्रीजनकपुरमें कहीं कुछ भी अवगुण नहीं देखा, क्योंकि यहाँकी सब करनी तो श्रीसीताजीकी किञ्चित् महिमा है; अतः अप्राकृत है। इसीसे ब्रह्माको 'विशेष आश्चर्य' हुआ, वे डरे कि कहीं दूसरा ब्रह्मा तो नहीं हो गया, हमारा अधिकार कहीं दूसरेको तो नहीं दे दिया गया, इत्यादि। (प्र० सं०) इन्द्रको अपने ऐश्वर्य और सत्ताका, सूर्यको तेजका, चन्द्रको शीतलता और सौन्दर्यका अभिमान था, वह सब जाता रहा (प० प० प्र०)]

नोट—१ ***'सिव समुझाए'*** इति। शिवजी कल्याणकर्ता हैं और स्वयं कल्याणरूप हैं। इन्होंने सोचा कि सब एक ही वस्तुको देखकर भूल गये कि यह कहाँसे आयी, किसने बनायी, इत्यादि। जिस कार्य अर्थात् विवाहको देखनेके लिये आये थे सो उसे भुला ही दिया है। वही सबको याद दिलाते हैं कि उधर छोटी-छोटी बातोंका खयाल छोड़ो और विचारो तो सही कि यह उन श्रीसीतारामजीके विवाहका समय है जो सर्वकर्ता हैं और धैर्य धारण करके विवाहका आनन्द लूटो; नहीं तो पीछे पछताओगे कि ब्याह न देख पाये। इसीसे यहाँ ***'सिव'*** नाम दिया और आगे भी ***'संभु'*** नाम देते हैं।

टिप्पणी—४ ***'सिव समुझाए देव सब.......'*** इति। (क) ***'देव सब'*** कहकर जनाया कि सब देवताओंको आश्चर्य हुआ, ब्रह्माजीको विशेष आश्चर्य हुआ; इसीसे सबको समझाना कहा। (ख) ब्रह्माको विशेष आश्चर्य हुआ, इससे समझानेमें उन्हींको मुख्य (प्रधान) रखना था, पर ऐसा न करके देवताओंको मुख्य रखा; उन्हींको समझाना कहते हैं। इसमें कारण है कि जिस कामसे बड़े लोगोंको लज्जा और संकोच उत्पन्न हो, श्रेष्ठ लोग वह काम बचाकर करते हैं। (ब्रह्माजीको सबके सामने समझानेसे वे संकुचित होते, उनको लज्जा लगती, उनकी प्रतिष्ठा जाती। वे सबसे बड़े हैं, पितामह कहे जाते हैं। बड़ेको उपदेश करना धृष्टता है। एक प्रकारसे शिवजी ब्रह्माजीके पुत्र हैं) अतएव उनको स्पष्टरूपसे प्रधान बनाकर उपदेश नहीं दिया। देवताओंके उपदेशके द्वारा उनको भी उपदेश हो गया। (ग) ***'जनि आचरज भुलाहु'***— भाव कि यह श्रीसिय-रघुवीरका विवाह है, यहाँ विचित्रता, अलौकिकताका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। (घ) शिवजीने कैसे जाना कि सबको आश्चर्य हो रहा है? इस तरह कि जब सबको आश्चर्य हुआ तो वे चलना भूल गये, चलना बंद हो गया, सब-के-सब चकित हो देखने लगे—***'चितवहिं चकित बिचित्र बिताना।'*** यह देखकर शिवजीने समझाया कि आश्चर्यमें न भूले पड़े रहो। (ङ) ***'हृदय बिचारहु धीर धरि'***— इससे जनाया कि विशेष आश्चर्यमें उनका धैर्य जाता रहा था। धैर्य न होनेपर विचार असम्भव हो जाता है, इसीसे धीरज धरकर विचार करनेको कहा। (***'सिय रघुबीर बिआहु'*** अर्थात् यहाँ प्राकृत विभूति नहीं है, सब दिव्य अप्राकृत त्रिपादवाली विभूति है।)

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगलमूल नसाहीं॥ १॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥ २॥
येहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगे बर बसह चलावा॥ ३॥

शब्दार्थ—**करतल**=हथेली। **करतल होहिं**=ऐसे मिल जाते हैं मानो पहलेसे ही हथेलीमें रखे हैं, सहज ही प्राप्त हो जाते हैं, अनायास आ जाते हैं।

अर्थ—'जिनका नाम लेते ही संसारमें समस्त अमङ्गलके मूल (ही) नष्ट हो जाते हैं॥ १॥ और अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष चारों पदार्थ सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। ये वही श्रीसीतारामजी हैं'—यह कामारि-(महादेवजी-) ने कहा॥ २॥ इस प्रकार शिवजीने देवताओंको समझाया, फिर अपने श्रेष्ठ बैल नन्दीको आगे चलाया (बढ़ाया)॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'जिन्ह कर नामु लेत·····'* का भाव कि जिनका नाम लेनेसे अमङ्गल नष्ट हो जाते हैं, वे श्रीसीतारामजी यहाँ साक्षात् विराजमान हैं। *'जग माहीं'* का भाव कि जिनका नाम लेनेसे जगत्-भरका अमङ्गल नष्ट हो जाता है उनके समीप अमङ्गल कैसे आ सकता है? पुनः भाव कि अमङ्गलका मूल जगत् है, जबतक जगत्-बुद्धि है तभीतक अमङ्गल है। श्रीसीतारामजीका नाम लेनेसे जगत्-बुद्धि नष्ट हो जाती है, यथा—*'नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं'* (१। २५। ४), *'जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥'* (११२।२) नाम-नामीसे अभेद है, इसीसे जो काम नामीसे होता है, वही राम-नामसे होता है। अज्ञान एवं अनेक दुःखोंके भोग ही अमङ्गल हैं। जगत् होना कार्य है, अज्ञानादि अमङ्गल कारण हैं। जगत् कार्य और अमङ्गल कारण दोनोंका नाश कहा। (क) *'मूल नसाहीं'*—भाव कि मूल कारणका ही नाश हो जाता है, फिर जगत्-बुद्धि नहीं रह जाती। *'सीयराममय'—चिदचिद्विशिष्टब्रह्म'*—बुद्धि हो जाती है। (ग) *'जिन्ह····सकल अमंगल मूल नसाहीं'* इति।—ब्रह्माने यहाँ अपनी कुछ करनी न देखी, उनका प्रपञ्च तो गुण-अवगुणसे सना है और यहाँ कुछ भी अवगुण न देख पड़ा, इसपर शिवजीने यह बात कही कि जिनका नाम लेनेसे अवगुणरूप जगत् और अमङ्गल नष्ट हो जाता है, उनके यहाँ (जहाँ वे विराजमान हैं) अमङ्गल कैसे आ सकता है? (अमङ्गलमूल=जन्म-मरण आदि बाधाएँ। रा० प्र०)

टिप्पणी—२ *'करतल होहिं पदारथ चारी·····'* इति। (क) अमङ्गल नष्ट हुए, कुछ प्राप्ति तो न हुई? उसपर कहते हैं कि ऐसा नहीं है किन्तु *'करतल होहिं'*। (ख) *'करतल होहिं'* अर्थात् बिना परिश्रम आपसे ही आ जाते हैं। (ग) *'तेइ सिय राम'* अर्थात् जिनके नामका यह प्रभाव है वे साक्षात् यहाँ विराजमान हैं; अतः यहाँ जो भी हो सो सब थोड़ा ही है। (घ) *'कामारी'*—भाव कि शिवजीने कामको जीता है, इसीसे वे श्रीसीतारामजीका प्रभाव भलीभाँति जानते हैं; उन्हींका यह कथन है। [पुनः, भाव कि सब विकारोंमें काम प्रधान है सो उसको ये जीते हुए हैं; इससे उनको मोह नहीं हो सकता। ये सियराम-स्वरूपको यथार्थ जानते हैं। ब्रह्मादिक व्यवहारकी प्रबलतासे भ्रममें पड़ जाया करते हैं और ये उससे सदा पृथक् रहते हैं—(पंजाबी, रा० प्र०)]

नोट—१ *'तेइ सियराम'* इति। कुछ लोग श्रीसीताजीको माया कहते हैं। उनकी यह भूल है, यह यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं। मायाका नाम 'सकल अमङ्गलमूलका नाशक' नहीं हो सकता है। इसी तरह जगन्मात्रको *'सीयराममय'* कहा है। फिर मोक्षका भी अनायास प्राप्त होना भी इनके नामसे कहा है—*'करतल होहिं पदारथ चारी।'* दोहावलीमें भी 'सीताराम' का नित्य स्मरण करनेको कहा है। यथा—*'तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीताराम। सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम॥ पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम। सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम॥'* (५६९-७०) दोहा १८ में कविने श्रीसीताजी और श्रीरामजीको अभिन्न कहा है। इत्यादि।

टिप्पणी—३ *'येहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा·····'* इति। (क) *'येहि बिधि'* का भाव कि अज्ञानको ज्ञानसे दूर करना चाहिये था, सो न करके उन्होंने भक्तिमार्गसे (उपासनाकी रीतिसे) दूर किया। नाम-रूपलीलाका प्रभाव दिखाकर मोहको (अर्थात् विचित्र दिव्य अप्राकृत धामको देखकर जो आश्चर्य हुआ उसको) दूर किया। *'जिन्ह कर नाम लेत····'* यह नाम (का प्रभाव) है, *'करतल होहिं पदारथ चारी'* यह रूप (का प्रभाव) है, *'हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु'* यह लीला (का प्रभाव) है और धामको देखकर आश्चर्य हुआ यह धाम(का प्रभाव) है। (ख) *'पुनि आगे बर बसह चलावा'* इति। *'पुनि'* का भाव कि प्रथम इनका चलना कहा गया था, यथा—*'चले बिलोकन राम बिआहू।'* बीचमें देवताओंको

समझानेके लिये चलना रोक दिया था। जब समझा चुके और देवताओंका मोह नष्ट हो गया तब पुनः चले। *'बर'* कहकर वृषभको दिव्य जनाया। (ग)—प्रथम लिखा था कि *'शिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥'* (३१४। २) और यहाँ कहते हैं कि *'बर बसह चलावा'* अर्थात् शिवजीका वृषभपर चढ़ा होना कहते हैं; इस तरह सूचित करते हैं कि शिवजी बैलपर हैं और सब विमानोंपर हैं [समष्टिरूपमें विमानोंपर चढ़े होना लिखा, क्योंकि विमान बहुत हैं इसीसे उनको कह दिया। अथवा, देवताओंके नाना यूथ नाना विमानोंपर हैं, यह वहाँ कहा। शिव-ब्रह्मा आदि अपने-अपने वाहनोंपर हैं। शिवजी नन्दीपर हैं, ब्रह्माजी हंसपर हैं, इन्द्र ऐरावतपर हैं, विष्णु गरुड़पर हैं, कार्तिकेय मोरपर हैं इत्यादि और देववृन्दोंकी टोलियाँ विमानोंपर हैं] (घ)—*'सिव समुझाए देव सब·····'* उपक्रम है और *'येहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा'* उपसंहार है।

देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता॥ ४॥
साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख* सेवा॥ ५॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनु धारी॥ ६॥

अर्थ—देवताओंने देखा कि श्रीदशरथजी मनमें महान् आनन्दित और शरीरसे पुलकित हुए चले जा रहे हैं॥ ४॥ साथमें साधु और विप्रोंका समाज (ऐसा सुशोभित) है मानो (समस्त) सुख शरीर धारण किये हुए सेवा कर रहे हैं॥ ५॥ सुन्दर चारों पुत्र साथमें (ऐसे) सोह रहे हैं मानो समस्त 'अपवर्ग' (मोक्ष) शरीर धारण किये हुए (साथमें) हैं॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'देवन्ह देखे दसरथु·····'* इति। (क) यह शिवजीका उपदेश चरितार्थ किया (अर्थात् देवताओंने दशरथजीको जाते देखा, इस कथनसे दिखाया कि उनके उपदेशका प्रभाव पड़ा)। सब देवता आश्चर्यमें भूले हुए थे, इससे कभी नगर देखते थे (यथा—*'देखि जनकपुर सुर अनुरागे।·····'*), कभी वितान देखते, (यथा—*'चितवहिं चकित बिचित्र बिताना'*), और कभी पुरनरनारियोंको देखने लगते थे, यथा—*'नगर नारि नर रूप निधाना·····तिन्हहिं देखि सब सुर सुरनारी॥·····।'* जब शिवजीने समझाया तब सब ओरसे दृष्टि हटाकर दशरथजीको देखने लगे। (ख) *'महामोद मन पुलकित गाता'*—मनमें महान् आनन्द और शरीर पुलकित होनेका कारण अगले चरणोंमें कहते हैं कि साधु, ब्राह्मण और चारों पुत्र साथमें हैं। यही कारण आगे देवताओं और श्रीशिवजीके हर्षका भी कहा है, यथा—*'मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥ पुनि रामहि बिलोकि हिय हरषे।' 'रामरूप नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि। पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥'* इस तरह *'महामोद मन पुलकित गाता'* देवताओं और दशरथमहाराज दोनोंमें लगता है।

नोट—१ (क) *'जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा'* इति। अनेक प्रकारकी चिन्ताओं, कष्टों आदिसे निरन्तर बचे रहनेपर अनेक प्रकारकी वासनाओं आदिकी तृप्ति होनेपर मनमें जो प्रिय अनुभूति होती है, वह 'सुख' है। सुख आत्माका एक गुण है जो दो प्रकारका होता है—(१) 'नित्य सुख' जो परमात्माके विशेष सुखके अन्तर्गत है और (२) 'जन्य' सुख जो जीवात्माके विशेष सुखके अन्तर्गत है। यह धन या मित्रकी प्राप्ति, आरोग्य और भोग आदिसे उत्पन्न होता है। (श० सा०) (ख) प्रथम संस्करणमें हमने *'करहिं सुर सेवा'* पाठ रखा था। परंतु अब सं० १६६१ का पाठ प्राचीनतम जानकर उसको ही ठीक समझकर रखा है। 'अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष' भी सुख हैं। इनका सेवन भानुप्रतापप्रसङ्गमें कहा भी गया है, यथा—*'अरथ धरम कामादि सुख सेवै समय नरेसु'* (१। १५४) वहाँ राजाका अर्थादि सुखोंका सेवन करना कहा था और यहाँ सभी सुखोंका मूर्तिमान् होकर श्रीदशरथजी महाराजकी सेवा करना कहा है। यहाँ साथमें साधु और विप्रोंका समाज है। इनमेंसे साधु-समाज मूर्तिमान् नित्य सुख अर्थात् मोक्ष है और विप्रसमाज जन्यसुख है जो अर्थ, धर्म, कामसे प्राप्त होता है। साधुसङ्गसे अपवर्गकी प्राप्ति होती है, यथा—*'संत संग अपबर्ग कर कामी भवकर पंथ।'* (७। ३३) विप्र राजाको वेदविधिके अनुसार कर्म-धर्मादि कराते हैं जिससे अर्थ-धर्म-कामकी प्राप्ति होती है।

* सुर—१७२१, १७६२, छ०। सुख—१६६१, १७०४, को० रा०।

'सुर सेवा' पाठमें भाव यह है कि पूर्व राजाको इन्द्र और वसिष्ठजीको सुरगुरु बृहस्पति कह आये हैं, यथा—*'सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुरगुरु संग पुरंदर जैसे॥'* बाकी रहे देवता। उनको यहाँ कहते हैं—*'साधु समाज संग* महिदेवा।' इसमें शंका होती है कि साधु-ब्राह्मण राजाकी सेवा करते हैं, यह कहना अनुचित है। उसका समाधान यह है कि यहाँ साक्षात् साधु-ब्राह्मणोंका सेवा करना नहीं कहते, यहाँ तो उत्प्रेक्षामात्र है। राजाको इन्द्रसमान कहा तो साधु-ब्राह्मणको सुरसमान कहा, सुर इन्द्रकी सेवा करते हैं। सेवा करना देवताओंका कहा। यहाँ यह नहीं कहते कि साधु-ब्राह्मण सुरोंके समान सेवा करते हैं। किंतु *'जनु करहिं'* ऐसा कहते हैं। (न राजा वास्तवमें इन्द्र और न साधु-विप्र देवता)। [राजा कश्यप मनुका अवतार हैं और कश्यप मनु सबके पिता हैं, इस भावसे सेवा करना उचित है। (पं०, रा० प०) अथवा, यहाँ गुप्त हेतूत्प्रेक्षा है।' देवता सेवा कर रहे हैं, क्योंकि राजाके पुत्र उनके रक्षक हैं' (वै०) अथवा, साधु-विप्रका नीति-उपदेश करना, वेदविधिसे कर्म कराना, राजाका दान स्वीकार करना, वेदमन्त्रोंका यथावसर पढ़ना—यह सब राजाकी सेवा है। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—२ *'सोहत साथ सुभग सुत चारी।'''* इति। (क) प्रथम साधु-ब्राह्मणका सङ्ग कहा, पीछे अपवर्गकी प्राप्ति कही, क्योंकि साधु-ब्राह्मणके सत्सङ्गसे अपवर्गकी प्राप्ति होती है। (ख) *'सोहत'* का भाव कि (उत्तम पदार्थ उत्तमके ही पास शोभा पाता है। अधिकारीको पाकर ही अधिकारके पदार्थकी शोभा है, अनधिकारीके पास नहीं) नीचके घर अर्थ-धर्म-काम नहीं सोहते, पापीको मोक्ष होना नहीं सोहता। (ग) *'जनु अपबरग सकल तनु धारी'* इति। मोक्ष चार प्रकारका है, सालोक्य (जिसमें मुक्त जीव भगवान्‌के साथ एक लोकमें वास करता है), सारूप्य (जिसमें उपासक अपने उपास्यदेवके रूपमें रहता है और अन्तमें उसी उपास्यदेवका रूप प्राप्त कर लेता है), सामीप्य (जिसमें मुक्त उपासक अपने उपास्यदेवके समीप रहता है।), सायुज्य (जिसमें प्रभुके अङ्गमें भूषण आदिरूपसे लीन रहता है।) जहाँ केवल राजा हैं वहाँ चारों पुत्रोंको चार फल कहा है, यथा—*'नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनु धारी॥'* (३०९। २) राजा ऐसे सुकृती हैं कि चारों फल और चारों मोक्षरूप धारण करके मिले, तब शोभाको प्राप्त हुए। तात्पर्य कि बिना अधिकारीको प्राप्त हुए इनकी शोभा नहीं है।

नोट—२ (क) पूर्व *'नृप समीप सोहहिं''''* *'जनु धन ''''''''* कहा गया। वहाँ *'नृप'* शब्द दिया गया और केवल *'नृप'* के साथ चारोंका होना लिखा गया। दशरथजी राजाकी हैसियतसे माने गये और राजाको अर्थ-धर्मादिकी आवश्यकता होती है, अतः वहाँ *'नृप'* कहकर उनके साथ चारों फलोंका तनधारी होकर सोहना कहा। यहाँ दशरथजी अकेले नहीं हैं, किंतु *'साधु समाज संग महिदेवा।'* तथा *'सोहत साथ सुभग सुत चारी'* दोनों हैं। साधु-ब्राह्मणके सङ्गसे दशरथजीको सदैव मोक्षकी प्राप्ति है ही, इसीसे राजाका अपवर्गोंसे शोभित होना नहीं कहा, किंतु अपवर्गोंका उनके पास शोभित होना कहा। यहाँ दशरथजी नृपकी हैसियतसे नहीं वरंच भक्त या मुक्तजीवरूप माने गये हैं। (ख) *'तनु धारी'* कहनेका भाव कि मोक्षका कोई स्वरूप नहीं है, इससे तन धारण करनेकी उत्प्रेक्षा की गयी। पुनः भाव कि अपवर्ग तो उन्हें स्वाभाविक, साधारण ही प्राप्त थे ही। उससे उनकी शोभा कैसे कहते? हाँ, जब वे शरीरधारी होकर पास रहें तब वे शोभित कहे जा सकें, इसीसे *'तनुधारी'* होनेकी उत्प्रेक्षा की गयी।—३०९। २ देखिये। (ग) बैजनाथजी लिखते हैं कि यहाँ प्रभु श्रीरामजी सायुज्य मुक्ति हैं, प्रभुके समान रूप होनेसे भरतजी सारूप्य हैं और प्रभुके सदा निकटवर्ती होनेसे लक्ष्मणजी सामीप्य हैं तथा भरतजीके निकटवर्ती होनेसे श्रीशत्रुघ्नजी सालोक्य हैं। (घ) देवताओंको अर्थ-धर्म-कामकी प्राप्ति है, मोक्षकी प्राप्ति नहीं है और राजाको चारों मोक्ष मानो चारों रूप धरकर मिले हैं, यह विशेषता है। (पं० रामकुमारजी) यह केवल साधु-विप्र-संगसे। (ङ) श्रीदशरथजी तो मुक्ति चाहते ही न थे, इसीसे चारों मोक्ष शरीर धारण करके स्वयं आ रहे। यथा—*'राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं।'* मानसमें चारों मोक्षोंका अस्तित्व,

यथा—*'जे रामेश्वर दरसन करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥'* (६।३) *'पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं।'* (६। ११५) *'तनु तजि तात जाहु मम धामा।'* (३। ३१। १०) *'गीध गयउ हरिधाम।'* (३।३२) *'राम कृपा बैकुंठ सिधारा'* इत्यादि (यह सालोक्य है); *'जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥'* (७। ४। ६) (यह सामीप्य है) *'गीध देह तजि धरि हरि रूपा।'* (३। ३२। १) यह सारूप्य है; *'जो गंगाजल आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥'* (६। ३। २) *'हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे'* (शबरीजी इत्यादि। यह सायुज्य है)। (प० प० प्र०)

मरकत कनक बरन बर जोरी*। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥७॥
पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥८॥
दो०—रामरूप नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलकगात लोचन सजल उमासमेत पुरारि॥३१५॥

अर्थ—मरकतमणि और सुवर्णके रंगकी जोड़ियोंको देखकर देवताओंको कुछ थोड़ी प्रीति नहीं हुई (अर्थात् बहुत हुई)॥७॥ फिर वे श्रीरामचन्द्रजीको देखकर हृदयमें हर्षित हुए और राजाकी सराहना कर-करके उन्होंने फूलोंकी वर्षा की॥८॥ श्रीरामचन्द्रजीके नखसे शिखापर्यन्त सुन्दर रूपको बारम्बार देख-देखकर उमा (सतीजी) सहित श्रीमहादेवजीका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये॥३१५॥

टिप्पणी—१ *'मरकत कनक……'* इति। (क) मरकत श्याममणिके वर्णसमान श्रीरामजी तथा श्रीभरतजी श्यामवर्ण हैं। कनकवर्णसमान श्रीलक्ष्मण और शत्रुघ्नजी गौरवर्णके हैं। एक श्याम, एक गौर, इस तरह श्रीराम-लक्ष्मणकी एक जोड़ी और श्रीभरत-शत्रुघ्नजीकी एक जोड़ी है। अथवा, श्रीराम-भरत श्याम-श्यामकी एक जोड़ी और श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्न गौर-गौरकी एक जोड़ी, परंतु श्रीराम-लक्ष्मणकी जोड़ी सदा साथ रहती है और इसी तरह भरत-शत्रुघ्नजी साथ रहते हैं, इससे श्याम-गौरकी जोड़ी विशेष संगत अर्थ होगा। (प्र० सं०) (ख) *'देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी'* इति। श्याम-गौरकी जोड़ी देखकर प्रीति होनेमें भाव यह है कि श्याम-गौरकी जोड़ी अत्यन्त सुन्दर है, मनको हर लेनेवाली है, यथा—*'तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥'* (२१९। ४), *'रामु लषनु दसरथ के ढोटा। दीन्ह असीस देखि भल जोटा॥'* *'रामहि चितइ रहे थकि लोचन।……।'* (२६९। ७-८) तथा यहाँ *'मरकत कनक बरन बर जोरी……'*। ☞देवताओंके भावमें मूर्तिका वर्णमात्र वर्णन किया, शिवजीके भावमें (आगे) समस्त रूपका वर्णन करेंगे।

टिप्पणी—२ *'पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरषे।……'* इति। (क) प्रथम जोड़ीको देखकर चारों भाइयोंमें प्रीति हुई, फिर केवल श्रीरामजीको पृथक् देखकर हर्षित हुए। कारण यह है कि यद्यपि चारों भाई सुन्दर हैं तथापि श्रीरामजी सबसे अधिक सुन्दर हैं। यथा—*'चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा॥'* (१९८। ६) (ख) देवताओंके तन, मन, वचन तीनोंका हाल यहाँ कहते हैं—*'हिय हरषे'* यह मनका हाल है, मनसे हर्षित हुए, *'सराहि'* यह वचनका हाल है और *'सुमन बरषे'* यह तनका हाल है, शरीरसे फूल बरसाये। इस प्रकार उनके मन, वचन, तन प्रभुमें लगे हुए दिखाये। (ग) *'भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि। लगे सराहन सहस मुख……।'* (३१३) उपक्रम है और *'पुनि रामहि बिलोकि हिय हरषे। नृपहि सराहि……'* उपसंहार है। अर्थात् दोहा ३१३ से लेकर यहाँतक देवताओंके व्यवहारका वर्णन किया गया। देवता व्यवहारी हैं, इसीसे उन्होंने प्रथम राजाका *'भाग्य बिभव'* देखकर राजाकी प्रशंसा की। जब शिवजीने समझाया तब श्रीरामजीको देखकर राजाकी प्रशंसा करने लगे। तात्पर्य कि प्रथम अर्थके सम्बन्धसे प्रशंसा की थी और अब परमार्थके सम्बन्धसे प्रशंसा करते हैं। उपक्रम और उपसंहार दोनोंमें

* तनु—१७२१, छ०। बर—१६६१, १७०४, १७६२, को० रा०।

दो सम्बन्धसे प्रशंसा करके जनाया कि स्वार्थ और परमार्थ दोनोंमें राजा प्रशंसाके योग्य हैं। न तो किसीने ऐसा स्वार्थ सिद्ध किया और न परमार्थ ही, दोनोंमें इनके समान दूसरा नहीं।

टिप्पणी—३ '*रामरूप नख सिख*……' इति। (क) [अब देवताओंसे शिवजीमें अधिक प्रेम दिखा रहे हैं। देवताओंके सम्बन्धमें '*देखि सुरन्ह*' ऐसा कहा और शिवजीके सम्बन्धमें '*बारहिं बार निहारि*' कहा। '*देखि*' और '*निहारि*' से भी सामान्य और विशेष, स्थूल और सूक्ष्मका भेद दर्शित किया। पुनः, देवताओंका चित्त चारों तरफ रहा, वे कभी नगर देखते, कभी स्त्री-पुरुषोंको देखते, कभी मण्डपको और तब श्रीरामजीको। यथा—'*देखि जनकपुर सुर अनुरागे*', '*देवन्ह देखे दसरथ जाता*' इत्यादि। और शिवजीका चित्त एकाग्र श्रीरामरूपमें रमा रहा; उनकी दृष्टि और कहीं नहीं गयी। बारंबार श्रीरामजीको ही नखसे शिखातक देखते हैं, उनकी दृष्टि प्रपञ्चमें नहीं है। पुनः शिवजीकी जो दशा '*पुलक गात लोचन सजल*' हुई वह दशा देवताओंकी नहीं हुई। (प्र० सं०)] (ख) '*बारहिं बार निहारि*' इति। बारंबार निहारनेमें भाव यह है कि वह '*माधुरी मूरति साँवली सूरति*' नखशिखसे ऐसी सुन्दर है कि उसे देखनेसे तृप्ति नहीं होती; यथा—'*चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥*' (१४८। ६), '*दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन।*' (२। २६०) इत्यादि। पुनः भाव कि नखसे शिखतक जिसी अङ्गको देखते हैं, उसीमें भूले रह जाते हैं, दूसरे अङ्गके दर्शनका ध्यान नहीं रह जाता, पूरा रूप सर्वांग एक बारमें नहीं देख पाते। अतः बार-बार देख-देखकर हृदयमें जमाते हैं। (प्र० सं०) पुनः भाव कि '*परम प्रेममय मृदु मसि*' करके '*चित्त-भीति*' पर लिख लेना चाहते थे, पर '*लोचन रामरूप ललचाने*' हैं, इससे मनको बारंबार बाहर ले आते हैं। चित्तभीतिपर लिख नहीं पाते। (गी० १। १०६) में इसी रूपके सम्बन्धमें इसी अवसरपर कहा है—'*सारद सेष संभु निसि बासर चिंतत रूप न हृदय समाई।*' वही भाव यहाँ है। (प० प० प्र०) (ग) '*पुलक गात लोचन सजल*', यह प्रेमकी दशा है, यथा—'*तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन।*……' (२२८) (घ) '*पुरारि*' का भाव कि त्रिपुरके मारनेमें शिवजीको जैसा सुख हुआ था वैसा ही श्रीरामरूप देखनेसे हुआ। (जैसा आनन्द त्रिपुरके मारनेपर हुआ था उससे कहीं बढ़कर आनन्द इस समय है, क्योंकि पूर्व त्रिलोकको सुखी जानकर आप सुखी तो अवश्य हुए पर '*पुलक गात लोचन सजल*' नहीं हुए थे।) यहाँ रामरूप-दर्शन और समरमें विजयकी प्राप्ति दोनों सुखोंकी परस्पर उपमा है, यथा—'*मूक बदनु जनु सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई॥*' (३५०। ८) (परंतु जैसे उदाहरणमें '*एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु। भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु॥*' (३५०), वैसे श्रीशिवजी दूलहरूप देख-देखकर त्रिपुरविजयी होनेके सुखसे कहीं अधिक सुख पा रहे हैं।) (ङ) देवताओंका चारों भाइयोंको देखना प्रथम कहा गया, शिवजीका देखना पीछे कहा गया। इससे पाया गया कि देवता आगे हैं, शिवजी पीछे। इसी तरह अपने विवाहमें भी शिवजी पीछे ही रहे, यथा—'*चले लेन सादर अगवाना॥ हिय हरषे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी॥ शिव समाज जब देखन लागे।*……' (१। ९५)

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा। तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा॥ १॥
ब्याह बिभूषन बिबिध बनाए। मंगल सब* सब भाँति सुहाए॥ २॥
सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन†। नयन नवल राजीव लजावन॥ ३॥
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनहीं मन भाई॥ ४॥

अर्थ—मोरके कण्ठकी द्युतिके समान श्याम अङ्ग है, बिजलीकी भी अत्यन्त निन्दा करनेवाले सुन्दर पीत रंगके वस्त्र (पहिने) हैं॥ १॥ अनेक प्रकारके विवाहके आभूषण (अङ्ग-अङ्गमें) सजाये हुए हैं (जो) सब माङ्गलिक और सब प्रकारसे सुन्दर हैं॥ २॥ सुन्दर मुख शरदपूनोंके निर्मल चन्द्रमाको और नेत्र नवीन

* मंगल सब—१६६१। मंगलमय—औरोंमें। † सुहावण—१६६१।

खिले हुए लाल कमलको लज्जित करनेवाले हैं॥ ३॥ सम्पूर्ण सुन्दरता अलौकिक है, कही नहीं जा सकती, मन-ही-मन अच्छी लग रही है॥ ४॥

टिप्पणी—१ **'केकि कंठ·····'** इति। [(क) ध्यान जो यहाँ वर्णन किया जा रहा है, यह वह है जैसा शिवजीने देखा। देवताओंके हृदयमें द्रव्य बसा रहता है, क्योंकि वे व्यवहारमें निपुण हैं। उनकी दृष्टिमें लक्ष्मीका विलास है, इसीसे उनके भावानुसार चारों भाइयोंका वर्ण मरकतमणि और कनकके समान कहा गया। शिवजी प्रेमी हैं और विरक्त भी, अतएव इनके भावानुसार प्रेमीके रंगकी उपमा दी गयी। मोर मेघोंका अनुरागी है और मेघ श्रीरामजीके शरीरके समान श्याम हैं। मोर श्रीरामजीके श्याम रंगका अनुरागी है, इसलिये श्रीरामजीका वर्ण मोरके रंगके समान कहा गया। **दुति** (द्युति)=शोभा, कान्ति। (**'केकि कण्ठ दुति'** से उस चमककी लहरसे तात्पर्य है जो मोरके कण्ठकी ओर बारंबार लगातार देखनेसे दिखायी देती है। (मा० सं०) उसमें नीलकमलकी श्यामता और नीलमणिकी तेजस्विता (चमक) दोनों हैं। (प० प० प्र०)] (ख) **'सुरंगा'** का भाव कि अपने सुन्दर रंगसे तड़ितका निन्दक है।

टिप्पणी—२ (क) **'बिबिध'** जैसे कि मौर, कुण्डल, मणिमाल, पदिक, विजायठ, कड़ा, कंकण, मुद्रिका, किंकिणि इत्यादि। **बनाए** =पहनाये। **'मंगलमय'** से जनाया कि सबोंमें दिव्य स्वर्ण और दिव्य मणि लगे हैं। (माङ्गलिक और पीतवर्णके भी सूचित किये।) **'सब भाँति सुहाए'** अर्थात् रंगसे, बनावसे, वस्तुसे। (सब तरहसे शोभायमान। जहाँ जैसी बनावट—सजावट आदि चाहिये वहाँ वैसी ही है।)

(ख) **'सरद·····लजावन'**— **'सरद'** को आदिमें और **'लजावन'** को अन्तमें देकर जनाया कि इन दोनोंका अन्वय दोनों चरणोंमें है। **'सरद'** 'चन्द्र' और **'नवल राजीव'** दोनोंके साथ हैं। यथा—**'सरद सरबरीनाथ मुख सरद सरोरुह नयन।'** **'बिमल बिधु'** कहकर पूर्णिमाका चन्द्र सूचित किया। (ग) **'बिमल बिधु'** और **'नवल राजीव'** कहनेका भाव कि सुन्दर मुख और नेत्र उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट उपमाको लज्जित करनेवाले हैं। **'बिमल'** और **'नवल'** से उपमाओंकी उत्कृष्टता दिखायी। (घ) **'अलौकिक'** अर्थात् लोकमें ऐसी सुन्दरता नहीं है जिसकी उपमा देकर कुछ कह सकें। इसीसे कहा कि **'कहि न जाइ मनही मन भाई'**; यथा—**'मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥'**

बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा॥ ५॥
राजकुअँर बरबाजि देखावहिं। बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं॥ ६॥
जेहि तुरंग पर रामु बिराजे। गति बिलोकि खगनायकु लाजे॥ ७॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेषु जनु काम बनावा॥ ८॥

अर्थ—साथमें सुन्दर भाई शोभित हैं (जो) चञ्चल घोड़ोंको नचाते जा रहे हैं॥ ५॥ राजकुमार अपने श्रेष्ठ घोड़ोंको (अर्थात् उनके गुण) दिखा रहे हैं। वंशकी प्रशंसा करनेवाले विरदावली सुना रहे हैं॥ ६॥ जिस घोड़ेपर श्रीरामजी विराजमान हैं उसकी चाल (गति) देखकर गरुड़ लज्जित हो गये॥ ७॥ सब प्रकार सुन्दर हैं; कहा नहीं जाता, मानो कामदेवने घोड़ोंका वेष धारण किया है॥ ८॥

टिप्पणी—१ **'बंधु मनोहर·····'** इति। (क) देवता दशरथजीको देखते हैं, उनके साथ चारों भाइयोंको देखते हैं, महादेवजी श्रीरामजीको देखते हैं और श्रीरामजीके साथ भाइयोंको देखते हैं। भाव यह कि देवताओंकी दृष्टिमें व्यवहार है और शिवजीकी दृष्टिमें केवल परमार्थ है, उनकी दृष्टिमें चारों भाई एक ही मूर्ति हैं, इसी भावसे वे भाइयोंको श्रीरामजीके सङ्ग ही देखते हैं। देवता उनको राजाके सङ्ग देखते हैं और राजाको सराहते हैं कि धन्य हैं राजा, जिनके ये चार पुत्र हैं, यह मायाका व्यवहार है। (ख) **'मनोहर'**—श्रीरामजीकी शोभाका वर्णन किया, भाइयोंकी शोभा **'मनोहर'** विशेषणसे कही और सङ्गमें शोभित होना कहा; इस प्रकार सूचित किया कि जो शृङ्गार श्रीरघुनाथजीका वर्णन किया, वही शृङ्गार भाइयोंका भी है। सभी मनको हरनेवाले हैं और यह भी दिखाया कि यद्यपि घोड़े अत्यन्त चपल हैं तथापि वे घोड़ोंको श्रीरामजीके घोड़ेके

आगे नहीं बढ़ाते, बाग ठाँसे (थामे) उसी जगह नचाते हैं। सङ्गमें रहते हैं इसीसे सोह रहे हैं। **'चपल'** से जनाया कि उड़ना चाहते हैं, रुकना नहीं चाहते।

टिप्पणी—२ ***'राजकुअँर बर बाजि……'*** इति। (क) प्रथम श्रीरामजीकी सवारी कही, फिर भाइयोंकी और तब राजकुमारोंकी। इससे जनाया कि इसी क्रमसे सब चल रहे हैं। आगे श्रीरामजी हैं, उनके आसपास भाई हैं और भाइयोंके आसपास राजकुमार हैं। (ख) ***'बर बाजि'*** कहकर जनाया कि जिन घोड़ोंपर बारातके प्रस्थानसमय वे सवार थे, उन्हींपर यहाँ फिर सवार हुए। वहाँपर भी घोड़ोंको ***'बर बाजि'*** कहा है और उनकी श्रेष्ठता वर्णन की है, यथा—***'रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥ सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥'''निदरि पवन जनु चहत उड़ाने। तिन्ह सब छयल भये असवारा। भरत सरिस बय राजकुमारा॥'*** (२९८। ४—७) वही सब भाव ***'बर बाजि देखावहिं'*** के हैं। सूचीकटाहन्यायसे श्रीरामजीके घोड़ेका वर्णन पीछे किया। (अर्थात् श्रीरामजीके घोड़ेका वर्णन भारी काम था, इसलिये उसका वर्णन अन्तमें किया, पहले छोटा काम कर लिया तब बड़ेमें हाथ लगाया।) (ग) ***'बंस प्रसंसक बिरिद सुनावहिं'*** इति। राजकुमार अपने-अपने घोड़ोंका हुनर (गुण) और उनके नचानेके गुण (कला) जो ये जानते है, उनको इस प्रकारसे दिखा रहे हैं कि प्रशंसक प्रशंसा करने लगे। ***'बिरिद सुनावहिं'*** अर्थात् वंशकी और वंशके सम्बन्धसे राजकुमारोंकी प्रशंसा करते हैं।

टिप्पणी—३ ***'जेहि तुरंग पर रामु……'*** इति। (क) ***'तुरंग'*** नाम यहाँ दिया क्योंकि ***'तुरंग'*** का अर्थ है जो 'तुरा' (शीघ्रता) से गमन करे। गतिसे गरुड़का लज्जित होना कहते हैं, इसीसे गतिसूचक ***'तुरंग'*** शब्द यहाँ दिया। (ख) ***'राम बिराजे'*** का भाव कि घोड़ा ऐसा सुन्दर है कि उसपर सवार होकर श्रीरामजी शोभाको प्राप्त हुए। (***'बिराजे'*** का अर्थ है कि विराजमान हुए सवार हैं।) (ग) ***'गति बिलोकि'***— 'देखना' कहा, क्योंकि गरुड़ विष्णुकी सवारीमें वहीं सब देवताओंके साथ ही उपस्थित हैं। यहाँ चाल देखकर पक्षिराजका ही लज्जित होना कहा, अन्य देवताओंके वाहनोंका नहीं, कारण कि पक्षिराज वेगमें सबसे बढ़े-चढ़े हैं, इसीसे उनका लज्जित होना कहा। श्रीरामजीके घोड़ेकी गति अपनेसे अधिक देखकर लजा गये। राजकुमारों और श्रीरामजीके घोड़ेमें यह अन्तर दिखाया। (घ) यहाँ 'पञ्चम प्रतीप अलङ्कार' है।

टिप्पणी—४ ***'कहि न जाइ……'*** इति। (क) अर्थात् अकथ्य है। ***'सब भाँति सुहावा'*** अर्थात् वयसे, बलसे, शरीरसे, रूपसे, गुणसे, आभूषण, गति, वर्ण, जाति और शृङ्गार इत्यादि सब भाँतिसे सुन्दर है, इनमेंसे प्रत्येक भाँति अकथ्य है, कहते नहीं बनता। (ख) पूर्व सवारकी शोभाको अकथ्य कह आये, यथा—***'सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनही मन भाई॥'*** (४) और यहाँ घोड़ेकी शोभा भी अकथ्य बतायी। पर श्रीरामजीकी उपमा नहीं है, उनकी सुन्दरता अलौकिक है (यथा—***'नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते॥ हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुंदरताई॥'*** (३। १९) यह खरदूषण राक्षसका वाक्य है कि त्रैलोक्यमें ऐसा सुन्दर कोई नहीं है।) और घोड़ेकी उपमा काम है। इससे जनाया कि सवारीकी शोभा घोड़ेसे अधिक है। (घोड़ेकी उत्प्रेक्षाके लिये कोई उपमा मिली तो सही, पर सवारकी उत्प्रेक्षा भी न मिली। यहाँ 'अनुक्तविषया-वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है)।

नोट—१ भाइयों और राजकुमारोंका घोड़ोंको नचाना, उनकी चाल और गुण दिखाना कहा गया, परंतु श्रीरामजीके विषयमें नचाना आदि नहीं कहा। यहाँ ***'गति बिलोकि खगनायक लाजे'*** और ***'बिराजे'*** पद देकर इसका समाधान कविने कर दिया है कि वे सब तो शास्त्रविधिके अनुकूल नचाते हैं। और यहाँ वह बात नहीं है। यहाँ तो घोड़ेको नचाना नहीं पड़ता, घोड़ेकी चाल ही अति सुन्दर है, वह तो स्वयं प्रभुके मनसे मन मिलाये हुए उनकी इच्छा-अनुसार बड़ी सुन्दर गतिसे चलता है। दूसरे, यह विवाहका समय है। अवस्था, स्वभाव और विवाहसमयके अनुसार दूलहको गम्भीर रहना ही चाहिये। अतः नचाना नहीं कहा गया। (पं०) आगे श्रीरामजीको **'घन** (मेघ) कहा है, मेघ गम्भीर होता ही है!

छंद—जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु रामहित अति सोहई।
आपने बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति* मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥
दो०—प्रभु मनसहि लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव॥ ३१६॥

अर्थ—मानो श्रीरामजीके लिये एवं रामप्रेमके कारण कामदेव घोड़ेका वेष बनाकर अत्यन्त सोह रहा है। अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चालसे समस्त लोकोंको विशेष रीतिसे मोहित कर रहा है। सुन्दर मोती, मुक्ता और माणिक्य जड़ी हुई जड़ाऊ जीन अपनी ज्योतिसे जगमगा रही है। बढ़िया रमणीय किंकिणी और सुन्दर लगामको देखकर सुर-नर-मुनि सब ठगे-से रह गये। प्रभुके मनमें अपने मनको लवलीन करके चलते हुए घोड़ा ऐसी छबि पा रहा है। (अर्थात् इशारा करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती) मानो कोई बादल, बिजली और तारागणसे विभूषित (अर्थात् सहित) किसी सुन्दर मोरको नचा रहा है॥ ३१६॥

नोट—१ *'जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु रामहित'* इति। कामने घोड़ेका वेष क्यों बनाया? रामहित। अर्थात् ब्याहका समय है, दूलहरूपकी अद्भुत शोभा देखनेकी इच्छा त्रिलोकको है, ऐसे समय वाहन भी उत्तम होना चाहिये, अतः प्रभुकी शोभावृद्ध्यर्थ कामदेव सुन्दर घोड़ेका वेष बनाकर शोभित है। (वै०) कामदेवने सोचा कि हजारों घोड़े सामने लाये जावेंगे तब हमें अत्यन्त गर्वीला और बाँका अत्यन्त शोभायुक्त जानकर हमारे ही ऊपर वे सवार होंगे। अतएव उसने घोड़ेका वेष धारण किया।

टिप्पणी—१ (क) *'रामहित अति सोहई'* का भाव कि काम तो सदा ही सोहता है, पर श्रीरामजीके लिये *'अति'* सोह रहा है। अर्थात् आज उसने अत्यन्त शोभा धारण की है। पुनः, *'रामहित'* का भाव कि जिसमें श्रीरामजी शोभा देखकर प्रसन्न हों, हमारे ऊपर सवार हों, इसलिये *'अति सोहई'*। [पुनः भाव कि काम अपने रूपसे तो सोहता ही है। आज 'पशु' (घोड़ा) बना है, तो इस रूपमें भी सोह रहा है और श्रीरामजीके लिये बना इससे अत्यन्त सोहता है। ☞ भगवान्‌के प्रीत्यर्थ जो काम हो, जो शरीर उनके काममें लगे, उसीकी अत्यन्त शोभा है।] (ख) *'आपने बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई'* इति। अवस्था युवा वा किशोर, बल अर्थात् शरीर पुष्ट, रूप अर्थात् सहज ही मनको मोहनेवाला, गुण अर्थात् स्वामीकी इच्छापर चलनेवाला और गति (चाल) इनसे सकल भुवनको मोह लेता है और इसपर भी शृङ्गार किये हुए है, यथा—*'जगमगत जीनु जराव'*''', इससे समस्त भुवनोंको *'बिमोहई'* विशेष मोहित कर रहा है। *'सकल भुवन बिमोहई'* से जनाया कि ऐसा सुन्दर श्रेष्ठ घोड़ा चौदहों भुवनोंमें कहीं नहीं है। पुनः, भाव कि प्रथम *'रामहित अति सोहई'* कह आये, अति सोहता है, इसीसे विशेष मोहित करता है। पुनः भाव कि कामने अत्यन्त सुन्दर वेष बनाया फिर भी श्रीरामजी मोहित न हुए, काम उनको मोहित नहीं कर सकता, हाँ, चौदहों भुवन मोहित हो गये। [पुनः भाव कि श्रीशिवजी आदि जिनके हृदयमें श्रीरामजीका निवास है, जिनको काम कभी न मोहित कर सका; उनको भी आज उसने मोहित करनेके लिये बाजिरूप धारण किया और सबको मोहित कर लिया, क्योंकि आज श्रीरघुनाथजी उसके सहायक हैं। विष्णु-शिवादिके मोहित होनेसे भुवनोंका मोहित होना कहा। (प्र० सं०) श्रीरामजीके सुख-परमानन्ददायक संस्पर्शके लिये शिवजीको ज्योतिषी बनना पड़ा, वही परमदुर्लभ लाभ सुगमतासे पानेका सुयोग आज श्रीरामकृपासे आया है, उसे कौन कैसे जाने देगा? इस भावसे कामदेव सुन्दर घोड़ा बना। प्रभुके संस्पर्शसे आज वह शिवादिको भी मोहित कर रहा है। *हित*=प्रेम। (प० प० प्र०)] अथवा, 'भुवन' का अर्थ

* सो—१६६१।

'लोग, जन' भी है; यथा—'**लोकस्तु भुवने जने इत्यमरः**'। अर्थात् समस्त प्राणियोंको। (ग) यहाँ वय, बल, रूप, गुण और गति पाँचका उल्लेख किया। क्योंकि यहाँ कामकी उत्प्रेक्षा की गयी और काम पञ्चबाणधारी है, जिनसे वह सकल भुवनको अपने वशमें करता है, यथा—'***काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे।***' (२५७। १) यहाँ वय-बलादिसे भुवनोंको विमोहना कहकर जनाया कि पञ्चबाण ही वय-बल आदि बने हैं।

नोट—२ बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि काम तो अपने वय-बलरूप गुणसे सदा भुवनको जीतता ही है; यहाँ भी वही बात लिखनेमें क्या नयी बात हुई जो ऐसा लिखा? और उत्तर देते हैं कि यहाँ '***अपने***' शब्दमें भाव यह है कि वह सदा औरोंके वय-बलादिसे सबको जीतता है, अर्थात् स्त्रीके वय-बलादिसे पुरुषको और पुरुषके रूप-वय-बलादिसे स्त्रीको जीतता है। पर आज श्रीरामजीका सेवक बना है, उस रामसेवाका फल यह है कि आज वह सम्मुख समरमें तीनों लोकोंके जीवोंको एक साथ ही ठग रहा है। सदा चोरीसे करतब करता था, आज मैदानमें, इत्यादि।

प० प० प्र०—'***आपने बय''''बिमोहई***' इस चरणमें काव्यकलाकी महत्ता देख पड़ती है। सकल भुवन विमोहित हुआ तो यहाँ कविताकी गति भी मोहित हो गयी। चरणकी प्रथम दो मात्राओंके बाद एक दीर्घ अक्षर अथवा दो ह्रस्व अक्षर न होनेसे छन्दोभंग हो जाता है। वही दोष यहाँ आ गया।

टिप्पणी—२ '***जगमगत जीनु जराव''''''***' इति। (क) '***जगमगत***'=प्रकाशित हो रही है। ***ललाम***=सुन्दर, यथा—'**ललामः सुन्दरः प्रोक्तो ललामो रत्नमुच्यते।' इत्यनेकार्थः**। '***देखि सुर-नर-मुनि ठगे***'— कामदेवता, मनुष्य और मुनियोंको ठगता ही है, वैसे ही यहाँ भी सुर-नर-मुनि ठगे गये। कामने श्रेष्ठ घोड़ेका वेष बनाकर विश्वको विमोहित किया और किंकिणी लगामको देखकर सुर-नर-मुनि अपनी ओरसे ठग गये। ***किंकिणी***=छोटी-छोटी घंटियाँ वा घुँघुरू। 'जीन और किंकिणी आदि देखकर ठग गये' कहकर जनाया कि यह सब अत्यन्त सुन्दर हैं, मनोहर हैं। ['***ठगे***'=ठग गये। 'ठग जाना' मुहावरा है। 'एकटक रह जाना; आश्चर्यसे स्तब्ध हो जाना; दंग रहना; चकित होना' इत्यादि अर्थमें इसका प्रयोग होता है। यथा—'***तेउ यह चरित देखि ठगि रहहीं।***' (७। ९) (ख) यहाँतक घोड़ेको कामरूप कहा, फिर कामकी कृत्य कही। आगे दूसरा रूपक कहते हैं।

टिप्पणी—३ '***प्रभु मनसहि''''भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव***' इति। (क) यहाँ तारागण, बिजली, मेघ और मोर क्या हैं? श्रीराम-घनश्यामजी ही श्याम मेघ हैं (श्याम तन और मेघ उपमेय-उपमान हैं) यथा—'***लोचन अभिरामा तन घनश्यामा।***' (१। १९२); मणि (वा, मणि-मोतियोंकी लड़ें) तारागण हैं, यथा—'***मंदिर मनि समूह जनु तारा।***' (१९५। ६); वस्त्र (पीताम्बर) बिजली है, यथा—'***तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा।***' (३१६। १) और घोड़ा बरहि (मोर) है, यथा—'***मोर चकोर कीर बर बाजी।***' (३। ३८। ६) (ख) घोड़ेकी उपमा मोर है। घोड़ेको श्रेष्ठ ('वर') कहा है, यथा—'***जेहि बर बाजि राम असवारा।***' (३१७। १) इसीसे मोरको भी श्रेष्ठ ('***बर बरहि***') कहा। '***बर***' पद उपमेयमें है; वही उपमानमें भी है। यहाँ श्रीरामजीको मेघकी और घोड़ेको मयूरकी उपमा देकर घोड़ेकी प्रीति श्रीरामजीमें दिखायी, जैसे मेघमें मोरकी प्रीति होती है। (ग) '***चलत बाजि छबि पाव***'— भाव कि मेघको देखकर मोर नाचता है और जब मेघ मोरपर चढ़कर उसे नचाता है तब उस नाचकी शोभा कौन कह सकता है?

मा० पी० प्र० सं०—१ समझना चाहिये कि जब मेघ योजनभरपर रहता है तब तो मोर नाचता ही है और जब वह आकर उसपर सवार हो गया तो फिर कहना ही क्या? उपमेयकी श्रेष्ठता दिखानेके लिये उपमानको भी श्रेष्ठ कहा जाता है।''''''। २—बाबू श्यामसुन्दरदासजी लिखते हैं कि घोड़ेके 'पाँवकी कान्ति (टाप) मानो नक्षत्रगण हैं। वह श्रेष्ठ वर (दूलह रामचन्द्र) को ऐसा नचा रहा है मानो बिजलीसमेत बादल मोरको नचा रहा हो।' पर यह अर्थ असङ्गत है। यहाँ घोड़ेकी चालकी छबि उत्प्रेक्षाका विषय है।

प्र० स्वामीजीका मत है कि मेघ मोरको नचाता है, ऐसा अर्थ करनेसे यह सिद्ध होगा कि श्रीरामजी घोड़ेको नचाते चलते थे, पर यहाँ वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। अतः यहाँ अर्थ है कि 'मोर मेघको नचाता है।' उड़गन और तड़ित दोनों शब्द श्रीराम और वाजि दोनोंमें चरितार्थ हैं। ब्याह, विभूषण और जीन आदिके मोती, मणि-माणिक्य तारागण हैं। रामजी केकीकण्ठ हैं तो वाजि केकी ही है; दोनों श्याम हैं। पीताम्बर तड़ित है तो वाजिकी लगाम भी सोनेकी होगी ही। मोरके पंखोंके नेत्रमें पीला वर्ण होता है।—यह दास उनके अर्थसे सहमत नहीं है। शब्द हैं *'प्रभु मनसहिं लय लीन मन चलत ………'* प्रभुके मनमें मनको लवलीन किये चलता है। इससे स्पष्ट है कि प्रभुकी इच्छा, प्रेरणाके अनुसार चलता है, इसकी उत्प्रेक्षामें उनका मोरको नचाना कहा गया। प्रभुको हाथ-पैर चलाना नहीं पड़ते।

जेहि बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥ १॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥ २॥
हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥ ३॥

अर्थ—जिस श्रेष्ठ घोड़ेपर श्रीरामजी सवार हैं। शारदा भी उसका वर्णन नहीं कर सकतीं॥ १॥ शंकरजी श्रीरामजीके रूपपर अनुरक्त हो गये। (उस समय उन्हें अपने) पंद्रहों नेत्र अत्यन्त प्रिय लगे॥ २॥ विष्णु-भगवान्‌ने जब श्रीरामजीको प्रेमसहित एवं घोड़ेसहित देखा तो लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु (मूर्तिमान् रमणीयताके पति) लक्ष्मीसहित मोहित हो गये॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'जेहि बर बाजि…'* इति। (क) श्रीरामजीके घोड़ेकी शोभा वर्णन की, अब उपक्रमोपसंहार कहकर शोभा-वर्णनकी इति लगाते हैं। *'जेहि तुरंग पर राम बिराजे।'* (३१६। ७) से प्रारम्भ किया और *'जेहि बर बाजि राम असवारा'* तक घोड़ेकी शोभाका वर्णन किया। (ख) *'जेहि बर बाजि'* का भाव कि जिसकी श्रेष्ठताका वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। *'सारदउ'* 'शारदा भी' कहकर समस्त वर्णन करनेवालोंसे शारदाको श्रेष्ठ ठहराया, यथा—*'सुक से मुनि सारद से बकता…'* (क० ७। ४३) जब वे ही नहीं कह सकतीं तब दूसरा क्या कहेगा। भाव यह कि जिस घोड़ेपर प्रभु हैं वह ऐसा *'बर'* श्रेष्ठ है। पुनः भाव कि सब भाई और सब राजकुमार भी तो *'बर बाजि'* पर सवार हैं, यथा—*'बरन बरन बर बाजि बिराजे।'* (२९८। ४) *'राजकुँवर बर बाजि देखावहिं।'* (३१६। ६) इत्यादि। पर उन *'बर बाजि'* का वर्णन शारदा कर सकती हैं और जिस *'बर बाजि'* पर श्रीरामजी सवार हैं उसका वर्णन नहीं कर सकतीं। इस कथनसे श्रीरामजीके घोड़ेको सबसे श्रेष्ठ एवं विलक्षण जनाया। (घ) पारना=सकना। यथा—*'बाली रिपु बल सहै न पारा।'*

टिप्पणी—२ *'संकरु राम रूप अनुरागे।…'* इति। (क) *'संकरु'*—श्रीरामरूपके अनुरागसे ही शिवजी 'शंकर' कल्याणकर्ता हुए हैं, यथा—*'देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहै लाभ संकर जाना।'* (१। २११) अतः *'संकर'* कहा। *'अनुरागे'* का स्वरूप पूर्व लिख आये—*'पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि।'* (३१५) (ख) देवताओंके देखनेके सम्बन्धमें जनकपुरकी शोभा वर्णन की, क्योंकि देवता लोग व्यवहार लिये हुए हैं, इसीसे उनका व्यवहारसहित श्रीरामजीको देखना (*'देखि जनकपुर सुर अनुरागे।'* (३१४। ४) से *'नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे'* ३१५। ८ तक) कहा। (उनके पश्चात् अनुरागी देवताओंका प्रकरण उठाया) अनुरागमें भगवान् शंकर सब देवताओंसे अधिक हैं, इसीसे अनुरागके प्रकरणमें सबसे पहले इन्हींको कहा। शंकरजी व्यवहार त्यागे हुए हैं, इससे इनका केवल श्रीरामरूप देखना लिखा गया। *'रामरूप नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि। पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥'* (३१५) (इनके दर्शनका) उपक्रम है और *'संकरु राम रूप अनुरागे'* उपसंहार है। (इनके बीचमें श्रीरामजीका ध्यान वर्णन किया गया।) (ग)—*'नयन पंचदस'* इति। शिवजी पञ्चमुख हैं, यथा—*'बिकट बेष मुख पंच पुरारी।'* (२२०। ७) और प्रत्येक मुखमें तीन नेत्र हैं, यथा—'पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्' (*'नयन तीनि*

उपवीत भुजंगा।' (९२। ३) इस तरह कुल पंद्रह नेत्र हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि तीन नेत्र हैं, यथा—*'वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनम्।'* (घ) *'अति प्रिय लागे'* कहनेका भाव कि (व्यवहार तो दो ही नेत्रोंसे सधता था पर पंद्रहों नेत्र एक साथ ही काम आये, आज सब सफल हुए।) श्रीरामरूप उनको अत्यन्त प्रिय है, आज सब नेत्रोंसे अपने अत्यन्त प्रिय प्रभुके (दूलह) रूपका दर्शन कर रहे हैं, इसीसे सब नेत्र *'अति प्रिय'* लगे। (ङ) शंका—'शंकरजीका तीसरा नेत्र अग्निनेत्र है। जब भस्म करना होता है, तभी वह नेत्र खोला जाता है, यथा—*'तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भएउ जरि छारा।'* (८७। ६) तब यहाँ तीसरा नेत्र कैसे खोला?' समाधान—शिवजी जब कोप करके तीसरा नेत्र खोलते हैं तब भस्म करते हैं। [यथा—*'सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रैलोका।'* (८७। ५) और यहाँ तो अति अनुरागसे खोला है। अथवा भगवान्‌के दूलहरूपके दर्शनके लिये अपना स्वभाव छोड़कर आज पाँचों अग्निनेत्र अपनेसे ही खुल गये। भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे वनके विषैले जीव, समुद्रके हिंसक जीव सभी अपना स्वभाव छोड़ देते हैं, जैसा अयोध्या और लंकाकाण्डमें दिखाया गया है। इसीसे आज वे नेत्र भी *'अति प्रिय'* लगे, नहीं तो हिंसामें ही काम आते थे।] विशेष ३१७ (६) में देखिये।

'हरि हित सहित रामु जब जोहे।.........'

इन चरणोंका अर्थ लोगोंने कई प्रकारसे किया है। कोई *'हरि'* का अर्थ 'विष्णुभगवान्' करते हैं और कोई 'घोड़ा' करते हैं। विशेष मत 'विष्णुभगवान्' की ओर है। बैजनाथजी, हरिहरप्रसादजी, पाँड़ेजी, पं० रामकुमारजी, प्रोफे० रामदास गौड़जी, हनुमानप्रसादजी पोद्दार इत्यादिने 'विष्णु' अर्थ किया है। गौड़जी इसीको उत्तम अर्थ मानते हैं।

'विष्णु' अर्थकी पुष्टिमें कहा जाता है कि—(१) 'सब देवताओंमें तीन देवता उत्तम हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। गोस्वामीजीने तीन सम्बन्धसे तीनोंको यहाँ कहा है। शिवजीका अनुराग सेवक-भावसे, विष्णुका मोह समता-भावसे और ब्रह्माका हर्ष वात्सल्य-भावसे।' (पु० रा० कु०, रा० प्र०) (२) दूसरे, 'शंकरजी' और 'विधि' एवं सुरेश आदि अन्य देवताओंका घोड़ेसहित देखना न कहकर केवल *'राम रूप अनुरागे' 'निरखि राम छबि' 'रामहिं चितव' 'रामहिं देखी'* इत्यादि पद इस दोहेभरमें कहे गये, तब रमापतिके सम्बन्धमें रामको घोड़ासहित जोहना कहनेमें क्या विशेषता है, यह जान नहीं पड़ती। क्या और लोग रामरूपपर मोहित हुए और इनपर उस रूपका प्रभाव नहीं पड़ा, केवल घोड़ेकी छबिहीका प्रभाव पड़ा? इस अर्थसे श्रीरामछबिकी उत्कृष्टता जाती रहती है। (३) पहले कहा कि *'हरि हित सहित'*.....' फिर सोचा कि हरिके अनेकार्थ हैं। हरि सूर्य, वानर, विष्णु इत्यादिके अर्थमें भी आता है, इससे उत्तरार्द्धमें उसीको स्पष्ट करनेको कहा कि *'रमापति मोहे।'*

मयंककार अर्थ करते हैं कि 'जब रामचन्द्रजीने हितसहित *'हरि'* (कामदेव) को उसके मनोरथपूर्णार्थ अवलोकन किया तो रमारमेश मोहित हो गये। कामको अवलोकना शृङ्गाररसको धारण करना जानना चाहिये।'

मानसतत्त्वविवरणकार लिखते हैं कि '**हरिः सिंहो हरिर्भेको हरिर्वाजी हरिः कपिरित्यनेकार्थे, एवं च हित पथ्ये गते धृतेति मेदिनी।**' इस प्रकार भाव यह है कि घोड़ेकी चालमें जो अद्भुत काम कर जाना है सो भी और श्रीरामजीको ताकने लगते हैं तो विष्णुभगवान् और लक्ष्मीजी चित्रलिखे-से हो जाते हैं; भाव यह कि छबिछटा देखती ही बनती है वा ऐसा मोह उपज आता है कि ऐसे अनूप अनवद्य पुरुष हमसे भिन्न और चिद्घनानन्द प्रकट हो आया है।'

वीरकविजी *'हरि हित सहित'* का अर्थ 'भले घोड़ेके सहित' करते हैं। वे लिखते हैं कि 'यहाँ हरि शब्द अनेकार्थी होनेपर भी प्रसङ्गबलसे एक घोड़ेकी ही अभिधा है, अन्य अर्थोंका ग्रहण नहीं है। श्रीरामचन्द्रजी घोड़ेपर सवार होकर परछनके लिये जा रहे हैं, उसी समयकी शोभाका वर्णन है।'

गौड़जी—हरि और रमापतिमें पुनरुक्ति नहीं है। *'राम' 'रमापति' 'रमा'* साभिप्राय हैं और 'हरि' की ठीक अभिधाके परिचायक हैं। **रमा**=रमणीयताकी मूर्ति लक्ष्मी। **रमापति**=रमणीयताकी मूर्तिके पति। [इस

तरह *'रमापति'* हरिका विशेषण अथवा *'हरि'* के अर्थका स्पष्ट करनेवाला है। अतिव्याप्ति मिटानेके लिये *'रमापति'* शब्द भी दिया गया—ऊपर (३) में देखिये] **'राम'**=रमणीयताके समुद्र, सबको अपनेमें रमानेवाले।

नोट—१ *'हित सहित रामु जब जोहे'* इति। **हित**=प्रेम, स्नेह। यथा—*'जो कह रामु लषनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥'* (२। १४३) हितसहित देखनेका भाव यह कि इस समय इस विचारसे भगवान् विष्णुने देखा कि ये परतम हैं, इन्हींके अंशसे लावण्यकी खानि करोड़ों विष्णु होते हैं, इस विचारसे जब अपने अंशी पूर्ण परात्परको देखा तो अन्तरङ्ग अनिर्वाच्य शोभाके दर्शन हुए। इससे वह और लक्ष्मीजी अपने आपेमें न रहे, मुग्ध हो गये। रमणीयताकी मूर्ति और उसके स्वामी दोनों इस रमणीयताके सागरमें मग्न हो गये। (गौड़जी)

नोट—२ *'रमा समेत रमापति मोहे'* इति। गौड़जीके भाव नोट १ में आ गये। रमापति और रमा यहाँ बड़े चमत्कारके शब्द हैं। भाव यह है कि लक्ष्मीजी बड़ी ही सुन्दर हैं, सो वे स्वयं ही मोहित हो गयीं और उनके पति क्षीरशायी भगवान्‌को भी कोई मोहित करनेवाला नहीं, क्योंकि सौन्दर्यकी खानि रमा ही उनकी पत्नी हैं, और सुन्दरता कहाँ जो उनको मोह सके। विष्णुभगवान्‌के समान कोई सुन्दर नहीं, सो वे भी मोहित हो गये। फिर और किसीकी क्या चलायी? ऐसा कहकर श्रीराम-छबिकी असीम उत्कृष्टता दिखायी है। विष्णुभगवान्‌का मोहित होना स्वायम्भुवमनुके प्रसङ्गको लेकर कहा गया, क्योंकि उसमें (श्रीरामको) परात्पर ब्रह्मका अवतार माना है—*'संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥'* (१४४। ६) अन्य कल्पोंके अवतारोंमें मोहित होना इस विचारसे कि समयकी बड़ी ही अनूठी छबि है।

नोट—३ बाबा हरीदासजीका मत है कि विष्णुभगवान् जानते थे कि हमारे वाहन गरुड़के समान किसी देवताका वाहन नहीं, पर जब उन्होंने श्रीरामजीके घोड़ेको देखा तो उसमें गरुड़से करोड़ों गुणावेग-बलादि देख प्रेमसहित मोहित हो गये।

टिप्पणी—३ यहाँ और किसी स्त्रीका मोहना नहीं लिखते, केवल *'रमा'* जीका मोहित होना लिखते हैं, यद्यपि वहाँ उमाजी भी थीं और अन्य देवताओंके साथ भी उनकी स्त्रियाँ थीं। बात यह है कि अन्य स्त्रियोंका मोहित होना अनुचित है, रमाका मोहना अनुचित नहीं है, क्योंकि रामजी रमाके पति हैं। यथा—*'जय राम रमारमनं समनं', 'मंगलमूल भयेउ बन तब तें। कीन्ह निवास रमापति जब तें॥'* [मोहेका अर्थ है 'मुग्ध हो गये', औचित्य-अनौचित्यका प्रश्न नहीं उठता। रमणीयताकी मूर्तिके मोहित होनेपर हरिका मोहना कहा गया।]

टिप्पणी—४ इस प्रसङ्गमें शिवजीका पार्वतीसमेत दर्शन करना कहा गया, यथा—*'पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥'* (३१५) विष्णुभगवान्‌का भी रमासमेत दर्शन कह रहे हैं। परंतु ब्रह्माजीका शारदासहित दर्शन करना नहीं लिखा गया, *'निरखि राम छबि बिधि हरषाने'* इतना ही लिखा गया। कारण यह कि इनकी शक्ति शारदा तो श्रीरामजीके घोड़ेके वर्णनमें लग गयी हैं, यथा—*'जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥'*

निरखि राम छबि बिधि हरषाने। आठै नयन जानि पछिताने॥ ४॥
सुर सेनप उर बहुत उछाहू। बिधि ते डेवढ़* लोचन लाहू॥ ५॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥ ६॥

शब्दार्थ—**सेनप**=सेनापति। **सुर सेनप**=षट्‌वदन; कार्तिकेयजी। **डेवढ़** डेवढ़े; डेढ़गुणा; किसी पदार्थसे आधा और अधिक। **लाहू**=लाभ।

---

* डेवढ़े लोचन—को० रा०। डेवढ़ सुलोचन—रा० प्र०, भा० दा०। डेवढ़ लोचन—१६६१। 'डे' को खींचकर पढ़ना चाहिये।

अर्थ—श्रीरामजीकी छबि देखकर ब्रह्माजी हर्षित हुए। (अपने) आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे (कि और न हुए जो दर्शनका विशेष-से-विशेष आनन्द ले सकते)॥४॥ देव-सेनापतिके मनमें बड़ा उत्साह है कि (हम) ब्रह्माजीसे डेवढ़े नेत्रोंका लाभ उठा रहे हैं॥५॥ सुजान सुरपति श्रीरामजीको देख रहे हैं और (महर्षि) गौतमके शापको परम हितकर मान रहे हैं॥६॥

टिप्पणी—१ *'निरखि राम छबि······'* इति। (क) इससे जनाया कि प्रथम ब्रह्माजी आठों नेत्रोंसे देखकर हर्षित हुए, पर जब शिवजीके पंद्रह नेत्र देखे तो पछताने लगे कि हमारे आठ ही नेत्र हैं। (ख) भगवान् शंकरने श्रीरामजीको स्वामिभावसे देखा और स्वामीमें अनुराग किया, यथा—*'संकरु राम रूप अनुरागे।'* भगवान् विष्णुने मित्रभावसे देखा इसीसे *'हित सहित जोहे'* कहा गया। और ब्रह्माजीने वात्सल्यभावसे देखा इसीसे उनके सम्बन्धमें *'हित'* वा *'अनुराग'* नहीं कहा। केवल छबि देखकर प्रसन्न होना कहा। प्रथम दास्यरसको कहा, तब सख्य और तब वात्सल्यको।

टिप्पणी—२ *'सुर सेनप उर बहुत·····'* इति। (क) *'सुर सेनप'* अर्थात् देवताओंके सेनापति। कहनेका भाव कि देवताओंके सेनापति होनेकी प्रतिष्ठा पानेपर भी ऐसा सुख न हुआ था जैसा आज श्रीरामरूपके दर्शनोंसे हुआ। (ख) *'बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू'* इति। नेत्रोंका लाभ श्रीरामजीका दर्शन है, यथा—*'लेब भली बिधि लोचन लाहू।'* (३१०। ६) सुरसेनपके छः मुख और बारह नेत्र हैं। ब्रह्माजीके चार मुख और आठ नेत्र हैं। इस तरह षड्वदनके ब्रह्माजीसे डेवढ़े नेत्र हुए। शंकरजीके पन्द्रह नेत्र देखकर विधिको पछतावा हुआ कि हमारे आठ ही नेत्र हैं और विधिको देखकर कार्तिकेयको हर्ष हुआ कि हमारे विधिसे डेवढ़े नेत्र हैं, हमें उनसे दर्शनका डेवढ़ा आनन्द मिल रहा है—इस कथनसे सूचित हुआ कि देवलोकमें मत्सर-डाह बहुत है। एक दूसरेका परोत्कर्ष नहीं सह सकता। यह भी दिखाया कि अपनेसे कम ऐश्वर्य देखनेसे सुख और अधिक देखनेसे दुःख होता है। भगवान् शंकरकी सबसे श्रेष्ठता यहाँ दिखायी। इनको किसीसे न ईर्ष्या हुई और न किसीके कम नेत्र देखकर इनको उत्साह हुआ। ये तो जितने भी नेत्र इन्हें मिले हैं उतनेहीसे संतुष्ट श्रीरामदर्शनमें अनुरक्त हैं। उन्हें तो इतने ही नेत्र अति प्रिय लगे। [यहाँ शंकरजीमें रामभक्तके लक्षण दिखाये। *'आठवँ जथा लाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखहिं परदोषा॥'* (३। ३६। ४) अन्य किसीमें यदृच्छालाभसंतुष्टत्व नहीं है। इन्द्र तो स्वार्थीशिरोमणि है, वह तो भौतिक लाभमें ही हित जानता है कि आज मेरी कुरूपता नष्ट हो जायगी। हजार भगका रूपान्तर हजार नेत्रमें हो जायँगे। (प० प० प्र०) यहाँ शिवजीसे लेकर *'देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं'* तक भगवत्प्रेमकी विविध भूमिकाएँ क्रमसे दिखायी हैं। (प० प० प्र०)] यहाँ 'काव्यलिंग अलंकार' है।

टिप्पणी—३ *'रामहि चितव सुरेस सुजाना·····।'* इति। (क) शाप अहित है। उसे हित माना। अतः *'सुजान'* कहा। पुनः गौतमजीके शापको परम हित माना, यह इन्द्रकी कृतज्ञता है। कृतज्ञ होनेसे *'सुजान'* कहा, यथा—*'हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना॥'* (६। ६१। १) (ख) *'गौतम श्राप'*—दोहा २१०। १२ में कथा दी गयी है। गौतमजीने इन्द्रको शाप दिया था कि तेरे शरीरमें एक सहस्र भग हो जायँ। बहुत प्रार्थना करनेपर महर्षिने शापानुग्रह किया कि जब सगुण ब्रह्म श्रीरामजीके दूलहरूपका तुम विवाहके समय जनकपुरमें दर्शन करोगे तब ये सब भग नेत्र हो जायँगे। (ग) *'परम हित माना'* इति। *'परम हित'* कहनेका भाव कि प्रथम शाप देकर हित किया कि जिसमें अब आगे किसी पर स्त्रीके पास न जाय और अब उनके अनुग्रहसे वह शाप आशीर्वाद हो गया। सहस्रभग सहस्र-नेत्र हो गये जिनसे आज श्रीरामजीका दर्शन हो रहा है, यह परम हित मुनिके शाप और उनके अनुग्रहसे हुआ। *'माना'* अर्थात् इन्द्र इस समय हजार नेत्रोंसे श्रीरामरूपके दर्शनोंका आनन्द मुनिकी कृपासे मान रहे हैं, मुनिकी कृपाके लिये कृतज्ञता जना रहे हैं। श्रीरामजीकी प्राप्ति जिससे हो वही परम हित है, यथा—*'बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा॥'* (४। ७। १९) (गौतमजीके शापसे ही आज यह अपूर्व आनन्द जिसके लिये सब ईर्ष्या करते हैं, मिला; अतः शाप *'परम हित'* है। अहल्याजीने

भी श्रीरामजीके दर्शन और पदरजस्पर्शकी प्राप्तिपर ऐसा ही माना है, यथा—'*मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना। देखेउँ भरि लोचन हरि भव मोचन*……॥' (१। २११) ☞श्रीरामजीकी प्राप्ति, श्रीरामजीका साक्षात्कार, उनकी भक्ति इत्यादि जिसके भी द्वारा हो, चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो, परम हित है। तथा चाहे शत्रुभावसे हो, चाहे मित्र या किसी भी भावसे हो, सब परम हित ही है)। यहाँ 'अनुज्ञा अलंकार' है। (वीरकवि)

देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं। आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं॥७॥
मुदित देवगन रामहि देखी। नृप समाज दुहुँ हरषु बिसेषी॥८॥
छं०—अति हरषु राजसमाज दुहुँ दिसि दुंदुभी बाजहिं घनी।
बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन हेतु मंगल साजहीं॥
दोहा—सजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन गजगामिनि बर नारि॥३१७॥

शब्दार्थ—**सिहाहीं**=ईर्ष्या करना, स्पर्धा करना, पानेको ललचाना। इस शब्दमें ईर्ष्या और अभिलाषासहित दूसरेकी ओर देखना और उसकी प्रशंसा करना इन सब बातोंका समावेश है। पुरंदर=शत्रुके पुरको तोड़नेवाला=इन्द्र।

अर्थ—सभी देवता देवराज इन्द्रको सिहाते हैं कि आज इन्द्रके समान कोई (भाग्यवान्) नहीं है॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीको देखकर देवसमाज आनन्दित है और दोनों राजसमाजोंमें विशेष हर्ष है॥८॥ दोनों ओर राजसमाजोंमें अत्यन्त प्रसन्नता है, दोनों ओर बहुत-से नगाड़े घमाघम बज रहे हैं। देवता हर्षपूर्वक 'रघुकुलमणिकी जय हो! जय हो! जय हो!' ऐसा कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस प्रकार बारातको आती हुई जानकर बहुत-से बाजे बजने लगे और रानी सौभाग्यवती स्त्रियोंको बुलाकर परछनके लिये मङ्गल सजाने लगीं। अनेक प्रकारकी आरती सजकर, सम्पूर्ण मङ्गलोंको सजाकर गजगामिनी सुन्दर स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक परिछन करने चलीं॥३१७॥

टिप्पणी—१ (क) '*देव सकल सुरपतिहि सिहाहीं*'— भाव कि किसी देवताके हजार नेत्र नहीं हैं, इसीसे '*सिहाते*' हैं। (ख) '*आज*' कहनेका भाव कि और सब दिन आजके पूर्व पुरन्दर कुछ भी न थे, उनकी देहभरमें भग-ही-भग थे, इससे '*सिहाने*' योग्य न थे। दूसरे इन्द्रके दो ही नेत्र थे, अबतक जो देवता बहुत नेत्रोंसे श्रीरामजीका दर्शन करते थे, वे इन्द्रसे अधिक थे, पर आज इस समय उनके हजार नेत्र हो गये, वे हजार नेत्रोंसे दर्शन कर रहे हैं, अतः '*आज*' उनके समान कोई नहीं है। परंतु श्रीरामदर्शनके आगे इन्द्रपदका सुख कुछ नहीं है। जबतक इन्द्र दो ही नेत्रसे दर्शन कर पाते थे, तबतक अधिक नेत्रोंवाले देवता उनसे अधिक ही थे, क्योंकि उनको विशेष लोचनलाभ था। (यहाँ 'चतुर्थ प्रतीप अलंकार' है।)

टिप्पणी—२ '*मुदित देवगन रामहि देखी*…' इति। देवगण मुदित हैं और राजसमाज विशेष हर्षित है, कारण कि देवता आकाशमें हैं, दूरसे देख रहे हैं और दोनों राजसमाज समीपसे देख रहे हैं, इससे उनका हर्ष सामान्य और इनका विशेष है। यथा—'*जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥*' (२६४। ४) '*दुहुँ समाज*' अर्थात् श्रीजनकजीका समाज मन्त्री, ब्राह्मण, ज्ञातिजन, निमिवंशी तथा पुरवासी आदि, वैसे ही श्रीदशरथ महाराजका समाज।

टिप्पणी—३ '*अति हरषु राजसमाज दुहुँ दिसि*…' इति। (क) ऊपर लिखा कि '*नृप समाज दुहुँ हरषु*

बिसेषी' अब उस *'बिसेषी'* का यहाँ अर्थ स्पष्ट करते हैं। विशेष=अति। राजसमाजमें बहुत दुन्दुभियाँ हैं, इससे *'घनी'* कहा। (*'घनी'* के दोनों अर्थ होते हैं—'संख्यामें बहुत अधिक' और 'बहुत जोरसे धमाधम'।) *'दुहूँ दिसि'* अर्थात् दोनों राजसमाजोंमें। (ख) *'बरसहिं सुमन'''*—दोनों समाज हर्षमें दुन्दुभी बजाते हैं और उधर देवता हर्षसे पुष्पोंकी वर्षा और जय-जयकार करते हैं। तन, मन, वचन तीनोंसे अपना अनुराग प्रकट कर रहे हैं। तनसे फूल बरसाते, मनसे हर्षित और वचनसे *'जय जयति जय रघुकुलमनी'* का उच्चारण कर रहे हैं। (ग) *'एहि भाँति'* अर्थात् बहुत नगाड़े बजाते, फूलोंकी वृष्टि और जय-जयकारकी ध्वनि करते हुए। [*'जानि'*—दुन्दुभी आदिके शब्दोंको सुनकर जान गये।] (घ) *'बाजने बहु बाजहीं'*—बारातमें केवल दुन्दुभियाँ बज रही हैं और यहाँ जनक महाराजके यहाँ सब प्रकारके (ढोल, नफीरी, शहनाई आदि) बहुत-से बाजे बजाये गये। (ङ) *'सुआसिनि बोलि'*— सुहागिनियोंको बुलानेका भाव कि परछनमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ ही रहती हैं, यह लोकरीति है। पिताके घरमें कन्याएँ भी सुवासिनी कहलाती हैं। (सधवा ही मङ्गल सजाती हैं।) (च) *'मंगल सकल सँवारि'*— 'मङ्गल' अर्थात् दधि, दूर्वादल, गोरोचन, नव तुलसीदल, फल, फूल आदि। इन मङ्गल द्रव्योंको अच्छी तरहसे थालमें भरकर रखना मङ्गल सजाना वा सँवारना कहलाता है, यथा—*'दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगलमूला॥ भरि भरि हेम थार भामिनी।'* (७। ३)

टिप्पणी—४ (क) *'सजि आरती अनेक बिधि'* इति। आरती पञ्चवर्तिका (पाँच बत्तियोंकी), सप्तवर्तिका दशवर्त्तिका, (पञ्चदशवर्तिका, सहस्रवर्तिका) आदि अनेक बत्तियोंकी होती हैं। फिर ऊर्ध्वशिखा, तिर्छीशिखाकी भी होती हैं। बत्तियोंके अतिरिक्त कपूरकी भी होती है। (विवाहमें शीतल आरतीका व्यवहार नहीं होता। आरतीमें पुष्प आदि सजाये अवश्य जाते हैं। सासुएँ अनेक हैं, प्रत्येकने अपने-अपने थाल नये-नये ढंगके सजाये। अतः *'अनेक बिधि'* कहा। विवाहमें आरतीका थाल खूब सजाया जाता ही है।) (ख) आरती परिछनके लिये सजायी जाती है, आरती उतारना ही परिछन है। यथा—*'नयन नीर हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥'* (३३९। १) वेद-कुलरीतिके लिये मङ्गल सजाती हैं, यथा—*बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥'* (३१९। २) यह कहा ही है। (ग) *'गजगामिनि बर नारि'* से सूचित किया कि सब स्त्रियाँ युवा अवस्थाकी हैं और (वर अर्थात्) सावित्री हैं। हाथीकी-सी चालसे चल रही हैं, इससे गजगामिनी कहा। (यहाँ वाचकधर्मलुप्तोपमा अलंकार है।)

बिधु बदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मदु मोचनि॥ १॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा॥ २॥
सकल सुमंगल अंग बनाए। करहिं गान कलकंठि लजाए॥ ३॥
कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चालि बिलोकि काम गज लाजहिं॥ ४॥
बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा॥ ५॥

शब्दार्थ—**चीर**=वस्त्र। सुमंगलचार=सुन्दर मङ्गलाचार। **चारा** (चार)=आचार, रीति, रस्म। जैसे ब्याहचार, द्वारचार, राजचार। विशेष नोटमें देखिये।

अर्थ—सभी चन्द्रमुखी और सभी मृगलोचनी हैं, सभी अपने-अपने शरीरकी छबिसे (कामदेवकी स्त्री) रतिके गर्वको छुड़ानेवाली हैं॥ १॥ रंग-बिरंगके सुन्दर वस्त्र पहिने हैं। सभी सब आभूषण शरीरमें सजाये हुए हैं॥ २॥ सभी सुन्दर मङ्गलोंसे अङ्गोंका बनाव किये हुए कोकिलको भी लज्जित करती हुई (मधुर स्वरसे) गा रही हैं॥ ३॥ कंकण, किंकिणी और नूपुर बज रहे हैं। चालको देखकर कामदेवरूपी हाथी लज्जित होते हैं॥ ४॥ अनेक प्रकारके बाजे बज रहे हैं, आकाश और नगर दोनोंमें मङ्गलाचार हो रहे हैं॥ ५॥

टिप्पणी—१ *'बिधु बदनी सब''''''* इति। (क) ऊपर *'गजगामिनि बर नारि'* से चाल, अवस्था और अहिवातकी शोभा कही, अब तनकी शोभा कहते हैं। चन्द्रमुखी-मृगनयनी आदिसे तनकी शोभा कही। (ख) *'सब'* का भाव कि सब स्त्रियाँ विधुवदनी, मृगनयनी और रतिमदमोचनी नहीं हुआ करतीं, पर जनकपुरकी सभी स्त्रियाँ

ऐसी हैं। (इसीसे तीनों विशेषणोंके साथ पृथक्-पृथक् 'सब' शब्द दिया।) (ग) ***'निज तन छबि'*** अर्थात् अपने शरीरकी द्युति, कान्ति वा शोभासे। इससे जनाया कि शरीरमें दामिनिकी-सी द्युति है। यथा—***'जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नवसप्त सकल दुति दामिनि॥'*** (२९७। १) (घ) ***'रति मदु मोचनि'***— जनकपुर ब्रह्माजीकी करनीसे पृथक् है—***'निज करनी कछु कतहुँ न देखी।'*** (३१४। ८) इसीसे यहाँ सब रतिसे कहीं विशेष हैं, सामान्य कोई नहीं है। ***'बिधु बदनी मृगलोचनि'*** में वाचक-धर्मलुप्तोपमा अलंकार है।

टिप्पणी—२ (क) ***'पहिरे बरन बरन बर चीरा……'*** इति। ***'बिधु बदनी……'*** से तनकी शोभा कहकर अब शृङ्गार और आभूषणकी शोभा कहते हैं। ***'बरन बरन'*** से कपड़ोंके रंग कहे और ***'बर'*** से वस्त्रोंके बनावटकी सुन्दरता कही। अर्थात् जनाया कि अच्छे बने हैं, सुन्दर हैं और बड़े मूल्यके हैं। [(ख) ***'सकल बिभूषन'*** सभी आभरण, अलंकार, आभूषण वा गहनें। इनकी गणना १२ हैं; यथा—(१) नूपुर। (२) किंकिणी। (३) चूड़ी। (४) अँगूठी। (५) कंकण। (६) बिजायट। (७) हार। (८)कण्ठश्री। (९)बेसर। (१०) बिरिया। (११) टीका। (१२) सीताफूल। पुनः आभरणके चार भेद हैं—(१) आवेध्य अर्थात् जो छिद्रद्वारा पहिना जाय, जैसे कर्णफूल, बाली इत्यादि। (२) बंधनीय अर्थात् जो बाँधकर पहिने जायँ, जैसे बाजूबंद, पहुँची, शीशफूल इत्यादि। (३) क्षेप्य अर्थात् जिसमें अंग डालकर पहिना जाय। जैसे कड़ा, छड़ा, चूड़ी, मुँदरी इत्यादि। (४) आरोप्य अर्थात् जो किसी अंगमें लटकाकर पहिने जायँ, जैसे हार, कंठश्री, चम्पाकली, सिकरी आदि। आभूषणोंका नाम न देकर ***'सकल'*** कह देनेसे समयानुकूल सभी आभूषणोंका समावेश इसमें हो जाता है।

टिप्पणी—३ ***'सकल सुमंगल अंग बनाए।……'*** इति। (क) पहले वस्त्र पहने, फिर आभूषण पहने तब अंगोंमें सुमङ्गल बनाये अर्थात् षोडश शृङ्गार किया। [महावर, मेहँदी, अरगजा, सेंदूर, रोरी, कज्जल आदि सकल सुन्दर मङ्गल हैं। (वै०) इन माङ्गलिक द्रव्योंको अंगमें लगाये हैं] अथवा बाहर आभूषण ही सुमंगल हैं, इन्हींको अंगोंमें बनाये हैं। (ख) ***'करहिं गान कलकंठि लजाए'*** कहकर जनाया कि स्त्रियोंके कण्ठका शब्द अत्यन्त मधुर है, यदि कोकिलके समान ही मधुर होता तो कोयल लज्जित न होती।

टिप्पणी—४ ***'कंकन किंकिनि नूपुर………'*** इति। (क) शरीरमें सभी आभूषण सजे हुए हैं, उनमेंसे जो बजनेवाले हैं उनके नाम यहाँ गिनाये। कंकणादिका बजना कहकर ***'चाल बिलोकि'*** लिखनेसे सूचित हुआ कि चलनेसे कंकणादि बज रहे हैं। ***'चलीं मुदित परिछन करन गजगामिनि बर नारि।'*** (३१७) उपक्रम है और ***'चालि बिलोकि काम गज लाजहिं'*** पर उसका उपसंहार है। (ख) कंकण-किंकिणि-नूपुरकी ध्वनि कामके नगाड़ेके समान मधुर है, यथा—***'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि॥ मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिश्व बिजय कहँ कीन्ही॥'*** (१। २३०) नगाड़ा तालसे बजता है, कंकणादि भी तालसे बजते हैं। यथा—***'मंजीर नूपुर कलित कंकन ताल-गति बर बाजहीं।'*** (१। ३२२) इसीसे चाल देखकर काम-गजका लज्जित होना कहा। (ग) तनकी छबिसे कामकी स्त्री रतिका लज्जित होना कहा—***'सब निज तन छबि रतिमदु मोचनि'।*** गान सुनकर 'कलकण्ठ (अर्थात् कामकोकिल) लज्जित होती है—***'करहिं गान कलकंठि लजाए'।*** (कोयल भी कामकी सहायक है, यथा—***'कलहंस पिक सुक सरसरव करि गान नाचहिं अपछरा।'*** (१। ८६) आगे दोहा ३२२ में जो ***'कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं'*** कहा है, वैसे ही यहाँ भी 'कलकंठि' से 'कामकोकिल' ही समझना चाहिये। आदि और अन्त दोनोंमें कामका सम्बन्ध है, अतः यहाँ बीचमें भी वही सम्बन्ध समझना चाहिये।) चाल देखकर कामगज लज्जित होते हैं। उपमेयसे तीनों जगह उपमानका निरादर होनेसे प्रतीप अलंकार है। [इस तरह दिखाया कि इनकी छबि, गान और चाल आदि सभी व्यवहार काम (रूप उपमानों) को लज्जित करनेवाले हैं। (प्र० सं०)]

प० प० प्र०—***'बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि।………सुमंगलचारा'*** इति। (१) इसमेंसे पहली चौपाईका उच्चार ठीक करनेमें जो विशिष्ट गति आती है, वह अति कर्णमधुर और गजगामिनि शब्दकी यथार्थता बतानेवाली है। सम्पूर्ण चौपाईके दो-दो मात्राओंके अलग-अलग विभाग पड़ते हैं। आरम्भमें गति जरा मन्द

है, यह बात 'नी' और 'लौ' पर दो बार ताल आनेसे सूचित होती है। दूसरी अर्धालीमें जल्दी हो गयी। इन पाँच चौपाइयोंमें इतनी मधुरता कैसे पैदा हुई, यह विचार करनेसे आनन्द होता है। यथा—इनमें सब मिलकर १२७ अक्षर हैं। ब १७; र १४; न १६; क १२; ल १०; म ६; (अनुस्वार ६); स ९; ज ८; ग ७; च ५; ह ४; प ३; अ २; ए ३; थ २; ष ७; भ २; त २; द १; ठ १; छ १;=१२७। (२) सभी चरणोंके यमकोंमें उपान्त्य अक्षर दीर्घ है। थ, ष, ठ—इन कठोरता-उत्पादक अक्षरोंके पूर्व एक दीर्घ अक्षर या दो ह्रस्व होनेसे उनकी कठोरता एकदम कम हो गयी। 'च' पाँच बार है तथापि दो जगह दीर्घ पूर्व ह्रस्व और दो बार यमकमें उपान्त्य दीर्घ और एक बार चरणारम्भमें दीर्घ होनेसे माधुर्य भङ्ग नहीं हुआ। रसके अनुकूल वर्णरचना मानसमें सर्वत्र पायी जाती है। इधर शृङ्गारका माधुर्यरस प्रधान होनेसे संयुक्ताक्षर, टवर्ग, ष, झ, ख, ध, फ, थ, ठ, क्ष, ढ, ग इत्यादिका अभाव-सा ही होनेसे मधुरता निर्मित हो गयी है।

टिप्पणी—५ *'बाजहिं बाजने बिबिध प्रकारा''''* इति। (क) गान करना लिख आये। गानके साथ बाजा चाहिये सो यहाँ कहते हैं। जहाँ गिनतीके बाजे बजते हैं वहाँ बाजोंके नाम लिखते हैं, यथा—*'संख निसान पनव बहु बाजे।'* (३१३। ३) *'सरस राग बाजै सहनाई'* इत्यादि। और जहाँ बहुत बाजे बजते हैं वहाँ नाम नहीं देते, यथा—*'येहि भाँति जानि बरात आवत बाजने बहु बाजहीं।'* (३१३। ३) तथा यहाँ [(ख) *'सुमंगल चारा'*— लोग मङ्गलका आचार कर रहे हैं, अर्थात् मङ्गल कर रहे हैं। मङ्गलसूचक आचरण ये हैं—कदलीके पंखे झलना, फूल बरसाना, माला पहनाना, चावल छिड़कना, बताशा-लावा आदि बरसाना इत्यादि। (प्रोफे० दीनजी) मधुर गान, पुष्पवृष्टि, विविध प्रकारके बाजोंका बजना, स्त्रियोंका मङ्गल गीत गाना यह सब सुमङ्गलचार है।

सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥ ६॥
कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहि जाई॥ ७॥
करहिं गान कल मंगल बानी। हरष बिबस सब काहु न जानी॥ ८॥

शब्दार्थ—**कपट**—अभिप्राय साधनके लिये हृदयकी बातको छिपानेकी वृत्तिको 'कपट' कहते हैं। **कपट बेष**=बनावटी, असलियत छिपाये हुए जिसमें कोई पहचान न सके।

अर्थ—इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और भवानीजी (इत्यादि) जो देवताओंकी स्त्रियाँ स्वाभाविक ही पवित्र और चतुर हैं॥ ६॥ वे कपटसे श्रेष्ठ नारियों (मनुष्योंकी स्त्रियों) का सुन्दर वेष बनाकर सब रनवासमें जा मिलीं॥ ७॥ मनोहर वाणीसे सुन्दर मङ्गल-गान कर रही हैं। सब आनन्दके वश हैं (इससे) किसीने न जाना॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'सची सारदा रमा भवानी।''''* इति। (क) यहाँ प्रधान देवतओंकी स्त्रियोंका नाम दिया, क्योंकि ये जाकर रनवासमें मिलेंगी। रनवासमें मिलना है, इसीसे प्रथम रानीहीका नाम दिया। शची सुरराज इन्द्रकी रानी हैं। (ख)—*'सुचि'* कहनेका भाव कि स्वर्गकी अप्सराएँ भी *'सुरतिय'* कहलाती हैं, यथा *'रंभादिक सुरनारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना।'* (१२६। ४) 'शुचि' कहकर जनाया कि ये अप्सराएँ नहीं हैं। किंतु विवाहिता स्त्रियाँ हैं। पुनः (इनका *'कपट नारि बेष'* बनाना आगे कह रहे हैं, इससे सम्भव है कि कोई संदेह करे कि ये सब कपटी हैं। इस संदेहके निवारणार्थ 'शुचि' विशेषण दिया); भाव यह है कि ये पवित्र हैं। इनके हृदयमें कपट नहीं है। इन्होंने इतने ही भरके लिये कपट-नारिवेष बनाया कि जिसमें कोई जान न पाये। अथवा स्त्रियाँ स्वाभाविक अपावनी होती हैं, यथा—*'सहज अपावनि नारि।'* (३। ५) अतः 'शुचि' कहकर इस दोषका निराकरण किया। (ग) *'सहज'* देहलीदीपक है अर्थात् शुचि और सयानी दोनोंके साथ है। सहज शुचि और सहज सयानी। (घ) *'सयानी'* का भाव कि ये देवताओंकी स्त्रियाँ बड़ी चतुर हैं। श्रीरामजीका दर्शन भलीभाँति समीपसे

करनेके लिये रनवासमें जा मिलीं, दूसरे मौका देखकर रनवासमें जा मिलीं कि इस समय सब आनन्द-विभोर हैं, किसीको अपनी सुध नहीं है, कोई लख न सकेगा, यथा—*'को जान केहि आनंदबस सब ब्रह्म बर परिछनि चलीं।'* अतः *'सयानी'* कहा। अथवा नारी सहज जड और अयानी कही गयी है, यथा—*'अबला अबल सहज जड़ जाती ।'* (७। ११५) *'जदपि सहज जड़ नारि अयानी।'* (१२०। ४) अतः *'सयानी'* कहकर जनाया कि इन्होंने वैसा रूप नहीं धारण किया और न ये वैसी हैं, ये तो सहज शुचि और सहज सयानी हैं।

टिप्पणी—२ *'कपट नारि बर बेष……'* इति। (क) *'बर बेष'* इति। वेषकी श्रेष्ठता यही है कि कोई लख न सके, भाँप न पावे; इसीसे ऐसे सब स्थलोंमें *'बर बेष'* पद दिया है। यथा—*'ब्रह्मादि सुर बर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।'* (१। ३१९) *'बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥ कपट बिप्र बर बेष बनाएं। कौतुक देखहिं अति सचु पाए।'* (१। ३२१) *'बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेषु॥'* (२८९) तथा यहाँ *'कपट नारि बर बेष।'* [(ख) बनावटी वेष ऐसा था कि कोई लख न सके। यद्यपि आगे राजा रानीके विषयमें लिखेंगे कि—*'पूजे जनक देव सम जाने।'* (३२१। ८) *'उमा रमा सारद सम जानी।'* (३२२। ७) सो इनका अनुभव भारी है तथापि साक्षात् कोई न जान सका। यहाँ एक शंका यह होती है कि न पहिचाना तो न सही, पर पूछातक नहीं, यह कैसे सम्भव है? इसका समाधान स्वयं कविने कर दिया है कि *'हरष बिबस सब'* दूसरे यह कि शारदा तो स्वयं वहाँ हैं। इन्होंने सबकी मति ऐसी कर दी कि कोई पूछे ही नहीं। (प्र० सं०) पुनः वे अपने स्वरूपसे इसलिये नहीं गयीं कि इन्हींकी 'पूजा-मान्यता-बड़ाई' रनवासको प्रथम करनी पड़ती, वरकी तरफका ध्यान न्यून हो जाता, रसमें बिरस हो जाता। वधू और वर विवाहके समय लक्ष्मी-नारायणरूप माने जाते हैं, उनका ही मान-सम्मान प्रथम करना चाहिये। यह उपदेश है। (प० प० प्र०)] (ग) *'मिलीं सकल'* इति। भाव कि जब श्रीरामजी मण्डपमें आये तब ब्रह्मादि देव ब्राह्मण बनकर आये, यथा—*'ब्रह्मादि सुर बर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।'* जब सामध हो गया और राजा जनकने मण्डप-तले सब मुनियोंकी पूजा की तब विधि-हरि-हर आदि प्रधान देवता विप्रवेषमें आये, अतः उनकी भी पूजा राजाने की। वैसे ही इधर देवताओंकी स्त्रियाँ प्रधान एवं सामान्य सभी एक संग जाकर रनवासमें मिल गयीं।

टिप्पणी—३ *'करहिं गान कल मंगल बानी।……'* इति। 'सुरनारियोंने ऐसा श्रेष्ठ वेष बनाया कि वैसा स्वरूप किसीका नहीं, ऐसा मधुर गान किया कि जैसा किसी स्त्रीका गान नहीं, यह विलक्षणता देखकर भी कोई न पहचान सका, यह कैसे? इसका समाधान करते हैं कि *'हरष बिबस सब।'* विवश कहनेका भाव कि सामान्य हर्ष होता तो पहचान ली जातीं, पर विशेष होनेसे न पहचाना।

(हरिगीतिका)

छंद—को जान केहि आनंद बस सब ब्रह्मु बर परिछन चलीं।
कल गान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली॥
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु सकल हिय हरषित भई।
अंभोज अंबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई॥

दोहा—जो सुखु भा सियमातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं* कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥ ३१८॥

शब्दार्थ—**अंभोज**=कमल। **अंबक**=नेत्र।

अर्थ—कौन किसे पहिचाने? सभी तो आनन्दवश हैं। सब ब्रह्म दूलहका परिछन करने चली जा रही

* कहहि—१६६१।

हैं। सुन्दर मधुर गान हो रहा है। नगाड़े (भी) मधुर-मधुर बज रहे हैं। देवता फूल बरसा रहे हैं। अनोखी शोभा हो रही है॥ आनन्दकन्द दूलहको देखकर सभी हृदयमें हर्षित हुईं। कमल (समान) नेत्रोंमें जल उमड़ आया और सुन्दर अङ्गोंमें पुलकावली छा गयी। श्रीसीताजीकी माताके मनमें जो सुख दूलह श्रीरामजीका सुन्दर वेष देखकर हुआ उसे लाखों शारदा और शेष लाखों कल्पोंतक भी नहीं कह सकते॥ ३१८॥

नोट—१ *'सची सारदा…… पुलकावलि छई'* इति। शची-शारदादि रनवासमें उस समय जा मिलीं जब सब सुमङ्गलसाज सज रही थीं, सारा रनवास आनन्दोत्साहवश था, मङ्गल-गान हो रहा था। इत्यादि। यथा—*'सजहिं सुमंगल साज रहस रनिवासहिं। गान करहिं पिक बैन सहित परिहासहिं॥'* (८१) *उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भईं। कपट नारि-बर-बेष बिरचि मंडप गईं। मंगल आरति साजि बरहि परिछन चलीं। जनु बिगसीं रबि-उदय कनक पंकजकलीं॥'* (८२) (जा० मं०)

टिप्पणी—१ (क) *'आनंद बस'* और *'ब्रह्म-बर'* कहकर सूचित किया कि सबको ब्रह्मानन्द प्राप्त है। *'को केहि जान'* कौन किसे जानता है, इसके दो कारण कहे। एक तो *'आनंद'* दूसरे *'सब ब्रह्म बर परिछन चलीं।'* अर्थात् सबोंकी दृष्टि दूलहकी ओर है, ध्यान परिछनमें है, जान-पहचान करनेका उस समय मौका ही कहाँ था। (ख) *'कल गान मधुर निसान……'* मधुर गानके साथ मधुर निशान बज रहा है। यह मधुर गान देवताओंकी स्त्रियोंका है। देवियाँ गाती हैं, देवता निशान बजाते, फूल बरसाते हैं। फूलोंकी वृष्टि भी मधुर-मधुर हो रही है। फूलोंको मधुर वचनकी उपमा दी जाया करती है, यथा—*'बोलत बचन झरत जनु फूला॥'* (२८०। ४) [सुन्दर गान हो रहा था। नगाड़े बजानेवाले देवता भी उसका आनन्द ले रहे थे, उनको भी उसका रस मिलता था, इसीसे वे मधुर गानके अनुकूल नगाड़ोंको मधुर-मधुर बजा रहे हैं। पुष्पवृष्टि भी मधुर है जिसमें दर्शनोंका आनन्द चला न जाय।] (ग) *'आनंदकंदु बिलोकि दूलहु……'* इति। पहले कहा कि *'ब्रह्म बर'* का परिछन करने चलीं, अब ब्रह्म-बरके पास पहुँच गयीं, इसीसे देखना कहा। ब्रह्म आनन्दकन्द है, वह आनन्दकन्द ब्रह्म ही दूलहरूपमें है। उसे देखकर नेत्रोंमें जल और शरीरमें पुलकावली हो आना प्रेमकी दशा है, यथा—*'प्रेम बिबस सीता पहिं आई। तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जल नयन॥'* (२२८) पहले जब परिछन करने चलीं तब यह जानकर कि श्रीरामजीका दर्शन करेंगी, सब 'आनन्दके वश' हो रही थीं और जब दर्शन हुआ तब यह दशा हो गयी। [*'कंद'* का अर्थ समूह, घना, मेघ और मूल, जलके देनेवाले हैं। इस तरह आनन्दकंद=आनन्दघन; आनन्दसमूह, ठोस आनन्दरूप; आनन्दके मेघ, आनन्दरूपी जलकी वर्षा करनेवाले; यथा—*'ब्रह्म सच्चिदानंदघन रघुनायक जहँ भूप'* (७। ४७), **'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्'** (आनन्द ही ब्रह्म है; भृगुने इस प्रकार निश्चयपूर्वक जाना। तैत्ति० भृगुवल्ली षष्ठ अनुवाक), **'वन्दे कन्दावदातम्।'** (६। मं० १) *'यज्ञोपवीत बिचित्र हेममय मुकुतामाल उरसि मोहि भाई। कंद तड़ित बिच जनु रतिपतिधनु निकट बलाक पाँति चलि आई।'* (गी० १। १०६) 'आनन्दकंद' हैं, इसीसे सबपर आनन्दरूपी जलकी वर्षा हो रही है, सब ब्रह्मानन्दमें भीग गये हैं। आनन्दके समूह वा मूल हैं, अतः इन्हींसे सबको आनन्द मिल रहा है, सबके आनन्दकी जड़ ये ही हैं। *'सकल हिय हरषित भईं'* में जा० मं० के *'नखसिख सुंदर रामरूप जब देखहिं। सब इन्द्रिन्ह महँ इन्द्र बिलोचन लेखहिं।'* (८३) का भी भाव आ गया।

टिप्पणी—२ *'जो सुख भा……'* इति। (क) *'सिय मातु'* कहनेका भाव कि श्रीरामजीके दर्शनका जो सुख मिला वह सीताजीके सम्बन्धसे मिला, न सीताजीकी माता होतीं न यह सुख मिलता। सुखके यहाँ दो कारण बताये। एक तो *'राम बर बेषु'* अर्थात् श्रीरामजीका सुन्दर वेष देखनेसे हुआ, दूसरे यह देखकर कि हमारी कन्या सीताको ऐसा सुन्दर वर मिला। *'जो सुख भा सिय मातु मन……'* का भाव कि सुख तो सभी स्त्रियोंको हुआ, सबको ब्रह्मानन्दका सुख हुआ, सब प्रेम-विवश हुईं; यह ऊपर कह आये हैं, पर जो श्रीसुनयना अम्बाजीको हुआ वह सब सुखोंसे अधिक है। जो जैसा अधिकारी होता है उसको वैसा ही सुख मिलता है। श्रीसुनयनाजीका अधिकार सबसे अधिक है। (ब्रह्मकी परमशक्तिकी माता होनेका सौभाग्य इन्हींको प्राप्त हुआ है।) [(ख)—*'सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा*

सेष' इति। पं० रामकुमारजी तथा अन्य टीकाकारोंने 'हजार शारदा, हजार शेष सौ कल्पतक नहीं कह सकते' प्रायः यही अर्थ किया है। हमने *'सत सहस'* को देहलीदीपकन्यायसे दोनोंमें लगाकर अर्थ किया है। लाखों कल्पोंतक लाखों शारदा-शेष। (ग) इस कथनसे जनाया कि औरोंका सुख कहा जा सकता है और कुछ कहा भी गया।] *'संकरु राम रूप अनुरागे'* ३१७ (१) से *'मुदित देवगन रामहिं देखी।'* ३१७ (८) तक श्रीशङ्करादि देवताओंका, फिर *'नृप समाज दुहुँ हरष बिसेषी।'* ३१७ (८) से *'बाजने बहु बाजहीं।* ३१७ छन्दतक दोनों राजसमाजोंका, तत्पश्चात् *'पुलकावलि छई।'* ३१८ छन्दतक शची आदिका आनन्द वर्णन किया गया। पर इनका सुख अकथनीय है।

नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछन करहिं मुदित मन रानी॥ १॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू*। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥ २॥
पंच सबद धुनि मंगल गाना। पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना॥ ३॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥ ४॥

शब्दार्थ—**हटि**=रोककर। **बिहित**=दिया हुआ, जिसका विधान किया गया हो। **बेद बिहित**=जिसका वेदोंमें विधान है। जैसे कि गौरी-गणेशपूजन, भूमिपूजन इत्यादि। **आचार**=आचरण, रीति। **व्यवहार**=कार्य, काम, रीति-भाँति। 'आचार, व्यवहार', 'रीति' पर्याय हैं। 'पंच शब्द'—पाँच मङ्गल-सूचक बाजे जो मङ्गल कार्योंमें बजाये जाते हैं—तन्त्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही। (२)—पाँच प्रकारकी ध्वनि—वेदध्वनि, बंदीध्वनि, जयध्वनि, शङ्खध्वनि और निशानध्वनि। यथा—*'जय धुनि बंदी बेदधुनि मङ्गलगान निसान'* (१। ३२४) *'अरघु'* (अर्घ्य)—षोडशोपचारमेंसे एक यह भी है, जल, दूध, दही, कुशाग्र, सरसों, तंदुल और जलको मिलाकर देवताको अर्पण करना, सामने जल गिराना।

अर्थ—मङ्गल (का अवसर) समझकर नेत्रोंके जलको रोककर रानी प्रसन्न मनसे परिछन कर रही हैं॥ १॥ वैदिक रीति और कुलरीतिके अनुसार उन्होंने सभी व्यवहार भली प्रकार किये॥ २॥ पञ्चशब्द, पञ्चध्वनि और मङ्गलगान हो रहा है, नाना प्रकारके वस्त्र पाँवड़े पड़ (बिछाये जा) रहे हैं॥ ३॥ उन्होंने आरती करके अर्घ्य दिया, तब श्रीरामचन्द्रजी मण्डपको चले॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'नयन नीरु हटि……'* इति (क) ऊपर कह आये कि आनन्दकन्द दूलहको देखकर सब स्त्रियोंके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु आ गये, यथा—*'अंभोज अंबक अंबु उमगि'।* मङ्गलके समय आँसू गिराना अनुचित है, यह जानकर सबने आँसुओंको रोका। यथा—*'सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं।'* (७। ७) आरती केवल रानीने की और नेत्रोंका जल सभीने रोका। (ख) *'मुदित मन'* शब्द देकर रानीकी शोभा कही, यथा—*'भरी प्रमोद मातु सब सोहीं'।* (ग) *'चलीं मुदित परिछनि करन।'* (३१७) उपक्रम है और *'परिछनि करहिं मुदित मन रानी'* उपसंहार है।

टिप्पणी—२ (क) *'कीन्ह भली बिधि'* से जनाया कि वेदरीति और कुलाचार दोनोंमें रानीकी बड़ी श्रद्धा है। (ख) *'करहिं गान कल मंगल बानी।'* (३१८। ८) उपक्रम है, *'पंच सबद धुनि मंगल गाना'* उपसंहार है। पञ्चशब्दध्वनि वेदध्वनि है जो ब्राह्मण कर रहे हैं और मङ्गलगान स्त्रियोंका है जो पूर्व कह आये हैं, यथा—*'सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेदधुनि बिप्र पुनीता।'* (३१३। ४) (ग) *'पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना'* इति। इससे सूचित हुआ कि परिछन आदि आचार घोड़ेपर चढ़े हुए ही हुए। अब श्रीरामजी घोड़ेसे उतरे तब पृथ्वीपर वस्त्र बिछाये गये। *'परहिं'* से जनाया कि उतरनेके साथ ही पाँवड़े पड़ने लगे और जैसे-जैसे वे चलते हैं और भी पाँवड़े पड़ते जाते हैं। *'बिधि नाना'* से जनाया कि जितने वस्त्र हैं वे सब उतने ही (भिन्न-भिन्न) प्रकारके हैं। पाँवड़ेके वस्त्रोंकी प्रशंसा पूर्व कर आये हैं, यथा—*'बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मद परिहरहीं॥'* (३०६। ५), इसीसे यहाँ नहीं लिखा।

---

* व्यवहारू—१६६१।

टिप्पणी—३ *'करि आरती अरघु·······'* इति। (क) प्रथम आरती (परिछन) की, फिर वेद और लोक-रीतियाँ कीं, अब पुनः आरती करके अर्घ्य दिया। [यह अर्घ्य षोडशोपचारमेंका नहीं है। यह विशेष अर्घ्य होता है और षोडशोपचारका अर्घ्य सामान्य होता है। इस विशेषार्घ्यमें गन्ध, पुष्प, यव, अक्षत, कुशाग्र, तिल, दूब और सरसों—ये द्रव्य अर्घ्यपात्रके जलमें डालकर उस जलसे अर्घ्य दिया जाता है, यथा—'**तत्रार्घ्यपात्रे दातव्या गन्धपुष्पयवाक्षताः। कुशाग्रतिलदूर्वाश्च सर्षपाश्चार्घ्यसिद्धये॥**' इति रामार्चनचन्द्रिकायाम्। (प० प० प्र०) वरकी प्रथम आरती 'परिछन' कहलाती है। इसीसे प्रथम आरतीको *'परिछनि'* कहा। दूसरी आरती आरती कहलाती है। जब श्रीरामजी घोड़ेसे उतरे तब यह आरती की गयी और अर्घ्य दिया गया (प० प० प्र० का मत है कि यहाँ *'तिन्ह'* शब्दसे सबका आरती उतारना और अर्घ्य देना जनाया। पर वस्तुतः यह रीति है नहीं।) (ख)—*'राम गमनु मंडप तब कीन्हा'*— अभी केवल दूलह मण्डपमें गया है, राजा आदि नहीं, क्योंकि अभी सामध नहीं हुआ है। प्र० सं० में यह अर्थ किया था, किंतु पुनर्विचारसे *'गवनु कीन्हा'* का अर्थ *'चले'* ही ठीक जान पड़ा। यही अर्थ आगे *'एहि बिधि राम मंडपहि आये'* से संगत होता है। यह भी हो सकता है कि मण्डपमें प्रवेश करनेसे 'गमन किया' कहा, बीचमें विधि कही और जहाँ बैठना है वहाँ पहुँचनेपर *'आये'* कहा गया।]

दसरथु सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे॥५॥
समय समय सुर बरषहिं फूला। सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥६॥
नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनै न कोई॥७॥
एहि बिधि रामु मंडपहि आए। अरघु देइ आसन बैठाए॥८॥

शब्दार्थ—'शान्ति'—शान्ति वा स्वस्तिवाचन उस मन्त्रपाठको कहते हैं जो ग्रह आदिसे उत्पन्न होनेवाले अमङ्गलोंको दूर करनेके लिये किया जाता है। यथा—'**ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं नो इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः,**'—इति शान्तिपाठः (तैत्ति० शिक्षावल्ली, प्रथम अनुवाक) इसी तरह केनोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद्, कठोपनिषद् आदिमें शान्तिपाठ दिये हुए हैं।

अर्थ—श्रीदशरथजी अपने समाजसहित विशेष शोभित हुए। उनका वैभव देखकर लोकपाल लज्जित हो गये॥५॥ देवता समय-समयपर फूल बरसाते हैं। ब्राह्मणलोग (समयके) अनुकूल शान्तिपाठ करते हैं॥६॥ आकाश और नगरमें कोलाहल (शोर) मच रहा है। अपनी-परायी कोई कुछ भी नहीं सुनता॥७॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी मण्डपमें आये। अर्घ्य देकर आसनपर बैठाये गये॥८॥

टिप्पणी—१ (क) प्रथम श्रीरामजी मण्डपको चले, पीछे श्रीदशरथजी समाजसहित चले। *'बिराजे'* अर्थात् द्वारपर शोभित हुए। (ख) *'बिभव बिलोकि लोकपति लाजे'* इति। राजाका वैभव देखकर प्रथम इन्द्रको अति लघु कहा, यथा—*'अति लघु लाग तिन्हहिं सुरराजू।'* (३१३। ६) फिर ब्रह्मादि देवताओंका अपने जन्मको व्यर्थ मान दशरथजीके भाग्यवैभवका सराहना कहा, यथा—*'लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि।'* (३१३) और अब लोकपालोंका लजाना कहते हैं। 'इन्द्र लघु लगे, लोकपाल लज्जित हुए' कहकर जनाया कि राजाके मुकाबलेमें इन्द्र कुछ है, पर अति लघु है, और लोकपाल तो कुछ भी नहीं हैं, इसीसे वे लजा गये।

टिप्पणी—२ *'समय समय सुर बरषहिं·····'* इति। (क) 'समय-समय' पर फूल बरसाते हैं। भाव कि जब राजा बारातसहित जनवासेसे चले तब फूल बरसाये। यथा—*'सुरन्ह सुमंगल अवसर जाना। बरषहिं सुमन··········'*, (३१४। १) फिर श्रीरामजीको जब देखा तब बरसाये, यथा—*'पुनि रामहि बिलोकि हिय हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥'* (३१५। ८), तत्पश्चात् जब राजा जनकके द्वारपर पहुँचे तब बरसाये,

यथा—*'बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी।'* (३१७) पुनः जब स्त्रियाँ परिछन करने चलीं तब पुष्पोंकी वृष्टि की, यथा—*'को जान केहि'''बरषहिं सुमन सुर सोभा भली।'* (३१८) परंतु जब श्रीरामजी मण्डपको चले तब पुष्पोंकी वृष्टि नहीं कही गयी और न उस समय कही गयी जब समाजसहित दशरथजी मण्डपको चले। यहाँ अन्तमें *'समय समय'''* लिखकर उस त्रुटिको पूरी कर दी अर्थात् सूचित किया कि इन अवसरोंपर भी पुष्पोंकी वृष्टि हुई। (ख) एक चरणमें फूलोंकी वर्षा कहकर दूसरेमें ब्राह्मणोंका शान्तिपाठ करना लिखकर जनाया कि स्वर्गके सुर फूल बरसाते हैं, वैसे ही महिसुर वेदपाठ क्या करते हैं मानो फूल बरसाते हैं। [(ग)—*'अनुकूला'* अर्थात् विवाहमें समयके अनुकूल। वि० टी० कार *'अनुकूला'* का अर्थ 'प्रसन्न होकर' लिखते हैं। *'समय समय'*— जब दूलह-दुलहिनि मण्डपमें आते हैं तब शान्तिपाठ पढ़ा जाता है, यह वही अवसर है। (प्र० सं०)]

टिप्पणी—३ *'नभ अरु नगर कोलाहल होई।''''''* इति। (क) जब स्त्रियाँ परिछनके लिये चलीं तब कोलाहलका होना न लिखा था, कोलाहलका हेतुभर लिख दिया था कि *'बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमंगलचारा।'* (३१८। ५) और यहाँ केवल कोलाहल होना कहा, हेतु नहीं कहा। (एक-एक जगह एक-एक बात लिखकर दोनों जगह दोनों बातोंका होना जनाया। ☞ यह ग्रन्थकारकी शैली है।) यह कविकी बुद्धिमत्ता है कि सब बात कथनमें आ जाय और ग्रन्थ न बढ़े। [(ख) *'आपनि पर कछु सुनै न कोई'* न अपनी ही कही बात सुनायी देती है न दूसरेकी। यह मुहावरा है। अर्थात् बहुत भारी शोर मचा है।]

टिप्पणी—४ *'येहि बिधि राम'''''* इति। अर्थात् पाँवड़े पड़ते हैं, पुष्पोंकी वृष्टि हो रही है, शान्तिपाठ पढ़ा जा रहा है और बाजे बज रहे हैं, इस प्रकार श्रीरामजी मण्डपमें आये। इससे जनाया कि मण्डपमें आनेकी यह विधि है। *'राम मंडपहि आए'* से जनाया कि अभी कोई बाराती मण्डपतले नहीं आये, क्योंकि राजा द्वारमें खड़े हैं, जब सामध हो जाय तब वे भीतर आवें।

(हरिगीतिका)

छंद—बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुखु पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि बारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि सुफल जीवन लेखहीं॥

दो०—नाऊ* बारी भाट नट राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदय समाइ॥ ३१९॥

अर्थ—आसनपर बिठाकर, आरती उतारकर दूलहको देखकर स्त्रियाँ सुख पा रही हैं, बहुत-बहुत मणि, वस्त्र और आभूषण निछावर करती और मङ्गल गा रही हैं। ब्रह्मादि श्रेष्ठ-श्रेष्ठ देवता ब्राह्मणवेष धारण किये हुए कौतुक देख रहे हैं और रघुकुलरूपी कमलके प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य श्रीरामजीकी छबि देखकर अपने जीवनको सफल मान रहे हैं। नाई, बारी, भाट और नट श्रीरामजीकी निछावर पाकर प्रसन्न हो माथा नवाकर आशीर्वाद दे रहे हैं। उनके हृदयमें हर्ष नहीं समाता॥ ३१९॥

टिप्पणी—१ *'बैठारि आसन''''''* इति। (क) आरती करके अर्घ्य दिया गया, तब मण्डपमें श्रीरामजी गये, यह मण्डपगवनकी विधि कही। अब बैठनेकी विधि कहते हैं। अर्घ्य देकर आसनपर बैठाया तब आरती की, यथा—*'अरघ देइ आसन बैठारे। बैठारि आसन आरती'''''*। आरती करके निछावर करनी चाहिये, अतः *'मनि बसन''''''* कहा। (ख) मणि और भूषणके बीचमें *'बसन'* को कहकर जनाया कि जो मूल्य मणि और आभूषणका है वही मूल्य वस्त्रोंका है। तात्पर्य कि वस्त्र भारी मूल्यके हैं।

---

* नाउ—१६६१। 'ना' को खींचकर पढ़नेसे छन्द बैठ जाता है।

नोट—१ मिलान कीजिये—'*परम प्रीति कुलरीति करहिं गज गामिनि। नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि। ८३। नेग-चारु कहँ नागरि गहरु लगावहिं। निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहिं। करि आरती निछावर बरहिं निहारहिं। प्रेममगन प्रमदागन तनु न सम्हारहिं। ८४। नहि तनु सम्हारहिं छबि निहारहिं निमिष रिपु जनु रन जए। चक्कवै लोचन रामरूप सुराज सुख भोगी भए।* (जा० मं०) ये सब भाव '*बैठारि आसन……गावहीं*' में आ गये। जब यह सब कौतुक हो रहा था, उसी समय ब्रह्मादिक विप्ररूपसे कौतुक देखने लगे।

टिप्पणी—२ (क) '*ब्रह्मादि सुरबर……*' अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिक्पाल और सूर्य आदि जो श्रीरघुनाथजीका परत्व जानते हैं, ये ही '*सुरबर*' हैं, इन्हींको ब्रह्माजीको आदि देकर विप्र बने हुए आगे कहा है। यथा—'*बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥ कपट बिप्र बर बेष बनाए। कौतुक देखहिं अति सचु पाए॥*' (१। ३२१) (इसीसे यहाँ केवल ब्रह्मादि कहा)। (ख) '*कौतुक देखहीं*' कहनेका भाव कि देवताओंकी स्त्रियोंका कपटवेष धारणकर स्त्रियोंमें मिलकर मङ्गल गाना कह आये हैं, यथा—'*कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥ करहिं गान कल मंगल बानी।*' (इसीसे यह अनुमान होता है कि देवता ब्राह्मणवेष बनाये ब्राह्मणोंमें मिलकर शान्तिपाठ पढ़ रहे होंगे। इनके समान वेदोंका ज्ञाता कोई नहीं है। ब्रह्माको स्वयं भगवान्‌से वेद प्राप्त हुए। यथा—'**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः**'। (भा० १। १। १) सूर्यभगवान्‌से श्रीयाज्ञवल्क्य, हनुमान्‌जी और भरद्वाजजीने कुछ प्राप्त किया।'*कौतुक देखहीं*' कहकर कवि इस समय शान्तिपाठ पढ़नेका निराकरण करते हैं), देवता वेदपाठ नहीं करते। [प० प० प्र० स्वामीजीका मत है कि 'यदि वे शान्तिपाठ न करते तो दूसरे विप्र उनको अवश्य टोकते कि आप क्यों मूक हैं, इससे उनका मर्म खुल जाना विशेष सम्भव था। वे वेषके अनुकूल पाठ भी करनेको समर्थ थे—'*जस काछिय तस चाहिय नाचा।*' मेरी समझमें पं० रामकुमारजीके मतानुसार ब्रह्मादिका विप्रवेष बनाना श्रीरामजीके मण्डपमें बैठ जानेके पश्चात् कहनेसे पाया जाता है कि शान्तिपाठ जो हो रहा था उसके बाद ये विप्रवेषमें मण्डपमें ही पहुँच गये और ब्रह्म 'बर' का दूलहरूप और आरती, निछावर तथा दर्शनका सुख ले रहे हैं। ब्रह्मका दूलह बनकर ये सब विवाहके कृत्य कराना 'कौतुक' ही है। इससे इनका विप्रोंमें मिलकर शान्तिपाठमें सम्मिलित होना नहीं कहा, जैसे शची आदिका रनवासमें मिलकर गाना कहा था। पण्डितजीके भावकी पुष्टि आगे दो० ३२१ (७) से भी होती है। वहाँ भी इस प्रसंगमें कौतुक देखना ही कहा है। यथा—'*कपट बिप्र बर बेष बनाए। कौतुक देखहिं अति सचु पाए॥*' (ख) जैसे शची-शारदादिको '*शुचि सहज सयानी*' विशेषण दिये वैसे ही ब्रह्मादिको '*बर*' विशेषण दिया]। (ग) '*सुफल जीवन लेखहीं*'— ब्रह्मादि देवताओंका भी जीवन जब श्रीरामदर्शन बिना निष्फल है तब भला मनुष्यके जीवनकी कौन कहे (यह हमलोगोंके लिये उपदेश है)। [(घ) ब्रह्मादि अपने रूपसे न गये; क्योंकि इससे ऐश्वर्य खुल जायगा और प्रभु उसे खोलना नहीं चाहते। दूसरे मूलरूपसे जानेसे इन्हींका मान-सत्कार होने लगेगा। तीसरे श्रीरामजीको लौकिक व्यवहारोंमें संकोच होगा, नर-नाट्यका सुख न मिलेगा। (रा० प०, पं०)]

टिप्पणी—३ '*नाऊ बारी भाट……*' इति। (क) प्रथम मणि-वसन-भूषणका निछावर करना लिखा, अब उनके पानेवालोंको कहते हैं। निछावर पानेवालों, उसके अधिकारियोंमें नाई मुख्य हैं, इसीसे उनको प्रथम कहा। (ख) '*राम निछावरि पाइ*' कहनेका भाव कि यह उनकी निछावर है कि जिनकी निछावर लेनेके लिये देवतालोग हठ करके भिखारी बनते हैं, यथा—'*भूमिदेव देव देखिकै नरदेव सुखारी। बोलि सचिव सेवक सखा पटधारि भँडारी॥ देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी। लगे देन हिय हरषि कै हेरि-हेरि हँकारी॥ ११॥ राम निछावरि लेनको हठि होत भिखारी।*' (गी० १। ६)। (ग) '*मुदित असीसहिं……हरषु न हृदय समाइ*' इति। एक तो बहुत (मणिवसन, भूषण भूरि) निछावर पायी, दूसरे जिसके लिये देवता भिक्षुक बनकर आते हैं, वही निछावर अपनेको प्राप्त हुई यह समझकर मुदित हैं, प्रणाम करते हैं, आशीर्वाद देते हैं, हृदयमें (इतना

करनेपर भी) हर्ष नहीं समाता। (अर्थात् प्रणाम करने तथा आशीर्वाद देनेपर भी तृप्ति नहीं होती, चाहते हैं कि हजारों मुख हो जायँ तो भी सदा आशीर्वाद देते ही रहें) जब हृदयमें हर्ष नहीं समाता, तब उसे मुखके द्वारा 'आशीर्वाद' के रूपमें निकालते हैं। (घ) नाई-बारी आदिका हर्ष मन, कर्म, वचन तीनों प्रकारसे दिखाते हैं। *'हरषु न हृदय समाइ'* यह मन, *'नाइ सिरु'* यह कर्म और *'असीसहिं'* यह वचनका हर्ष है।

मिले जनकु दसरथु अति प्रीती। करि बैदिक लौकिक सब रीती॥ १॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे॥ २॥
लही न कतहु हारि हिय मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥ ३॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥ ४॥

शब्दार्थ—**सामध**=समधियोंका मिलाप। वर और कन्याके पिता परस्पर समधी कहलाते हैं।

अर्थ—राजा जनक और राजा दशरथजी, वैदिक और लौकिक सब रीतियोंको करके बड़े ही प्रेमसे मिले॥ १॥ दोनों महाराज मिलते हुए अत्यन्त शोभित हुए। कवि उपमा ढूँढ़-ढूँढ़कर लज्जित हो गये॥ २॥ कहीं भी उपमा न पायी (तब) हृदयमें हार मानकर उन्होंने यह उपमा हृदयमें निश्चित की कि इनके समान ये ही हैं॥ ३॥ समधौरा (समधियोंका मिलाप) देखकर देवता अनुरक्त हो गये और फूल बरसाकर (दोनोंका) यश गाने लगे॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'मिले जनकु दसरथु……'* इति। (क) पहले कन्याके पिताको आगे आकर मिलना चाहिये, इसीसे मिलनेमें श्रीजनकजीका नाम पहले लिखा। (ख) *'अति प्रीती'* से मिलनेका भाव कि केवल सामधकी ही रीति नहीं की किंतु अत्यन्त प्रीतिसे मिले। [अर्थात् कुछ वेद-विहित नेग ही भर नहीं बरता या भेंटकी सामग्रीमात्र धरकर, चन्दन-अतर लगाकर कन्धे-से-कन्धा छुआकर ही नहीं मिले किंतु हृदयकी *'अति प्रीती'* से मिले। *'अति प्रीती'* के सम्बन्धसे *'बिराजे'* पद दिया, *'राजे'* के साथ *'बि'* उपसर्ग देकर विशेष शोभित होना कहा। (प्र० सं०)] (ग) *'करि बैदिक लौकिक सब रीती'* इति। कुलरीति, लोकरीति और वेदरीति, जहाँ जो चाहिये वहाँ वैसी करते हैं और वैसा ही गोस्वामीजी लिखते हैं, यथा—*'गुरुहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥'* (३१३। ८) (यहाँ केवल कुलरीति की जाती है। अतः *'कुल बिधि'* ही लिखा); *'बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि सब ब्यवहारू॥'* (३१९। २) (यहाँ वेदरीति और कुलरीति दोनों की जाती हैं। यह द्वारचारका समय है); *'करि बैदिक लौकिक सब रीती'* (यहाँ कुलरीति नहीं है। वैदिक रीति जो लोकमें प्रचलित है, वही की जाती है); *'अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइकै।'* (१। ३२७) (यह कोहबरका समय है, यहाँ केवल लोकरीति होती है, इससे यहाँ केवल *'लौकिक रीति'* कहा) इत्यादि। [(घ) *'अति प्रीती'* देहली-दीपकन्यायसे दोनों ओर है। वैदिक-लौकिक रीतियाँ सब बड़ी श्रद्धासे की गयीं।]

टिप्पणी—२ *'मिलत महा दोउ……'* इति। (क) दोनोंको *'महाराज'* कहकर दोनोंको समान बताया। समान हैं, इसीसे दोनों विशेष शोभित हुए, न्यूनाधिक होते तो विशेष शोभा न होती। (ख) *'उपमा खोजि……'* इति। उपमा खोजनेवाले कवि बहुत हैं, इसीसे *'खोजि खोजि'* कहा और *'लाजे'* बहुवचन दिया। (ग) *'लाजे'* इति। कविलोग जब उपमा नहीं पाते तब लज्जित होते हैं। यथा—*'आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥'*, *'निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरतु भरत सम जानि। कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि॥'* (२। २८८) [अपना काम न निकला, बहुत खोजनेपर भी सफल न हुए, अतः लज्जित हुए। पर कवि हैं, कुछ कहा अवश्य ही चाहें, अतः कहा कि *'इन्ह सम एइ'* उपमा हैं। यहाँ 'अनन्वयोपमा अलङ्कार' है। (प्र० सं०)]

नोट—१ मिलान कीजिये—*'गुन सकल सम समधी परस्पर मिलत अति आनँद लहे। जय धन्य जय जय धन्य धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे॥ ८॥ तीनि लोक अवलोकहि नहि उपमा कोउ। दसरथ जनक*

समान जनक दसरथ दोउ॥' (जानकीमंगल) जा० मं० के ***'सनमानि सब बिधि जनक दसरथ किये प्रेम कनावड़े।'*** का भाव ***'मिले अति प्रीती'*** में है।

टिप्पणी—३ (क) ***'लही न कतहुँ हारि हिय मानी'*** से जनाया कि कवियोंने बड़ा परिश्रम किया, फिर भी उपमा न पायी, हार मान गये। हार माननेपर भी कवियोंने अपना (कविका) काम किया ही, वह यह कि ***'इन्ह सम एइ'*** यह उपमा दी। उपमा नहीं मिलती रही, सो खोज लाये। (ख) ***'सामध देखि'*** इति। ***'मिले जनकु दसरथु अति प्रीती'*** यह दोनों समधियोंका मिलना ही ***'सामध'*** है। सामध देखकर अनुरक्त होनेका कारण यह कि देवताओंने इसके पहले कभी ऐसे ***'सम समधी'*** देखे न थे। आज एक नयी बात देखनेसे मनमें अनुराग हुआ, तनसे फूल बरसाने लगे और वचनसे यश गाने लगे, यह सब अनुरागके लक्षण हैं। क्या यश गाते हैं यह आगे लिखते हैं—***'जग बिरंचि'''''।'*** यह भी पुष्पवृष्टिके योग्य समय था, अतः फूल बरसाये।

जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥५॥
सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥६॥
देव गिरा सुनि सुंदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची॥७॥
देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥८॥

अर्थ—जबसे ब्रह्माजीने संसार, (वा, संसारमें हमको) उत्पन्न किया तबसे हमने बहुत-से ब्याह देखे-सुने हैं॥५॥ (परंतु) सब प्रकारसे समान साज और समाज तथा बराबरीके समधी हमने आज ही देखे॥६॥ देवताओंकी सुन्दर सच्ची वाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छा गयी॥७॥ सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए जनकमहाराज श्रीदशरथजी महाराजको आदरपूर्वक मण्डपमें ले आये॥८॥

टिप्पणी—१ (क) बिरंचि—आदि-ब्रह्माका नाम बिरंचि है। ***'जगु बिरंचि उपजावा''''''***' अर्थात् आदि (सृष्टिके) ब्रह्मासे लेकर आजतक। ***'देखे सुने'*** अर्थात् बहुत-से देखे हैं और जिन्होंने नहीं देखे उन्होंने सुने हैं। [जगत्‌के उत्पन्न होनेके साथ ही देवता भी अधिकारसहित तभी उत्पन्न हुए। विवाहादिमें देवताओंका आवाहन होता है, वे बुलाये जाते हैं। जिनका आवाहन होता है वे आते हैं और देखते ही हैं। उनके लिये ***'देखे'*** कहा। और जिनका आवाहन नहीं होता, अथवा जो किसी कारणसे न गये, उनका सुनना कहा। (पं० रामवल्लभाशरणजी) प० प० प्र० का मत है कि 'आदि 'ब्रह्मा' अर्थ अयुक्त है। रामविवाहके समयके ब्रह्मा भी आदिसृष्टिकालसे नहीं हैं तब दूसरे देवोंकी बात ही क्या?' पं० रामकुमारजीके मतानुसार 'सुने' में वे भी आ जाते हैं।] (ख) ***साज***=ऐश्वर्य। समाज अर्थात् निमिवंशी और रघुवंशी दोनों समाज। ***'सम समधी'***— अर्थात् ज्ञान, वैराग्य, भक्ति इत्यादिमें दोनों समान हैं। यहाँ ब्रह्मका अवतार तो वहाँ परम शक्तिका अवतार (श्रीरामजी तथा श्रीसीताजी दोनों अभिन्न हैं, तत्त्वतः एक हैं, यथा—***'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न'***)।

टिप्पणी—२ ***'देव गिरा सुनि सुंदर साँची।'''''*** इति। (क) 'सुन्दर' अर्थात् श्रवण-सुखदायी, श्रवण-रोचक। सुनकर सबको प्रिय लगी अतः ***'सुंदर'*** कहा। ***'साँची'*** कहनेका भाव कि बहुत बढ़ाकर बड़ाई करनेसे मनमें असत्यका प्रवेश होता है। (अर्थात् असत्यताकी प्रतीति होती है, यही जान पड़ता है कि बड़ाई करते हैं।) इसीपर कहते हैं कि ***'देव गिरा'*** है (देववाणी असत्य नहीं होती। सदा सत्य होती है। क्योंकि यदि देवता असत्य बोलें तो देवलोकसे उनका पतन हो जाय, उनका देवत्व जाता रहे।) देवगिरा है, अतः उसे सत्य माना। (अर्थात् इसमें मुबालग़ा नहीं है, बात बढ़ाकर नहीं कही गयी है, यथार्थतः ऐसी ही है।) (ख) ***'सुंदर साँची'*** दोनों कहनेका भाव कि वाणीके दो गुण हैं—प्रिय और सत्य। यथा—**'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'** इति। (मनुः) ***'कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी।'*** (२। १३०। ४) वाणीकी प्रशंसा यह है कि वह सत्य और प्रिय हो, देववाणीमें ये दोनों गुण यहाँ कहे, सुन्दर अर्थात् प्रिय है और सत्य है। (ग) ***'प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची'*** इति। इससे सूचित हुआ कि देवताओंने दोनों राजाओंको

'अलौकिक' कहा, इसीसे दोनों ओरके राजसमाजोंमें अलौकिक प्रीति हुई। *'माँची'* गहोरा देशकी बोली है। ***माँची***= हुई, यथा—*'कीरति जासु सकल जग माँची'* (१। १६। ४) (*'माँची'* 'मची' का अपभ्रंश है। =फैली, मची, छा गयी)।

टिप्पणी—३ *'देत पाँवड़े अरघ'''''* इति। (क) इस कथनसे स्पष्ट कर दिया कि श्रीरामजीको पाँवड़े और अर्घ्य पृथक् दिये गये और राजाको पृथक्। श्रीरामजीकी आरती, अर्घ्य और पाँवड़े स्त्रियोंद्वारा हुए—*'पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना। करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा॥'* (३१९। ४) और, दशरथजी महाराजको श्रीजनकजी महाराज पाँवड़े, अर्घ्य स्वयं देते हुए लाये। यह *'देत'* शब्दसे सूचित किया। जहाँ सेवकोंद्वारा पाँवड़े बिछाये जाते हैं वहाँ *'परत'* या *'परहीं'* लिखते हैं। यथा—*'बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं।'* (३०६। ५) (यहाँ अवागनींमें राजा साथ नहीं हैं) श्रीरामजीको रानी आदि स्त्रियाँ ले आयीं, वहाँ *'परहिं'* कहा, यथा—*'पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना'* (ख) *'सुहाए'* से जनाया कि वस्त्र बहुत विचित्र हैं, जैसा पूर्व कह आये। (ग) *'सादर जनकु मंडपहिं ल्याए'* इति। भाव कि श्रीरामजीको रानी श्रीसुनयनाजी मण्डपमें लायीं और महाराजको जनकजी लाये।

(हरिगीतिका)

छं०—मंडपु बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनिमन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्टु पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

दो०—बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।
दिए दिब्य आसन सबहि सब सन लही असीस॥ ३२०॥

अर्थ—मण्डपकी अनूठी रचना और सुन्दरता देखकर मुनियोंके मन मोहित हो गये। सुजान (चतुर) राजा जनकने अपने हाथोंसे ला-लाकर सबके लिये सिंघासन रखे। अपने कुल-देवताके समान वसिष्ठजीकी पूजा की, (उनकी) विनती करके उनसे आशीर्वाद पाया। श्रीविश्वामित्रजीको अत्यन्त प्रेमसे पूजते हैं। (उस) परम प्रीतिकी रीति तो कहते नहीं बन पड़ती। (फिर) प्रसन्नतापूर्वक राजाने वामदेव आदि ऋषियोंकी पूजा की। सबको दिव्य आसन दिये और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया॥ ३२०॥

टिप्पणी—१ (क) *'बिचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे'* इति। राजा जब मण्डपमें लाये गये तब उनके साथ मुनिसमाज भी मण्डपमें आया। राजाके साथ अनेक मुनि हैं, यथा—*'साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा॥'* (३१५। ५); उन्हीं मुनियोंका मन हरण करना कहा। मुनियोंके मनको मोहित करना कहनेसे मण्डपकी बड़ाई हुई। [मुनियोंके मन विषयरससे रूखे होते हैं। वे अपना मन बाह्य पदार्थोंसे हटाये हुए सदा परमात्मचिन्तनमें लगाये रखते हैं। जब इन्हींके मनको बाहरकी सुन्दरताने लुभा लिया, तब औरोंकी बात ही क्या? इसीसे केवल *'मुनि मन हरे'* कहा। (प्र० सं०)] यहाँ राजाके मनका हरना नहीं लिखते, क्योंकि राजाका ऐश्वर्य कम नहीं है। यदि *'नृप मन हरे'* लिखते तो राजाके ऐश्वर्यमें न्यूनता पायी जाती, उससे समझा जाता कि राजाने ऐसा ऐश्वर्य कभी देखा ही नहीं, तभी तो देखकर ठगे-से रह गये। (ख) *'निज पानि जनक सुजान''''''''* इति। *'सुजान'* का भाव कि वे जानते हैं कि महात्माओंकी सेवा अपने हाथसे करनी चाहिये, फिर ये तो बाराती हैं और समस्त बारातियोंके पूज्य भी हैं तब इनका अत्यन्त सम्मान योग्य ही है, इसीसे उन्होंने अपने हाथसे सिंघासन रखे हैं। (पंजाबीजी लिखते हैं कि *'सुजान'* का भाव यह है कि यद्यपि वे योगेश्वर हैं तथापि व्यवहारमें चूकनेवाले नहीं; उसमें भी बड़े निपुण हैं। समझते हैं कि हमारा (अर्थात् कन्यावालेका) पक्ष न्यून है, हमें योग्य है कि वर-पक्षके लोगोंका आदर-सत्कार स्वयं

करें)। पुनः, पहलेहीसे सिंहासन यथायोग्य इस प्रकार सजा रखे हैं कि सबके आनेपर कठिनता न पड़े और न विलम्ब हो, इससे भी '*सुजान*' कहा। (ग) '*धरे*' भूतकालिक क्रिया देकर सूचित किया कि पहलेहीसे मण्डपतले सबोंके लिये सिंहासन लगा रखे थे। यदि उसी समय रखना अभिप्रेत होता तो '*धरैं*' वर्तमानकालिक क्रिया देते, उसी समय सबको सिंहासन ला-लाकर देते तो सब लोग खड़े रहते जो अयोग्य है। दूसरे समय बहुत लग जाता, लग्नको देर हो जाती, वह थोड़ी ही देरकी है, बीती जा रही है, इसीमें बीत जाती ('*धरे*' में यह भाव आ सकता है कि 'लीजिये भगवन्! इस आसनपर विराजिये'। उनके सामने सिंहासनको पकड़कर बैठनेको कहना बड़े आदमियोंके लिये '*धरे*' के ही समान है)।

टिप्पणी—२ (क) '*कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे*''''' इति। निमिवंशियोंके कुलके इष्ट भगवान् हैं। भगवान्‌के समान श्रीवसिष्ठजीकी पूजा की। [पूजाके अन्तमें स्तुति होती है, वैसे ही यहाँ पूजा करके विनती की। वसिष्ठजी राजा निमिके भी पुरोहित थे। वसिष्ठजीकी अनुपस्थितिमें एक बार उन्होंने महर्षि गौतमसे यज्ञ कराया था, जिसपर वसिष्ठजीने राजाको शाप दिया, राजाने भी वसिष्ठजीको शाप दिया। यह कथा पूर्व २३० (४) में आ चुकी है। उस समयसे वसिष्ठजी निमिकुलके पुरोहित न रह गये। गौतमजी और उनके पश्चात् शतानन्दजी इस कुलके पुरोहित हुए। मयङ्ककारका मत है कि उस शापाशापी आदिके कारण जनकमहाराजने अत्यन्त विनती की, जिससे वसिष्ठजी प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया।] (ख) '*कौसिकहिं पूजत परम प्रीति*''''' इति। '*परम प्रीति*' का भाव कि और सब ऋषियोंकी भी पूजा प्रेमके साथ की पर इनकी पूजा '*परम प्रीति*' से की; क्योंकि इनके द्वारा श्रीरामजीकी प्राप्ति हुई, सब सुख और सुयश मिला। (इस विवाहके, इस सम्बन्धके मुख्य कारण भी ये ही हैं), यथा—'*जो सुखु सुजसु लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं। सो सुखु सुजसु सुलभ मोहि स्वामी। सब बिधि तव दरसन अनुगामी॥*' (३४३। ४-५) (ग) वसिष्ठजीसे आशिष पाना लिखा, विश्वामित्रसे आशिष पाना नहीं लिखा, फिर आगे सब ऋषियोंसे भी आशीर्वाद मिलना कहा गया। ('*बिनय कर आसिस लही*' को देहलीदीपकन्यायसे दोनोंके साथ लेनेसे शंका नहीं रह जाती।) यहाँ आशयसे समझ लेना चाहिये कि राजाने सबसे विनय की और सबसे आशिष पाया, विश्वामित्रजीसे भी आशीर्वाद पाया।

टिप्पणी—३ (क) '*बामदेव आदिक रिषय*''''' इति। श्रीवसिष्ठजी और श्रीविश्वामित्रजीका पृथक्-पृथक् षोडशोपचार पूजन किया (क्योंकि ये दोनों श्रीरामजीके गुरु हैं। वसिष्ठजी तो रघुकुलमात्रके गुरु हैं। राजाके भी गुरु हैं। अतएव उनका पूजन प्रथम किया। पूजनका भी भेद स्पष्ट है। वसिष्ठजीका पूजन 'इष्टदेवके भावसे', विश्वामित्रजीका 'परम प्रीतिसे' और अन्य ऋषियोंका मुदित होकर पूजन किया। यथायोग्य जिसका जैसा चाहिये वैसा क्रमशः किया)। दोनोंकी पूजा अलग-अलग करके तब और जितने ऋषि थे, समष्टिका पूजन किया, सबकी एक साथ पूजा की और सबको एक साथ आसन दिये, जिसमें महात्माओंको देरतक खड़े न रहना पड़े और लग्न भी न बीतने पाये। (ख) '*दिए दिव्य आसन सबहि*''''' इति। वसिष्ठजी और विश्वामित्रजीकी आशिषें अलग-अलग हैं और वामदेवादिकी इनसे पृथक् हैं। पूजा भी तीनोंकी पृथक्-पृथक् हुई, पर आसन सबको एक साथ दिये गये। इससे पाया गया कि सबका पूजन खड़े हुए ही किया गया, तब सबोंको आसन बता दिये जो क्रमसे यथायोग्य लगे हुए थे। सब क्रमसे बैठ गये। (अथवा, दोनों गुरुओंको ले जाकर प्रधान आसनपर बिठाया और सबोंको कह दिया कि ये सब आसन आपलोगोंके लिये हैं, इनपर विराजमान हो जाइये। यही आसन देना है।) (ग) यहाँतक ऋषियोंका पूजन हुआ, आगे इसी प्रकार राजा और बारातियोंकी पूजा लिखते हैं।

बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥ १॥
कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई। कहि निज भाग्य बिभव बहुताई॥ २॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥ ३॥
आसन उचित दिये सब काहू। कहउँ काह मुख एक उछाहू॥ ४॥

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥ ५॥

अर्थ—फिर कौशलेश दशरथजीकी पूजा की किसी दूसरे भावसे नहीं, (किंतु) 'ईश' के समान जानकर॥ १॥ हाथ जोड़कर अपने भाग्य-वैभवका बड़प्पन (सराहना) कहकर उनकी विनय और स्तुति की॥ २॥ राजाने समधीके समान सादर सब प्रकारसे सब बारातियोंका पूजन किया॥ ३॥ सबको उचित आसन दिये। मैं एक मुँहसे उस उत्साहको क्या कहूँ?॥ ४॥ राजा जनकने दान, मान, विनती और सुन्दर वाणीसे सब बारातका आदर-सत्कार किया॥ ५॥

टिप्पणी—१ '*बहुरि कीन्हि कोसलपति*......' इति। (क) '*कोसलपति*' का भाव कि जैसी कोसलराजकी पूजा करनी चाहिये वैसी की। (ख) '*जानि ईस सम*' इति। वशिष्ठजीकी पूजा कुल-इष्ट अर्थात् भगवान्‌के समान की। राजाकी पूजा शङ्करजीके समान की। भाव कि शिवजी भगवान्‌को पूजते हैं, (भगवान् श्रीरामजीके सेवक हैं) और राजा दशरथ वसिष्ठजीको पूजते हैं (अर्थात् वसिष्ठजीके सेवक, शिष्य हैं); अतः वसिष्ठजीकी भगवान्‌की भावनासे और दशरथजीकी शङ्कर-भावनासे पूजा की। [शङ्करजीहीके देनेसे रामजी प्राप्त होते हैं; अतएव राजाको शिव-समान माना, क्योंकि इनके 'देनेसे कौतुक-मिस अनायास प्रचण्ड राघव प्राप्त हुए'। (मा० म०, मा० त० वि०)] (ग) वसिष्ठजीमें कुल-इष्टकी भावना की, पर विश्वामित्रादि अन्य ऋषियोंमें किसीकी भावना नहीं लिखी; इसका कारण यह है कि वसिष्ठजी सबसे बड़े हैं, यदि अन्य ऋषियोंमें भगवान्‌की भावना करें तो वे सब वसिष्ठजीके बराबरीके हुए जाते हैं। यदि उनमें ब्रह्माजीकी भावना रखते तो वसिष्ठजीके पिता-समान हुए जाते हैं। यदि ईश-समानकी भावना करें तो वे राजाके बराबर होते हैं, यह भी अनुचित होगा; अतः ऋषियोंको राजाके समान नहीं कह सकते, वे राजासे विशेष हैं। और, यदि उनमें देवताओंकी भावना करें तो वे राजासे न्यून हो जायँगे, क्योंकि राजामें ईशकी भावना कर चुके, ईश (शङ्कर) सब देवताओंसे बड़े हैं, अतएव देवभावना भी न कर सके। इसीसे इनमें किसीकी भावना नहीं की गयी। (घ) '*भाउ न दूजा*' अर्थात् समधी वा अपने बराबरीके भावसे नहीं और न किसी अन्य भावसे किंतु ईशभावसे ही।

टिप्पणी—२ '*कीन्हि जोरि कर बिनय बड़ाई।*...' इति। (क) पूजा करके स्तुति करना चाहिये, स्तुति हाथ जोड़कर की जाती है। अतः हाथ जोड़कर विनय-बड़ाई करना कहा। ईश-भावनासे पूजा की, अतः '*जोरि कर*' उचित ही है। हाथ जोड़नेसे देवता शीघ्र प्रसन्न होते हैं, यथा—'**अंजलिः परमा मुद्रा क्षिप्रं देवप्रसादिनी**', और शङ्करजी तो दीनको हाथ जोड़े देख ही नहीं सकते, यथा—'***सकत न देखि दीन कर जोरें***' (विनय० ६)। अतः हाथ जोड़कर विनय की। (ख) '*कहि निज भाग्य बिभव बहुताई*'— अर्थात् आपके आगमनसे हमारे बड़े भाग्य उदय हुए और आपकी कृपादृष्टिसे हमारे वैभवकी उन्नति हुई। ईशकी भावनासे पूजा की है और ईशकी आराधनासे भाग्य और वैभवकी प्राप्ति होती ही है, यथा—'***सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी। जिन्ह के भाल लिखी लिपि मेरी सुखकी नहीं निसानी॥ तिन्ह राँकन्ह कहुँ नाक सँवारत हौं आयो नकबानी।***' (विनय० ५) इसीसे अपने भाग्य और वैभवकी '*बहुताई*' कही। यहाँ यथासंख्य अलङ्कार है। विनय करके भाग्यकी बड़ाई की, और विभवकी बड़ाई करके अपने वैभवकी बड़ाई की। पुनः अपने भाग्य और वैभवकी सराहना करना भी राजाकी बड़ाई करना है। (इसमें लक्षणामूलक अविवक्षित वाच्यध्वनि है।)

टिप्पणी—३ '*पूजे भूपति सकल बराती।*......' इति। जैसे समधी पूज्य हैं, वैसे ही बाराती पूज्य हैं, इसीसे समधीसम पूजना कहा। जैसे वसिष्ठ और विश्वामित्रजीकी पूजा पृथक्-पृथक् करके तब अन्य समस्त ऋषियोंका एक साथ पूजन किया गया, वैसे ही राजाका पृथक् पूजन करके समस्त बारातियोंका एकत्र पूजन किया। (राजाकी पूजा कोशलपति और ईशभावसे हुई और बारातियोंकी समधी-समान पूजा हुई। क्योंकि राजा बारातियोंद्वारा पूज्य हैं। राजाकी पूजा समधीभावसे नहीं हुई यह विशेषता है।) (ख) '*सादर*' कहनेका भाव कि समूहमें आदर नहीं बन पड़ता, इसीपर कहते हैं कि यहाँ वह बात नहीं है, यहाँ सबका सब भाँति सादर पूजन किया गया। (ग) '*सब भाँति*' अर्थात् पूजाके जितने प्रकार हैं, वे सब प्रकार सादर

किये गये। पुनः भाव कि सब बारातियोंका आदर-सत्कार समधीके समान कहीं नहीं होता, पर जनकजीने सबका सम्मान समधी-समान ही किया। पुनः, पूजा, विनय, बड़ाई, आसन इत्यादि यही *'सब भाँति'* हैं।

टिप्पणी—४ *'आसन उचित दिये सब काहू।'''* इति। (क) जैसे वसिष्ठादि समस्त ऋषियोंको सबकी पूजाके अन्तमें एक साथ आसन दिये गये वैसे ही राजा और सब बारातियोंका पूजन कर चुकनेपर तब सबको एक साथ आसन दिये गये; अतः *'सब काहू'* कहा। (ख) सब बारातियोंकी समधी-समान सादर पूजा की, इससे सबको एक-सा आसन भी दिया होगा, यही निश्चय होता है। इसके निराकरणके लिये *'उचित'* शब्द दिया। भाव यह कि सम्मान तो समधी-समान किया यह उचित था। पर एक-सा आसन देना अनुचित था, अनुचित काम राजाने नहीं किया। (क्योंकि बारातमें सभी श्रेणीके लोग हैं। अधिकार, वर्ण, कुल, छोटे, बड़े इत्यादिके अनुसार यथायोग्य आसन सबको दिया गया।) (ग) *'कहउँ काह मुख एक उछाहू'* इति। अर्थात् श्रीजनकजीके हृदयमें जो उत्साह है वह एक मुखसे कहते नहीं बनता। *'मुख एक'* का भाव कि इस उत्साहके कथनके लिये अनन्त मुख चाहिये। (घ) श्रीवसिष्ठादि महर्षियों, राजा और बारातियोंकी पूजा, विनय, बड़ाई और आसन देनेके पश्चात् *'उछाह'* का कथन करके जनाया कि जनकजीने सबकी पूजा आदि उत्साहपूर्वक की।

टिप्पणी—५ *'सकल बरात जनक सनमानी।'''* इति। (क) *मान*=आदर-सत्कार। *बरबानी*=बड़ाई। यथा—*'सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।'* (१। ३२६) (जैसे दोहा ३२६ में आदर, दान, विनय और बड़ाई चार प्रकारसे सम्मान करना कहा है वैसे ही यहाँ भी वही चार हैं—दान, मान, विनती और वर बानी। जो वहाँ आदर और बड़ाई है वही यहाँ मान और बरबानी हैं)। चारोंसे बारातका आदर-सत्कार किया। बड़ाई की, यही वाणीसे सत्कार करना है। (ख) *'दान, मान, बिनती, बर बानी'* इति। चारोंसे सबका सत्कार किया। अथवा, दान-मानसे ब्राह्मणोंका और विनती एवं बड़ाई (उत्तम वाणी) से क्षत्रियोंका सम्मान किया। क्रमसे प्रथम वसिष्ठ-वामदेवादिकी पूजा, फिर राजा और बारातियोंकी पूजा की तत्पश्चात् लिखा कि *'सकल बरात जनक सनमानी।'* सकल बारातमें ब्राह्मण और क्षत्रिय सभी हैं। अतएव उसी क्रमसे दान-मान और विनती-बरबानी कहे गये। [अथवा, ब्राह्मणोंका दान, वैश्य-शूद्रादिका मान (अर्थात् प्रतिष्ठा करते हुए बोलकर) और राजा आदिका विनयपूर्वक श्रेष्ठ वचनोंद्वारा सम्मान किया। (रा० प्र०) बैजनाथजीका मत है कि याचकोंको दान दिया, श्रेष्ठ लोगोंको मान दिया, ऋषियोंसे विनती की और सचिवादिका श्रेष्ठ वाणीसे सत्कार किया। पंजाबीजीका मत है कि क्षत्रियोंमें जो लघु थे उनको दान-मानसे, वैश्य-शूद्रोंका हाथ जोड़कर विनय करके, अन्त्यजोंको दूरसे हाथ जोड़कर वचनसे; इस तरह *'सकल बरात'* का सम्मान किया]। (ग) ऋषियोंनें आशीर्वाद दिया। बारातियोंका आशीर्वाद देना नहीं कहा, क्योंकि आशीर्वाद ब्राह्मण देते हैं, क्षत्रिय नहीं।

बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥ ६॥
कपट बिप्र बर बेष बनाए। कौतुक देखहिं अति सचु पाए॥ ७॥
पूछे जनक देव सम जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने॥ ८॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिक्पाल और सूर्य (आदि) जो रघुवीर श्रीरामजीका प्रभाव जानते हैं॥ ६॥ वे कपटसे ब्राह्मणोंका सुन्दर वेष बनाये हुए अत्यन्त सुख पाते हुए कौतुक देख रहे हैं॥ ७॥ श्रीजनकजीने देवसमान जानकर उनकी पूजा की और बिना पहचाने ही सुन्दर आसन दिये॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'बिधि हरि हरु''''''* इति। (क) पूर्व जो कहा था कि *'शिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा।'''चले बिलोकन राम बिआहू।'* (१। ३१४), 'अब उसका विभाग कहते हैं। *'दिसिपति'* से दसों दिक्पाल सूचित किये। [यथा—'**इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्। कुबेर ईशापतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्॥**' (अमरकोश) पूर्व दिशाके इन्द्र, अग्निकोणके वह्नि, दक्षिणके यम, नैर्ऋतिकोणके नैर्ऋति, पश्चिमके वरुण, वायव्यकोणके मरुत्, उत्तरके कुबेर, ईशानकोणके ईश, ऊर्ध्व दिशाके ब्रह्मा और अधो दिशाके

अनन्त। '*दिनराऊ*' से अष्ट लोकपाल सूचित किये। [रविको अष्टलोकपालोंकी गणनामें प्रथम (आदिमें) रखा गया है] यथा—'*रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥*' (१८२। १०) (ख) '*जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ*' कहनेका भाव कि ये सब प्रभाव जानते हैं। जानते हैं कि श्रीरामजी सर्वज्ञ हैं, हमको भी पूजा और आसन मिलेगा, इसीसे आनन्दसे कौतुक देखते हैं। यथा—'*रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥ जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।*' (६। ९५) यहाँ विद्यावीरता और दयावीरता गुणोंके लक्ष्यसे '*रघुबीर*' कहा।

टिप्पणी—२ '*कपट बिप्रबर बेष*…' इति। (क) देवता निजरूपसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते, इसीसे विप्रका रूप धारण किया है। '*कपट बिप्र*' बननेका भाव कि जिसमें कोई पहचाने नहीं है। (ख) शंका—कपट भगवान्‌को नहीं भाता;—'*मोहि कपट छल छिद्र न भावा*'; तब इन्होंने कपटरूप क्यों धारण किया? समाधान—यदि श्रीरामजीसे कपट करें अथवा किसीको छलनेके लिये कपट करें तो वह श्रीरामजीको नहीं भाता और यहाँ तो देवताओंने प्रभुके दर्शनोंका लाभ लेने तथा औरोंसे अपनेको छिपानेके लिये कपट किया है, किसी और मनके विकारसे नहीं। (इस कपटसे किसीकी हानि नहीं सोची गयी और न है। दूसरे, इसमें श्रीरामजीका ऐश्वर्य भी न खुले यह भी अभिप्राय है। प्रत्यक्ष देवरूपसे आते तो ऐश्वर्य खुल जाता जो भगवान् नहीं चाहते। यथा—'*गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ।*' (४८) कपट-विप्र वेषसे श्रीरामजी प्रसन्न ही होंगे और हुए भी जैसा आगे स्पष्ट है] (ग)—'*अति सचु पाए*'—'*अति आनंद*' का भाव कि कौतुक देखनेसे आनन्द हुआ और श्रीरामजीका प्रभाव जानने तथा उनके दर्शनसे अति आनन्द हुआ, प्रभुका दर्शन आनन्दकी सीमा है। अतः '*अति सचु पाए*' कहा।

टिप्पणी—३ '*पूजे जनक देव सम*…' इति। (क) ब्राह्मणरूपधारी देवताओंमें देवभावना की, इससे जनाया कि श्रीजनकजीका अनुभव व्यर्थ नहीं है। [तेजस्वी पुरुष दूसरा रूप बनाकर अपनेको कितना ही क्यों न छिपावे, उसका तेज झलक ही पड़ता है। जिनके अन्तःकरण शुद्ध हैं और जो परम भागवत हैं, उनका अनुभव यथार्थ ही होता है। अनुभवी लोग लख लेते हैं। इसीसे जनकमहाराजने उनको '*देव सम*' जाना। इसी प्रकार श्रीराम-लक्ष्मणको प्रथम बार देखते ही उनका अनुभव यह हुआ कि '*ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥*' (२१६। २) और श्रीहनुमान्‌जीको भी ऐसा ही अनुभव हुआ था, यथा—'*की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार।*' (४। १)] (ख) '*दिए सुआसन बिनु पहिचाने*' इति। देवसम जाना, इसीसे उत्तम आसन दिये। आसन देनेमें कवि भेद दिखा रहे हैं। ऋषियोंको '*दिव्य आसन*' दिये, यथा—'*दिए दिव्य आसन सबहि सब सन लही असीस।*' (३२) क्षत्रियोंको '*आसन*' दिये, यथा—'*आसन उचित दिए सब काहू।*' (३२१। ४) और देवताओंको '*सुआसन*' दिये। विप्ररूपधारी देवताओंको सुन्दर आसन देनेसे रघुवंशी प्रसन्न हुए; इसमें श्रीजनकजीकी जानकारी 'सुजानता' पायी गयी। (ग) श्रीजनकजीने क्रमसे श्रीवसिष्ठजी, श्रीविश्वामित्रजी, श्रीवामदेवादि ऋषिगण, श्रीदशरथजी और बारातियोंकी पूजा की; तब अज्ञात अनजाने ब्राह्मणोंकी की। देवता अपनेको पहचनवाना नहीं चाहते थे, इसीसे न पहचाने गये। यदि पहचाने जाते तो उनकी पूजा सबसे पहले करते।

छं०—पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंदकंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभुको बिबुध मन प्रमुदित भए॥

दो०—रामचंद्र मुख-चंद्र-छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥ ३२१॥

शब्दार्थ—'**अपान**' (यह सर्वनाम है)=अपनी 'मानसिक' (मानसी)=वह पूजा जो बिना द्रव्यके केवल मनकी कल्पनासे की जाय।

अर्थ—कौन पहचाने और किसको पहिचाने (वा, कौन किसको जाने-पहिचाने), सबको अपनी ही सुध-बुध भूल गयी। आनन्दकन्द दूलहको देखकर दोनों ओर (के समाज) आनन्दमय हो रहे हैं॥ सुजान (सबकी जाननेवाले) श्रीरामचन्द्रजीने देवताओंको लख लिया और उनकी मानसिक पूजा करके उनको मानसिक आसन दिये। प्रभुका शील-स्वभाव देखकर देवता मनमें बहुत आनन्दित हुए। श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रकी छबिको सभीके सुन्दर नेत्ररूपी सुन्दर चकोर आदरसहित पान कर रहे हैं, और प्रेम और प्रमोद कुछ थोड़ा नहीं है॥ ३२१॥

नोट—१ ऊपर कहा था कि, '***दिए सुआसन बिनु पहिचाने***'। अब नहीं पहिचाननेका कारण कहते हैं। '***सबहि***' शब्द देकर जनाया कि श्रीजनकजी ही नहीं वरन् और भी कोई न पहचान सका। क्योंकि कोई आपेमें है ही नहीं। यह क्यों? इसका उत्तर है कि '***आनंदकंद***…'। '***आनंदकंद***' का भाव ३१८ छन्दमें देखिये, वहाँ भी यही शब्द ज्यों-के-त्यों हैं।

टिप्पणी—१ (क) देवताओंकी स्त्रियों और देवताओंको न पहचाननेका कारण एक ही है।

उधर	(दोनोंका मिलान)	इधर
आनंदकंद बिलोकि दूलह सकल हिय हरषित भईं।	१	***आनंदकंद बिलोकि दूलह उभय दिसि आनँदमई।***
को जान केहि आनंदबस सब ब्रह्मबर परिछनि चलीं॥	२	***पहिचान को केहि जान सबहिं अपान सुधि भारी भई॥***

(ख) '***को केहि***' देहलीदीपक है। '***उभय दिसि आनँदमई***' अर्थात् कुछ एक जनकजी ही नहीं किंतु सभी लोग विदेह हो गये, इसीसे किसीने न पहिचाना। [(ग)—'***सुर लखे***' अर्थात् वेष छिपाये होनेपर भी श्रीरामजीसे न छिप सके, उन्होंने लख ही लिया। कोई न लख सका, इन्होंने लख लिया, अतः '***सुजान***' कहा। श्रीरामजी स्वतः सर्वज्ञ हैं। सारा ब्रह्माण्ड यथार्थरूपमें इनकी दृष्टिमें सदा रहता है। इनको ध्यान धरकर जाननेकी आवश्यकता नहीं जैसी प्रज्ञावस्थावाले योगीश्वरों, मुनियों आदिको होती है। सुजान हैं, अतः यह भी जान गये कि हमको देखकर श्रीजनकजी विदेह हो गये हैं, इसीसे इन्होंने देवताओंको नहीं पहचाना और इसीसे उनका उचित आदर न हो सका; सबसे प्रथम उनका पूजन होना चाहिये था सो सबके पीछे हुआ। 'मानसिक' देहलीदीपक है। मानसिक पूजा की और मानसिक आसन दिये। जैसे जनकजीने प्रथम पूजा की तब आसन दिया, वैसे ही श्रीरामजीने पूजन करके पीछे आसन दिया। (घ) पूजनेका कारण यह था कि देवता सब बारातके पीछे पूजे गये थे, उनका अनादर समझकर श्रीरामजीने उनकी मानसी पूजाद्वारा आदर किया। [मानसिक पूजाका फल भी विशेष है। (पं०)] (ङ) '***अवलोकि सील***…' ***सील***=मुलाहजा; संकोच। शीलके कारण जनकजीसे न कह सके और अनादर भी न सह वा देख सके, अतः स्वयं आदर-मान दिया। [शील यह कि समस्त ब्रह्माण्डोंके तथा हमारे स्वामी होकर भी ये हमारी इतनी आदरपूर्वक सेवा कर रहे हैं। यथा—'***ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि। ध्यान अगम सिवहू भेंटेउ केवट उठि॥***' (विनय० १३५) '***प्रभु***' शब्दसे भी यही भाव सिद्ध होता है। देवता जब जान गये कि प्रभुने हमारा मानसिक आदर किया, तब उन्हें 'बि-बुध' (विशेष बुद्धिमान् वा पण्डित) यह नाम यहाँ दिया गया। शील-स्वभाव देखा, इसीसे विशेष आनन्दित हुए। '***मन प्रमुदित***'—मनमें क्योंकि अपनेको छिपाये हुए हैं। '***प्रमुदित***' यह कि मुदित तो दर्शनसे ही हुए थे, यथा—'***मुदित देवगन रामहि देखी***', और शील-स्वभाव देखकर प्रमुदित (प्रकर्ष करके मुदित) हुए। श्रीरामजीके मनकी भला कौन जान सकता है, परंतु यहाँ वे देवताओंको यह बात जना देना चाहते थे इससे वे जान गये और आनन्दित हुए। हाँ, देवता मृत्युलोकके जीवोंके हृदयकी जान लेते हैं, इसमें संदेह नहीं।

टिप्पणी—२ '***रामचंद्र मुखचंद्र छबि***……' इति। (क) यहाँ 'रामचंद्र' कहकर जनाया कि श्रीरामजीका मुख ही चन्द्रमाके समान है यह बात नहीं है, उनका सर्वाङ्ग चन्द्रसमान सुखदाता है। (इसीसे यहाँ 'राम'

के साथ भी 'चन्द्र' शब्द दिया और फिर मुखके साथ अलग दिया)। (ख)—*'मुखचंद्र छबि'* इति। मुख चन्द्रमा है, मुखकी छबि अमृत है, यथा—*'जौं छबि सुधा पयोनिधि होई।'* (२४७। ७) (ग) *'लोचन चारु चकोर'* इति। *'चारु'* विशेषण देकर जनाया कि नेत्र चकोरोंसे सुन्दर हैं क्योंकि चकोर तो चन्द्रमाको ही देखते हैं और यहाँ तो सबोंके नेत्र श्रीरामजीके मुखकी छबिका दर्शन कर रहे हैं। (घ) चन्द्र-चकोरका दृष्टान्त देनेका भाव कि पहले देवता कौतुक देखते रहे, जब श्रीरामजीने उनकी मानसिक पूजा की और मानसिक आसन दिये तब वे प्रभुका शील-स्वभाव देखकर प्रसन्न हुए और कौतुक देखना छोड़कर एकटक श्रीरामजीका मुख देखने लगे। इससे यह भी जनाया कि श्रीरामजी सबको सम्मुख देख पड़ रहे हैं, जैसे चन्द्रमा सर्वत्र सबको सम्मुख ही देख पड़ता है। यथा—*'मुनि समूह महँ बैठे सनमुख सबकी ओर। सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर॥'* (३। १२) (ङ) *'प्रेम प्रमोद न थोर'* इति। अर्थात् बहुत है। प्रथम जो कह आये कि *'बिबुध मन प्रमुदित भये'* उसी प्रमोदको कहते हैं कि थोड़ा नहीं है, अर्थात् अधिक बढ़ा। प्रेम मुखचन्द्रमें है और प्रमोद छबिके पान करनेमें हुआ। *'प्रेम प्रमोद न थोर'* से सूचित किया कि चन्द्रमासे मुखचन्द्र सुन्दर है, यथा—*सरदचंद निंदक मुख नीके।'* (२४३। २) क्योंकि मुखचन्द्रको देखनेसे प्रेम-प्रमोद बहुत बढ़ा; चन्द्रको देखकर प्रेम-प्रमोद बहुत थोड़ा होता है।

समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु सुनि आए॥ १॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयेसु पाई॥ २॥
रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥ ३॥
बिप्रबधू कुलबृद्ध बोलाई। करि कुल रीति सुमंगल गाई॥ ४॥
नारि बेष जो सुर बर बामा। सकल सुभाय सुंदरी स्यामा॥ ५॥
तिन्हहिं देखि सुखु पावहिं नारीं। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं॥ ६॥

अर्थ—समय जानकर वसिष्ठजीने शतानन्दजीको सादर बुलाया, वे सुनकर आदरपूर्वक आये॥ १॥ (वसिष्ठजी बोले कि) अब जाकर कन्याको शीघ्र लाइये। मुनिकी आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले॥ २॥ चतुर रानी पुरोहितके वचन सुनकर सखियोंसमेत बड़ी सुखी हुईं॥ ३॥ ब्राह्मणियों और कुलकी बूढ़ी स्त्रियोंको बुलाकर सुन्दर मङ्गल गाती हुई उन्होंने कुलरीति की॥ ४॥ श्रेष्ठ देवताओंकी श्रेष्ठ स्त्रियाँ जो (कपट) नारिवेषमें हैं वे सभी स्वाभाविक ही सुन्दरी और श्यामा हैं॥ ५॥ उन्हें देखकर स्त्रियाँ सुख पाती हैं॥ बिना पहिचानी होनेपर भी प्राणोंसे प्यारी हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'समउ बिलोकि बसिष्ठ'''* इति। अर्थात् कन्यादानका समय देखकर। वसिष्ठजी रघुकुलके पुरोहित हैं और यह काम पुरोहितका है कि ठीक मुहूर्तपर मङ्गल कार्य हो। *'समउ बिलोकि......'* कहकर दिखाया कि वे अपने कर्तव्यमें बड़े सावधान हैं। *'सादर आए'* कहकर जनाया कि शीघ्र आये और प्रसन्नतापूर्वक आये। विलम्ब करनेसे अनादर पाया जाता है। (ख) *'बेगि'* का भाव कि विलम्ब करनेसे लग्न बीत जायगी। *'आनहु जाई'* का भाव कि आप ही जाकर ले आइये, दूसरे किसीको न भेजिये। *'चले मुदित मुनि'* क्योंकि इस विवाहसे सभीको आनन्द हो रहा है। इसीसे आगे और सबका मुदित होना लिखते जा रहे हैं। यथा—*'रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी॥', 'सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित......'* और *'एहि बिधि सीय मंडपहि आई। प्रमुदित सान्ति पढ़हिं मुनिराई॥'*

टिप्पणी—२ (क) *'रानी सुनि उपरोहित'''* इति। *'सुनि'''* से जनाया कि शतानन्दजीने स्वयं आकर रानीसे कहा जिसमें शीघ्र श्रीजानकीजीको भेजें, विलम्ब न हो। *'प्रमुदित'* से जनाया कि शतानन्दजीसे अधिक आनन्द इनको हुआ। शतानन्दजी 'मुदित' हुए और ये *'प्रमुदित'*। *'सयानी'* का भाव कि रानी बड़ी बुद्धिमान् हैं, जानती हैं कि विलम्ब करनेसे लग्न बीत जायगी, इससे उन्होंने शीघ्रता की। सयानपन

आगे दिखाते हैं। (ख) शतानन्दजीने वसिष्ठजीकी वाणीका आदर किया—'*चले मुदितमन आयसु पाई*'; और रानीने शतानन्दजीकी वाणीका आदर किया—'*प्रमुदित*……'। (वाणी सुनकर आनन्दित होना और उसके अनुकूल आचरण करना वाणीका आदर है। यह दोनोंने किया)। (ग) '*बिप्रबधू कुलबृद्ध*……' इति। कुलरीति मङ्गल गीत गा-गाकर की जाती है। इस समय वेदोंका काम नहीं है, स्त्रियाँ ही मङ्गल गाया करती हैं। मङ्गल गान करनेके लिये विप्रवधू और कुलरीति बताने और करानेके लिये कुलकी बूढ़ी पुरुखिनी बुलायी गयीं। (पहलेहीसे ये सब वहाँ हैं)। शंका हो सकती है कि सखियाँ तो साथमें विद्यमान ही हैं, यथा—''*प्रमुदित सखिन्ह समेत सयानी*', तब उन्हींसे क्यों न गवाया?' समाधान यह है कि कुलरीति ब्राह्मणियोंके मुखसे मङ्गलगान कराके की जाती है। एक तो वे 'सुमङ्गल गीत' हैं, दूसरे ब्राह्मणियोंके मुखसे गाये गये, अतः ये अवश्य कुलके लिये मङ्गलदाता होंगे। (राजाओंकी वंशावलीसे स्पष्ट है कि विप्रपत्नियोंकी आयु क्षत्राणियोंसे बहुत अधिक होती थी, इससे कुलाचारमें रानियोंसे भी अधिक जानकार होती थीं। उनका साहाय्य लेनेसे कुलपरम्परा अविच्छिन्न रहती थी। (प० प० प्र०)

टिप्पणी—३ (क) '*नारि बेष जे सुर बर बामा*।……' इति। '*नारि बेष जे*' अर्थात् जिनके नाम पूर्व दे आये, यथा—'*सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥ कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहि जाई॥*' (१। ३१८), अब उनका सम्मान कहते हैं। '*सुभाय सुंदरी*' अर्थात् बिना शृङ्गार और बिना भूषणके ही सुन्दर हैं। '*स्यामा*' अर्थात् सब सोलह-सोलह वर्षकी हैं। (ख) '*तिन्हहि देखि सुख पावहिं नारीं*।' इति। जब देवताओंकी स्त्रियाँ रनवासमें गयीं तब किसीको भी अपनी ही सुधबुध न थी, इसीसे वहाँ देखना—सम्मान करना नहीं कहा। '*देखि*' से जनाया कि अब सब अपने आपेमें हुईं, इसीसे अब देखना और सुख पाना कहा। सुख पानेका हेतु ऊपर कह आये कि सब सहज ही सुन्दर और श्यामा हैं, अर्थात् उनकी सुन्दरता देखकर सुख पाती हैं। अद्भुत रूप है, इसीसे '*तिन्हहि देखि*' कहा। देखना नेत्रेन्द्रियका विषय है। (ग) '*बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं*' इति। देवियाँ अपना रूप छिपाये हुए हैं, इसीसे कोई पहचान नहीं सकता। बाह्येन्द्रियोंमें नेत्र प्रबल हैं और भीतरकी इन्द्रियोंमें मन प्रबल है। देवतओंकी स्त्रियोंने अपने रूपसे सबके मन और नेत्रोंको आकर्षित कर लिया, '*तिन्हहिं देखि सुख पावहिं नारीं*' से नेत्रेन्द्रियका आकर्षण कहा और '*बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारीं*' से मनका। प्रिय लगना मनका धर्म है। यथा—'*लगे संग लोचन मनु लोभा*'। (घ)—प्राणसे भी प्रिय लगती हैं, तब पूछती क्यों नहीं कि आप कौन हैं, किसके घरकी हैं, कहाँसे आयी हैं, इत्यादि? कारण कि सरस्वती भी साथ हैं, इन प्रश्नोंके सम्बन्धमें उन्होंने इनकी वाचाशक्ति ही बंद कर दी है, क्योंकि यदि वे इस विषयमें बोलतीं तो पूछनेपर देवियोंको सत्य बात कहनी पड़ती, जिससे प्रभुका ऐश्वर्य प्रकट हो जाता।

बार बार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥ ७॥
सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहि चलीं लवाई॥ ८॥
छं०—चलि ल्याइ सीतहिं सखीं सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसप्त साजे सुंदरी सब मत्त कुंजर गामिनी॥
कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजहीं।
मंजीर नूपुर कलित कंकन तालगति बर बाजहीं॥
दो०—सोहति बनिताबृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललनागन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥ ३२२॥

शब्दार्थ—**भामिनी**=दीप्तिवाली, कान्तिवाली, सुन्दर स्त्रियाँ। **नवसप्त**=षोडश शृङ्गार। २९७। (१) देखिये। पुनः, यथा—'*प्रथम अंग शुचि एक बिधि, मजन द्वितीय बखान। अमल बसन पहिरन तृतीय, जावक चारि*

सुजान॥ पंचम केस सँवारिबो, षष्ठहि माँग सिंदूर। भालखौरि सप्तम कहत, अष्ट चिबुक तिल पूर॥ मेंहदी कर पद रचन नव, दसम अरगजा अंग। ग्यारह भूषन नग जटित, बारह पुष्प प्रसंग॥ बास राग मुख तेरहो, चौदह रंगिबो दाँत। अधरराग गनि पंचदस, कज्जल षोडश भाँत॥' (रा० प्र०) **समाजु**=मण्डली। **मंजीर**=कटिभूषण, किंकिणी। टि० ३ (घ) देखिये। **ललना**=सुन्दर स्त्री; कामिनी। **सुषमा** (सं०) परमा शोभा, अत्यन्त सुन्दरता। **कमनीय**=कामना करने योग्य; मनोहर, सुन्दर।

अर्थ—उमा, रमा और शारदाके समान जानकर रानी उनका आदर-सत्कार बारम्बार करती हैं॥७॥ श्रीसीताजीका शृङ्गार करके और अपना समाज बनाकर वे उनको आनन्दपूर्वक मण्डपमें लिवा चलीं॥८॥ सुन्दर मंगलका साज सजाकर सुन्दर कान्तिवाली स्त्रियाँ और सखियाँ श्रीसीताजीको सादर लिवा ले चलीं। सभी सुन्दरियाँ सोलहों शृङ्गार किये हुए हैं और सभी मतवाले हाथियोंकी-सी चाल चलनेवाली हैं। उनका मनोहर गान सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेवरूपी कोकिल लज्जित होते हैं। मंजीर, नूपुर और सुन्दर कंकण तालकी गतिपर खूब सुहावने (शब्दसे) बज रहे हैं। सहज ही सुन्दर श्रीसीताजी स्त्रियोंके झुण्डमें ऐसी सोह रही हैं मानो छबिरूपी स्त्रीसमाजके बीचमें कमनीय परमाशोभारूपी स्त्री शोभित है॥ ३२२॥

टिप्पणी—१ *'बार बार सनमानहिं रानी।'''''* इति। (क) ऊपर सुर-नारियोंको देखकर स्त्रियोंका सुख पाना कहा, यथा—*'तिन्हहिं देखि सुख पावहिं नारीं'।* और यहाँ कहते हैं कि रानी उनका उमा-रमा-शारदाकी भावनासे सम्मान करती हैं। भाव यह कि देवियाँ रानीके घर आयी हैं, इसलिये रानीको ही उनका सम्मान करना उचित है, अतः रानीद्वारा सम्मान कहा। *'बार बार'* सम्मान करना कहकर जनाया कि केवल अन्य स्त्रियाँ ही नहीं सुख पा रही हैं किंतु उन देवियोंको देखकर रानीको भी वे प्राणोंसे प्यारी लग रही हैं और सुख हो रहा है इसीसे बारम्बार सम्मान करती हैं। (ख) देवता विप्ररूपसे आये। राजाने उनको देव-समान जानकर उनका सम्मान किया, पूजन किया और आसन दिया। उनकी स्त्रियाँ नारीवेष बनाकर रनवासमें आयीं तो रानीने इनका सम्मान इनको उमा-रमा-शारदा-सम जानकर किया। इसीसे जनाया कि राजा और रानी दोनों विवेकसिंधु हैं। पूजा करना, आसन देना यही सम्मान है। रानीद्वारा इनके सम्मानमें कई विशेषताएँ दिखायीं। जनकजीने देवसमान जानकर (एक बार) सम्मान किया। रानीने *'उमा रमा सारदा सम'* जानकर (केवल देवी जानकर नहीं) और बारम्बार सम्मान किया। देवियाँ रानीको प्राणसमान प्यारी लग रही हैं, यह बात राजाके सम्बन्धमें नहीं कही गयी।

☞ राजाकी त्रुटि श्रीरामजीने मानसिक पूजासे पूरी कर दी।

टिप्पणी—२ *'सीय सँवारि समाजु बनाई'''''* इति। (क) *'समाजु बनाई'* अर्थात् अपना शृङ्गार करके जैसा आगे छन्दमें कहते हैं। अथवा मङ्गलकी सामग्री सजाकर अथवा सिंदूरका पात्र, अक्षत, पुष्प, द्रव्य कन्याकी अञ्जलिमें धरकर ले चलीं। [अथवा, अपना समाज ठीक करके अर्थात् यह ठीक करके कि कौन दाहिने रहेंगी, कौन बायें, कौन आगे, कौन पीछे, कौन क्या मङ्गल-द्रव्य लेकर चलेंगी, गानमें कौन अगुआ रहेगी, इत्यादि। (प्र० सं०)] (ख) देवीका पूजन करके मण्डपतले ले जानेकी विधि है, वैसा ही यहाँ हुआ। रानी और सखियाँ दोनों पुरोहितकी वाणी सुनकर *'प्रमुदित'* हुई थीं, यह पूर्व कहकर दोनोंके कृत्य कहते जा रहे हैं। रानी कुलरीति करने लगी और उधर सखियाँ श्रीसीताजीका शृङ्गार करने लगीं। (ग) *'मुदित मंडपहि चलीं लवाई'*— मुदित होनेका भाव कि यहाँ श्रीसीताजीका शृङ्गार देखा, अब मण्डपतले श्रीरामजीका शृङ्गार देखेंगी, दूसरे, चलनेके समय हर्ष शकुन है, यथा—*'हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥'* [बैजनाथजी लिखते हैं कि यहाँ रस-युद्धका समय है। अर्थात् देवसमाजसहित जहाँ प्रभु आसीन हैं वहाँ शक्तियोंसहित श्रीकिशोरीजी जा रही हैं। देखिये किसकी पराजय हो]

टिप्पणी—३ *'चलि ल्याइ सीतहि'''''* इति। (क) रानीने कुलरीति की, सबका सम्मान किया और सखियाँ तथा और स्त्रियाँ श्रीसीताजीको मण्डपमें ले गयीं। रानी साथ नहीं गयीं, क्योंकि अभी मण्डपतले उनके जानेका समय नहीं है। (ख) *'सादर'* अर्थात् श्रीसीताजीको आगे करके चलीं, यथा—*'सादर तेहि आगे करि बानर।*

चले जहाँ रघुपति करुनाकर॥' (५। ४५) *'सजि सुमंगल'* अर्थात् अपने-अपने अङ्गोंमें मङ्गल सजकर, यथा—*'सकल सुमंगल अंग बनाए।'* (३१८। ३) देखिये। [पाँड़ेजी *'सुमंगल भामिनी'* का अर्थ 'भाग्यभरी स्त्रियाँ' करते हैं। *'सजि सुमंगल'* के दो अर्थ यहाँ प्रसंगानुकूल हैं—एक तो जैसा *'सकल सुमंगल अंग बनाए'* में कहा गया; दूसरे मङ्गल द्रव्य सिंधौरा, दही, अक्षत इत्यादि।—(वैजनाथजी)] *'नव सप्त साजे'* कहकर सबको सावित्री, *'मत्त कुंजर गामिनी'* से सबको युवा जनाया। *'मत्त कुंजर गामिनी'* कहकर यह भी जनाया कि सीताजीको लेकर धीरे-धीरे चल रही हैं। (ग) *'कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं'* इति। कोकिलकी ध्वनि सुनकर मुनियोंके ध्यान छूट जाते हैं, यथा—*'कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥'* (३। ४४) और यहाँ सखियों आदिका कल-गान सुनकर काम-कोकिल लज्जित हो जाते हैं; इसीसे वहाँ *'ध्यान टरहीं'* अर्थात् ध्यानका छूटना कहा और यहाँ अपनी ओरसे ध्यानको त्याग देना कहा, यह विशेषता है। पूर्व *'कलकंठ'* (अर्थात् सुन्दर कण्ठवाली सरस ध्वनि करनेवाली) कह आये, इसीसे यहाँ *'काम कोकिल'* कहा। पूर्व *'चाल बिलोकि काम गज लाजहिं'* कहा था, इसीसे अब *'मत्त कुंजर गामिनी'* कहा। कविका अभिप्राय यह है कि एक जगहकी बात सब जगह समझ लेनी चाहिये। पूर्व कह आये कि *'बिधु बदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मद मोचनि॥ पहिरे बरन बरन बर चीरा।'* इसीसे यहाँ नहीं लिखा।—[*'काम कोकिल लाजहीं'* इति।—*'लाजहीं'* बहुवचन है। भाव यह कि कामदेवने अनेक कोकिलोंका रूप धरकर अपना स्वर उनके स्वरसे मिलाना चाहा तो भी न मिला; अतः वह बहुत लज्जित हुआ। साधारण कोकिलकी तो गिनती ही क्या। जब काम ही कोकिल बनकर आता है तो उसकी यह दशा हो जाती है। ☞पूर्व जनकपुरकी सौभाग्यवती *'बिधुबदनी सब सब मृगलोचनि'* के गानके सम्बन्धमें *'कलकण्ठि'* का लजाना कहा था, उस समय शची आदि देवियाँ उनमें नहीं थीं, जैसा वर्णनके क्रमसे स्पष्ट है। और इस समय *'नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभाय सुंदरी स्यामा॥'* भी साथमें गान कर रही हैं; अतः यहाँ *'काम कोकिल'* का लजाना कहा। ये देवियाँ षोडश वर्षकी स्त्रियोंके वेषमें हैं, इसीसे *'मत्त कुंजरगामिनी'* कही। यह उठती जवानीकी मस्ती है] (घ) *'मंजीर नुपूर कलित कंकन'* इति। 'मंजीर' कटिभूषण है, नूपुर चरणका भूषण है और कंकण हाथका। गीतावलीमें भी 'मंजीर' कटिभूषणके लिये आया है (यथा—*'हाटक घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर।'* (७। २१) जैसे यहाँ तीन आभूषण कहे हैं वैसे ही तीन अंगोंके भूषण कई जगह कहे गये हैं। यथा—*'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।'* (२३०। १), *'कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं।'* (३१८। ४), *'मंजीर नूपुर बलय धुनि जनु·····करत ब्योम बिहार'* (गी० ७। १८)। इससे *'मंजीर'* से कटिभूषण किंकिणी ही अभिप्रेत है। पुष्पवाटिकामें भी तीन ही भूषण बजनेवाले थे, वे ही यहाँ हैं (*'नूपुर'* यहाँ कहा ही है, इसलिये शब्दसागरमें दिया हुआ वह अर्थ यहाँ संगत नहीं)। (ङ) गानके साथ बाजा चाहिये वही यहाँ कहते हैं कि मंजीर, नूपुर और कंकण तालकी गतिपर बज रहे हैं। चाल देखकर काम-गज लज्जित होते हैं, यह पूर्व कह आये। गाना सुनकर काम-कोकिल लजाते हैं। कंकण, किंकिणी, नूपुरकी ध्वनि कामके नगाड़े हैं, यथा—*'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि॥ मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।'* (१। २३०)

नोट—१ बैजनाथजी लिखते हैं कि 'जो निर्गुण ब्रह्ममें ध्यान लगाये थे, वे मुनि ध्यान त्यागकर लीलाके प्रेमप्रवाहमें पड़े, इति। किशोरीजीका आगमन सुनते ही मुनिरूप प्रभुकी प्रजा प्रथम ही श्रीकिशोरीजीके यहाँ हाजिर हुई। मञ्जीर आदिका बजाना मानो विजयके लिये डंका बजाते आना है।

टिप्पणी—४ *'सोहति बनिता-बृंद महुँ·····'* इति। (क) *'बनिता बृंद'* पद देकर जनाया कि सखियोंके अतिरिक्त और भी स्त्रियाँ साथमें हैं। यदि केवल सखियाँ होतीं तो *'बनिता बृंद'* न कहकर *'सखिन्ह बृंद'* कहते, जैसा कि पूर्व २६४। १ *'सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥'* में कहा था। यहाँ सखियाँ भी हैं और उनसे भिन्न और वनिताएँ भी हैं जैसा ऊपर *'चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी'* में कहा गया। *'भामिनी'* के संगसे यहाँ *'बनिता बृंद'* कहा, क्योंकि सखी

और भामिनी सब *'बनिता'* हैं। [प्र० सं० में लिखा था कि पूर्व जिन्हें *'भामिनि'* और *'स्यामा'* लिखा था उन्हीं दोनोंका बोध यहाँ *'बनिता'* शब्दसे कराया।] (ख) *'सहज सुहावनि सीय'* इति। *'सोहति बनिता बृंद महुँ'* कहनेसे पाया जाता कि वनितावृन्दके साहचर्यसे श्रीसीताजीकी शोभा होती होगी, अतः *'सहज सुहावनि'* कहकर उसका निराकरण किया। अर्थात् श्रीसीताजी उनके योगसे नहीं शोभित हैं, किंतु स्वाभाविक ही शोभित हैं, यही आगे उत्प्रेक्षाद्वारा कहते हैं। (ग) *'छबि ललना गन……'* इति। अर्थात् छबियोंके बीचमें जैसे महाछबिकी शोभा होती है। छवि भला *'महाछबि'* की क्या शोभा करेगी? महाछविसे ही छविकी शोभा है, यथा—*'सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबि गृह दीपसिखा जनु बरई॥'* (२३०। ७)

नोट—२ पूर्व २४७। २ में कह चुके हैं कि *'उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥'* जब उपमा कहीं है नहीं तो उत्प्रेक्षा करते हैं कि यदि 'छवि' जो वस्तु है वही मूर्तिमान् होकर सुन्दर स्त्री बने और वह भी एक नहीं बहुत-से रूप धारण करे और उनके बीचमें परमा शोभा और वह भी कमनीय स्त्रीका रूप धरकर विराजे तो जैसी शोभा होगी वैसी शोभा हो रही है। २३०। ७ और २६४। १ देखिये।

नोट—३ बैजनाथजी लिखते हैं कि द्युति, लावण्य, स्वरूप, सुन्दरता, रमणीकता, कान्ति, माधुरी और सुकुमारता आदि जो छबिके अङ्ग हैं, वे ही मूर्तिमान् उत्तम युवतीगण हैं। उनके बीचमें सुषमा अर्थात् सम्पूर्ण अङ्गोंकी शोभा कमनीय स्त्रीका रूप धारणकर विराजमान है। तात्पर्य कि और सब शोभाके अङ्ग हैं और किशोरीजी अङ्गी हैं।

सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥ १॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूपरासि सब भाँति पुनीता॥ २॥
सबहि मनहिं मन किए प्रनामा। देखि राम भए पूरन कामा॥ ३॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥ ४॥
सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगलमूला॥ ५॥

शब्दार्थ—**पूरनकामा** (पूर्णकाम)=जिसको किसी बातकी चाह न रह गयी हो, आप्तकाम, सफलमनोरथ, तृप्त। **जेता**=जितना।

अर्थ—श्रीसीताजीकी सुन्दरता वर्णन नहीं की जा सकती, बुद्धि तो बहुत ही तुच्छ (क्षुद्र) है और सुन्दरता बहुत है॥ १॥ रूपराशि और सब प्रकारसे पवित्र श्रीसीताजीको बरातियोंने आते हुए देखा॥ २॥ सभीने मन-ही-मन (उनको) प्रणाम किया और श्रीरामचन्द्रजी (वा, रामचन्द्रजीको) देखकर पूर्णकाम हो गये॥ ३॥ पुत्रोंसहित श्रीदशरथजी हर्षित हुए, उनके हृदयमें जितना आनन्द है वह कहा नहीं जाता॥ ४॥ देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मंगलकी मूल मुनियोंके आशीर्वादोंकी ध्वनि हो रही है॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) *'सिय सुंदरता बरनि न जाई'* इति। भाव कि जब सखियोंकी शोभा समय जानकर वर्णन की तो श्रीसीताजीकी शोभाका वर्णन भी अवश्य ही करना चाहिये था, यही उसका उचित समय है, इसीसे कहते हैं कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। (ख) *'लघु मति बहुत मनोहरताई'*— यहाँ बहुत देहलीदीपक है। मनोहरता बहुत है, मति बहुत लघु है। अर्थात् जितनी ही अधिक सुन्दरता है उतनी ही अधिक बुद्धिकी लघुता है, तब कैसे वर्णन करते बने? [जैसे श्रीरामजी *'चिदानंदमय'* वैसे ही श्रीसीताजी 'अप्राकृत, चिदानन्दमय' हैं। किसीकी भी मति क्यों न हो, वह होगी तो प्राकृतजन्य ही, तब वह प्रकृतिपार वस्तुका वर्णन कैसे कर सकेगी? दोहा २४७ में अभूतोपमा देकर कुछ वर्णन किया तथापि उसमें भी कविको संकोच ही लगा, यथा—*'येहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुखमूल। तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥'* (२४७); फिर यहाँ उत्प्रेक्षाद्वारा वर्णनका प्रयत्न किया। अब तो कविकी मति कुण्ठित हो गयी। हुआ ही चाहे। जिनके विवाहमण्डपका वर्णन करनेमें *'सकुचहिं सारद सेष'* उन सीताजीकी सुन्दरताका

वर्णन कैसे हो सकता है। (प० प० प्र०)] (ग) *'रूपरासि·····'* इति। राशिके चारों ओर रेखा खींच दी जाती है। यहाँ सखियाँ चारों ओर हैं, यही चारों ओर छबिकी रेखा है। सखियाँ छबिरूपा हैं। उनके मध्यमें महाछबिकी राशि है। *'पुनीता'* क्योंकि हलकी रेखासे उत्पन्न हुई हैं, रजवीर्यसे नहीं, दूसरे शरीरमें कोई कुलक्षण नहीं है; आचरण भी पवित्र है, देवाराधन आदि करती हैं। *'सब भाँति'* अर्थात् रूप, शील, व्रत, नियम सब पुनीत हैं, यथा—*'हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥'* (३। ३०), *'सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला', 'तैसइ सील रूप सुबिनीता।'* (३। २४) पुनः, मन-कर्म-वचनसे पुनीत हैं, यथा—*'जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥'* (६। १०८), *'तन मन बचन मोर पनु साँचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥'* (२५९। ४), इत्यादि *'सब भाँति'* पुनीता हैं श्रीजानकीजीको *'सब भाँति पुनीता'* कहा, क्योंकि उन्हें आगे 'तुरीयावस्था' कहना है। 'तुरीयावस्था' सब प्रकारसे पुनीत है।

टिप्पणी—२ *'सबहि मनहि मन किए प्रनामा।'* इति। (क) सबने मन-ही-मन प्रणाम किया, अर्थात् न तो मस्तक नवाया और न वचनसे प्रणाम कहा; क्योंकि लोकमें कन्याको प्रणाम करनेकी चाल (रीति) नहीं है। इसीसे सबने ऐश्वर्यभावसे प्रणाम किया, माधुर्यभावसे नहीं। माधुर्यभावमें प्रणाम विरुद्ध है। ज्ञानी लोगोंने इस भावसे प्रणाम किया कि जैसे श्रीरामजी ब्रह्मके अवतार हैं, वैसे ही श्रीसीताजी उनके परमशक्तिका अवतार हैं। अन्य लोगोंने इस भावसे प्रणाम किया कि श्रीरामजी हमारे स्वामी हैं और श्रीसीताजी हमारी स्वामिनी हैं, [अथवा, जैसे लोहेको चुम्बक खींच लेता है, उसी प्रकार 'रूपराशि' छबिने सबकी दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर ली। सबके मनमें पूज्य भावना सहसा उठ पड़ी, अतः सबने एक साथ मन-ही-मन प्रणाम किया। (वै०) जैसे श्रीजनकमहाराज और उनके साथके वामदेवादि मन्त्री और सब समाज श्रीराम-लक्ष्मणजीको देखकर उठकर खड़े हो गये थे, यथा—*'उठे सकल जब रघुपति आए'* वैसे ही श्रीसीताजीका तेज-प्रताप-प्रभाव दिखाया। उनको देखते ही प्रणाम करनेकी अनावर स्फूर्ति प्राणोंमें उत्पन्न हो गयी। (प० प० प्र०)। १२५ (६) देखिये](ख)*'देखि राम भये पूरनकामा'* इति। श्रीरामजीको देखकर पूर्णकाम होनेका भाव कि अवधवासियोंके मनमें यह कामना बराबर रही है कि जैसे श्रीरामजी अत्यन्त सुन्दर हैं, वैसी ही उनके योग्य स्त्री भी मिले, वह कामना पूर्ण हो गयी। *'देखि राम'* कहनेका भाव कि पहले जानकीजीको देखकर फिर श्रीरामजीको देखा, इस प्रकार देखा कि एक-दूसरेके योग्य हैं। अथवा, श्रीजानकीजीको देखकर श्रीरामजीको देखनेका भाव कि श्रीजानकीजीकी परमा शोभा देखकर विचारने लगे कि श्रीरामजी इनके योग्य हैं कि नहीं, ये इतनी सुन्दर हैं कि इनके सदृश होना कठिन है (अतः समतामें बीच तो नहीं है? ऐसा सोचकर श्रीरामजीको देखा तब निश्चित किया कि उनके योग्य हैं। तब पूर्णकाम हुए)। (ग) दूसरा अर्थ यह भी होता है कि श्रीरामजी देखकर पूर्णकाम हुए। [इस अर्थमें भाव यह है कि जिस लिये अवतार हुआ है उस कार्यके लिये जिस वस्तुकी आवश्यकता थी वह ही अब आ मिली। (पं० रामव० श०) नहीं तो श्रीरामजी तो सदा पूर्णकाम ही हैं। बैजनाथजीने यही अर्थ किया है। श्रीकिशोरीजीकी प्राप्तिसे श्रीरामजी पूर्णकाम हुए। यह बारातसहित प्रभुका परास्त होना है। (वै०)]

टिप्पणी—३ *'हरषे दसरथ सुतन्ह समेता'* इति। (क) जिसका जितना सगा (निकटका) नाता है, उतना ही अधिक उसका सुख है। श्रीरामजी दशरथजीके पुत्र हैं और श्रीभरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्नजीके बड़े भाई हैं, इसीसे पिता और भाइयोंको सबसे अधिक आनन्द हुआ। जब सबोंने प्रणाम किया तब इन भाइयोंको भी प्रणाम करना चाहिये था, पर उन्होंने प्रणाम न किया क्योंकि वे आनन्दमें डूब गये थे, प्रणाम करना भूल गये। [श्रीदशरथजी तथा भरतादि भ्राता सत्त्वभावापन्न हो गये। (प० प० प्र०)]

टिप्पणी—४ *'सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला'* इति। (क) देवता स्वर्ग (आकाश) में हैं, इसीसे उन्होंने प्रकट प्रणाम किया, उनको माधुर्यमें (प्रणामके) विरुद्ध होनेका डर नहीं है। [वे जानते हैं कि ये ब्रह्मकी आदिशक्ति हैं, जगज्जननी हैं। उनका प्रणाम ऐश्वर्यभावसे है। दूसरे, वे विमानोंमें हैं, नीचेवाले लोग उन्हें देख नहीं सकते। तीसरे, बराती-जनाती सब युगलमाधुरी दर्शनमें मग्न हैं, ऊपर देखेगा कौन?] (ख) देवता

तो विप्रवेषसे मण्डपतले बैठे हैं, फूल कैसे बरसाये? इसका समाधान यह है कि देवताओंमें यह शक्ति है कि एक रूपसे वे एक जगह बैठे रहे और दूसरे रूपसे दूसरी जगह भी उसी समय दूसरा कार्य करते रहे। अथवा मण्डपतले विप्रवेषमें तो इने-गिने वे ही देवता हैं जो श्रीरघुवीरका प्रभाव जानते हैं, शेष सब आकाशमें विमानोंपर हैं; ये ही फूल बरसाते हैं। (ग) पुष्पवृष्टि मङ्गल है, यथा—*'बरषहिं सुमन सुमंगलदाता।'* और मुनियोंका आशिष मङ्गलका मूल है। इसीसे सुमनकी वृष्टि और मुनियोंके आशिष एक-दूसरेके समीप लिखे। जब देवताओंने प्रणाम किया और फूल बरसाये तब मुनियोंने भी प्रणाम करके आशीर्वाद दिये, (दोनोंको एक पंक्तिमें देनेसे ऐसा पाया जाता है)। आशिष भी पुष्पोंकी वृष्टिके समान है। (देवताओंने सीताजीको प्रणाम किया। श्रीरामजीको प्रणाम नहीं किया, केवल जयजयकार किया है? श्रीरामजीने देवताओंको मानसिक आसन दिया, पूजा की। श्रीसीताजीने यह नहीं किया। देवियाँ सखीभावसे सीताजीके साथ हैं। षोडश वर्षकी अवस्थामें हैं और सीताजीका शृङ्गार करने तथा मण्डपमें ले जानेमें सम्मिलित हैं। उसपर भी ब्रह्मादि विप्रवेषमें हैं और शची आदि क्षत्राणियोंके वेषमें हैं। अतः श्रीरामजीका विप्रोंको पूजना योग्य ही था। और क्षत्राणी तथा सखी होनेसे इनका पूजन योग्य न था इत्यादि।]

गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥ ६॥
येहि बिधि सीय मंडपहि आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥ ७॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू॥ ८॥

अर्थ—गान और नगाड़े (के शब्द) का भारी शोर मचा है। (सब) स्त्री-पुरुष प्रेम और आनन्दमें मग्न हैं॥ ६॥ इस विधानसे श्रीसीताजी मण्डपमें आयीं। मुनिराज बहुत ही आनन्दित होकर शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं॥ ७॥ उस समयका जो विधि, व्यवहार था वह सब आचार दोनों कुलगुरुओं (श्रीवसिष्ठजी और श्रीशतानन्दजी) ने किये॥ ८॥

टिप्पणी—१ *'गान निसान......'* इति। (क) देवता जब फूल बरसाते हैं, तब नगाड़े भी बजाते हैं, पर यहाँ *'सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला'* के साथ-साथ नगाड़ोंका बजाना नहीं कहा गया। नगाड़ोंका बजाना उसके पीछे अब कहनेसे पाया जाता है कि उधर आकाशमें देवताओंने जब निशान बजाये उसी समय यहाँ पुरवासियोंने भी बजाये, इसीसे यहीं एक साथ कह दिया। दोनोंने साथ-साथ बजाये इसीसे 'भारी कोलाहल' हुआ। *'कोलाहलु भारी'* अर्थात् ऐसा शोर है कि अपना-पराया कुछ सुनायी नहीं देता। यथा—*'नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनै न कोई॥'* (३१९। ७) (ख) *'प्रेम प्रमोद मगन नर नारी'* इति। बारातियोंका आनन्द कहा, पुत्रोंसहित श्रीदशरथमहाराजका आनन्द कहा, अब नगरवासियोंका आनन्द कहते हैं। *'प्रमोद'* का भाव कि श्रीरामजीके आगमनपर 'मोद' हुआ और श्रीजानकीजीके आगमनसे विशेष आनन्द हुआ, इसीसे *'प्रमोद'* कहा।

टिप्पणी—२ *'येहि बिधि सीय मंडपहि आई।...'* इति। (क) *'सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मंडपहि चलीं लवाई॥'* (३२२। ८) उपक्रम है और *'येहि बिधि सीय मंडपहि आई'* उपसंहार है। इतनेमें जो कुछ कहा (अर्थात् सीताजीका शृङ्गार करके वनितावृन्द साथमें गाती हुई उन्हें लिये आ रही हैं, पुष्पोंकी वृष्टि हो रही है, मुनि आशीर्वाद दे रहे हैं, गान निशानके शब्दका कोलाहल मचा है, सब आनन्द पा रहे हैं) *'येहि बिधि'* यही सब विधि है। पुनः, प्रथम श्रीरामजीका आगमन कहा (फिर समधी और बारातका) तब श्रीसीताजीका मण्डपमें आगमन कहा, यही वेदविधि है; इति *'येहि बिधि'*। (ख) *'प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई'* इति। *'प्रमुदित'* का भाव कि श्रीरामागमनपर *'मुदित'* हुए, [क्योंकि अब विवाहका कार्य ठीक मुहूर्तमें प्रारम्भ हो गया, अभीतक वे खाली बैठे श्रीसीताजीके आगमनकी राह देखते थे कि कब आवें और कार्यारम्भ हो। अथवा, *'प्रमुदित'* होनेका कारण यह है कि ऋग्वेदका शान्तिपाठ पढ़नेमें अन्य अवसरोंपर पढ़ते समय वह बात प्रत्यक्ष नहीं होती थी जो इस समय मन्त्रके अनुसार साक्षात् हुई। (पं० रामब० श०)] पूर्व जिनका

आशिष देना कहा वे 'मुनि' थे, यथा—'*मुनि असीस धुनि मंगल मूला*' और जो शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं वे '*मुनिराई*' हैं, श्रीवसिष्ठ-वामदेव-शतानन्द आदि सब मण्डपतले चौकपर विवाह करानेके लिये बैठे हैं, इसीसे वे ही शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं, क्योंकि यह समय 'शान्तिपाठ' का है। ये ही मुनिराज हैं। (ग) ☞जिस विधानके साथ श्रीरामजीका आगमन मण्डपमें हुआ, उसी विधानसे श्रीसीताजीका आगमन हुआ।

श्रीसिय-राम-मण्डपागमनका मिलान

श्रीसिय-मण्डपागमन	श्रीराम-मण्डपागमन
मुदित मंडपहि चलीं लवाई	१—*राम गमनु मंडप तब कीन्हा।*' (३१९। ४)
सजि सुमंगल भामिनी	२—*सकल सुमंगल अंग बनाए।*' (३१८। ३)
नव सप्त साजे सुंदरी	३—'*सकल बिभूषन सजे*' और '*पहिरे बरन बरन बर चीरा।*' (३१८। २)
मत्त कुंजर गामिनी	४—*चालि बिलोकि काम गज लाजहिं।*' (३१८। ४)
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं *कामकोकिल लाजहीं*	५—*करहिं गान कलकंठि लजाए।*' (३१८। ३)
मंजीर नूपुर ललित कंकन *ताल गति बर बाजहीं*	६—*कंकन किंकिनि नूपुर बाजहिं।*' (३१८। ४)
सोहति बनिता बृंद महुँ *सहज सुहावनि सीय*	७—*बंधु मनोहर सोहहिं संगा।*' (३१६। ५)
सिय सुंदरता बरनि न जाई	८—*सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाइ मनही मन भाई॥*' (३१६। ४)
सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला	९—*बरषहिं सुमन सुर हरषि कहि जय जयति जय रघुकुलमनी।*' (३१७)
मुनि असीस धुनि मंगल मूला	१०—*मुदित असीसहिं नाइ सिर।*' (३१९)
गान निसान कोलाहल भारी	११—*नभ अरु नगर कोलाहल होई।*' (३१९। ७)
प्रेम प्रमोद नगर नर नारी।	१२—*नृप समाज दुहुँ हरष बिसेषी।*' (३१७। ८)
एहि बिधि सीय मंडपहिं आई	१३—*एहि बिधि रामु मंडपहिं आए।*' (३१९। ८)
प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई	१४—*सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला।*' (३१९। ६)

यह मिलान और भी बढ़ाया जा सकता है। पाठक स्वयं कर सकते हैं!

टिप्पणी—३ '*तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू।*.....' इति। (क) '*बिधि*' अर्थात् वेदविधि। '*ब्यवहारू*' अर्थात् लोकरीति, यथा—'*करि कुलरीति बेद बिधि राऊ।*' (३०२। ३) [*बिधि* =कार्यक्रम, कर्त्तव्यनिर्देश, कार्य करनेकी रीति। *ब्यवहारू* =कार्य, कुलरीति। *आचार* =रीतिरस्म। बैजनाथजीके मतानुसार 'विधिपूर्वक जो कर्तव्य अर्थात् श्रीजनकजीको आचमन कराके कुशमुद्रिका देकर आसनपर बैठना इत्यादि हैं, यह विधिव्यवहार है, यह सब आचार अर्थात् वेदरीति कुलगुरुने करायी। वीरकवि और बाबू श्यामसुन्दरदासजी 'व्यवहारकी विधि और कुलाचार' ऐसा अर्थ करते हैं। श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी 'उस अवसरकी सब रीति व्यवहार और कुलाचार' ऐसा अर्थ करते हैं।] (ख) '*दुहुँ कुलगुरु सब कीन्ह अचारू*' इस कथनसे पाया गया कि वह रीति ब्राह्मणोंद्वारा ही होती थी। व्यवहार और आचार पर्याय हैं। ['**आचार**' शब्दमें लोकाचार और वेदविहित दोनोंका समावेश है। वाल्मी० १। ७३। १९—२४ में लिखा है कि जनकजीके यह कहनेपर कि आप श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी क्रिया सम्पन्न कराइये, श्रीवसिष्ठजीने श्रीविश्वामित्र और शतानन्दजीको साथ लेकर यज्ञमण्डपके मध्यमें विधिपूर्वक विवाहकी वेदी बनायी और उसे गन्ध, पुष्प, सुवर्णपालिका चित्रित घड़े तथा यवके पीले अङ्कुरोंसे सजाया। अङ्कुर जमाये हुए सकोरे, धूपपात्र, शङ्ख, स्रुवा, स्रुक्, अर्घ्य आदिके उत्तम पात्र, लावासे भरे हुए उत्तम पात्र और उत्तम अक्षत आदिसे वेदीको अलङ्कृत किया। हरिद्रा आदिसे शोभित समान कुश विधिपूर्वक मन्त्रोंसे वेदीपर बिछाये। मन्त्र और विधानसे युक्त अग्निकी उन्होंने वेदीपर स्थापना की और महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी उस अग्निमें हवन करने लगे। तदनन्तर

श्रीसीताजी वहाँ लायी गयीं—यह सब *'तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू'* में आ सकता है क्योंकि यह दोनों कुलगुरुओंद्वारा इसी अवसरपर किया गया है। यथा और भी जो वैदिक-लौकिक आचार होते हों तथा अन्य ऋषियोंने लिखे हों, वे भी इन शब्दोंमें आ गये।]

छं०—आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥
मधुपर्क मंगल द्रब्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिये हि परिचारक रहैं॥
कुलरीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर किये।
येहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दिये॥
सियराम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसे करै॥

दो०—होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्रबेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥ ३२३॥

अर्थ—गुरुने आचार कराया। ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक गौरी-गणेशका पूजन करा रहे हैं। देवता प्रकट होकर पूजा लेते, आशिष देते और अत्यन्त सुख पा रहे हैं। मधुपर्क आदि जिस मङ्गल द्रव्यकी जिस समय मुनि मनमें चाह करते हैं उसे उसी समय सेवक लोग सोनेके परातों और कलशोंमें भरे हुए (खड़े, मिलते वा) रहते हैं अर्थात् देते हैं। सूर्यभगवान् प्रेमपूर्वक सब कुल-रीतियाँ बता देते हैं और वे सब सादर (प्रेमसहित) किये गये। इस प्रकार देवताओंकी पूजा करके सीताजीको सुन्दर सिंहासन दिया। श्रीसीतारामजी जिस प्रेमसे आपसमें एक-दूसरेको देख रहे हैं वह किसीको नहीं लख पड़ता, वह मन, बुद्धि, श्रेष्ठ वाणी आदि इन्द्रियोंसे परे है (अर्थात् इनकी दृष्टिमें नहीं आ सकता), तब कवि उसे क्योंकर प्रकट करे? होमके समय अग्नि तन धरकर अर्थात् मूर्तिमान् होकर बड़े ही सुखसे आहुतियाँ लेते हैं। सब वेद विप्रवेष धरकर विवाह-पद्धति बता देते हैं॥ ३२३॥

नोट—१ *'आचारु करि गुर'''* इति। यहाँ *'करि'* शब्दसे अर्थमें अड़चन पड़ती है। क्योंकि यह अपूर्ण क्रिया है। इधर गुरुको कहकर फिर *'बिप्र पुजावहीं'* लिखते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि *'तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू'* यह सब गुरुने किया। गौरी-गणेशपूजन उसके बाहर है, वह अन्य ब्राह्मणोंद्वारा कराया गया। इस तरह *'करि'* को पूर्ण क्रिया समान मानकर अर्थ करना होगा। ऐसे प्रयोग और भी आये हैं। जैसे *'बहुरि बंदि खलगन सतिभाए'* में *बंदि*=बंदउँ। अथवा यों अर्थ करें कि आचार करके गुरु प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंद्वारा गौरी-गणेशका पूजन करवाने लगे। अथवा गुरु और बिप्र एक ही हैं।

टिप्पणी—१ (क) गौरी-गणेशका पूजन वर और कन्या दोनोंसे कराया जाता है, यथा—*'मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजे संभु भवानि।'* (१००), *'लै लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिं। कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिं॥'* (जा० मं० ८९) *'मुदित'* इससे कि मन्त्र पढ़ते ही देवता प्रकट हो जाते हैं, उनका दर्शन पाकर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं।' (ख) *'सुर प्रगटि'''''* इति। देवता पहले कपटसे विप्रवेष बनाकर आये जिसमें श्रीरामजीका ऐश्वर्य न खुले तो अब कैसे हुए? इसका उत्तर यह है कि इस समय प्रकट होनेसे ऐश्वर्य खुलनेका भय वा संदेह नहीं होगा, क्योंकि मन्त्रके प्रभावसे देवता प्रकट होते हैं, यह सब जानते हैं। [यहाँ वसिष्ठ-वामदेव-विश्वामित्रादि ऐसे-ऐसे ऋषि सब कार्य करा रहे हैं, देवताओंके प्रकट होनेसे लोग उन्हींकी बड़ाई करेंगे कि यह इनके ही मन्त्रोच्चारणका प्रभाव है। इसी प्रकार शृङ्गीऋषिद्वारा

जब पुत्रेष्टियज्ञ हुआ था तब अग्निका प्रकट होना कहा था, यथा—*'भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥'* (१८९। ६) अतः किसीको संदेह न हो सकता था। श्रीसीतारामजीके कर-कमलोंसे पूजा लेनेको अपना बड़ा सौभाग्य मानते हैं, अतः प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते तथा आशीर्वाद देते हैं।] (ग) *'अति सुखु पावहीं'*— भाव कि जब देवता पूजा लेनेके लिये प्रकट हुए तब दर्शन पानेसे सुख हुआ और आशिष देने लगते हैं तब *'अति सुख'* होता है (वा, पूर्व छिपे देखते थे तब सुख था, अब निस्संकोच और समीपसे दर्शन होनेसे *'अति सुख'* होता है।) [*'मधुपर्क'*—**'आज्यमेकं पलं ग्राह्यं दधि त्रिपलमेव च। मधु पलमेकं तु मधुपर्कः स उच्यते॥'** अर्थात् तीन भाग दही, एक भाग शहद और एक भाग घी एकमें मिलानेसे जो द्रव्य बनता है उसे मधुपर्क कहते हैं। देवताओंपर चढ़ानेसे वे बहुत प्रसन्न होते हैं। इसका दान करनेसे सुख और सौभाग्यकी वृद्धि कही जाती है। तान्त्रिक पूजनमें इसका उपयोग बहुत होता है। दही, घी, शहद, जल और चीनी पाँचोंके समूहको भी मधुपर्क कहते हैं।—(श० सा०) विवाह-समय कन्याका पिता वरके ओष्ठमें इसे स्पर्श कराता है। *'मधुपर्क'* को प्रथम कहकर जनाया कि 'आचार' में प्रथम इसीका काम पड़ा। *'आचारु करि'* जो कहा गया, उसमें मधुपर्क भी आ गया। यथा—*'अरघ देइ मनि आसन बर बैठार्यो। पूजि कीन्ह मधुपर्क अमी अचवाएउ॥'* (पा० मं० ७५) *'मंगल द्रब्य'* अर्थात् ओषधि, चन्दन, कुश, तीर्थजल इत्यादि। इस समय ये मङ्गल द्रव्य जलमें भी छोड़े जाते हैं। (ङ) *'मुनि मन महुँ चहैं'* अर्थात् उनको मुखसे कहना नहीं पड़ता, मनमें चाह आयी कि सेवक तुरत दे देते हैं। तात्पर्य कि सेवकोंका सब जाना हुआ है कि किस समयमें कौन मङ्गल द्रव्यका काम पड़ता है। *'रहैं'* और *'चहैं'* बहुवचन हैं, इससे सूचित किया कि बहुत-से मुनि इस यज्ञमें हैं, वैसे ही परिचारक भी बहुत हैं, कोई वसिष्ठजीके पास हैं, कोई शतानन्दजीके पास हैं इत्यादि। कोई मङ्गल द्रव्य भरे हुए कोपर लिये हैं, कोई जल भरे हुए कलश लिये हैं।

टिप्पणी—२ (क) *'कुलरीति प्रीति समेत रबि कहि देत'* इति। (क) रघुवंशी सब सूर्यकुलके हैं (विवस्वान् इस कुलके आदि पुरुष हैं। इसीसे इसे भानुवंश, सूर्यवंश कहा जाता है। यथा—*'भानु बंस राकेस कलंकू॥'* (२७३। २), *'उदय करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥'* (२। ३७) (यहाँ *रघुकुल गुर*=रघुकुलके पुरुषा) कुलवृद्ध ही कुलकी रीति बताते हैं, यथा—*'बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥'* (२८६) *'बिप्रबधू कुलबृद्ध बोलाईं। करि कुलरीति सुमंगल गाईं॥'* (३२२। ४) आदि पुरुषा होनेसे इनसे वृद्ध कोई नहीं है। अपने कुलमें ब्रह्माने अवतार लिया, अतः ये स्वयं सब रीति प्रेमपूर्वक बताते जाते हैं। (ख) *'प्रीति समेत'* इति। सूर्यकी कुलदेवताओंमें प्रीति है, इसीसे कुलरीति प्रीतिसमेत कह देते हैं। सूर्य सब कुलरीति जानते हैं, इसीसे कुलदेवमें इनका विश्वास है और विश्वाससे प्रीति होती है, यथा—*'जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥'* (ग) *'सब सादर किये'* भाव यह कि सूर्यने भक्तिपूर्वक बताया, इसीसे श्रीसीतारामजीने आदर अर्थात् भक्तिपूर्वक पूजन किया। (घ) *'येहि भाँति देव पुजाइ'* अर्थात् जैसा-जैसा सूर्य बताते गये वैसे-ही-वैसे वे देवताओंका पूजन करते गये। प्रथम गौरी-गणेशका पूजन, फिर कुलदेवका पूजन कराया। (प० प० प्र० का मत है कि यह सब पूजन श्रीसीतारामजीसे ही कराया गया। *'गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं'* उपक्रम है और *'येहि भाँति देव पुजाइ'* उपसंहार है। यह पूजा वेदीपर हुई, तत्पश्चात् वे सिंहासनपर बिठायी गयीं।' पं० रामकुमारजीने जो लिखा है वह इस समय भी इस प्रान्तमें प्रचलित रीति है। शङ्कर-पूजन इस समय नहीं होता। (ङ) *'सुभग सिंघासनु दिये'* अर्थात् जैसा दिव्य सिंहासन श्रीवसिष्ठजी आदि महर्षियों और विप्रवेषधारी देवताओं आदिको दिया वैसा ही दिव्य सिंहासन इनको बैठनेको दिया।

टिप्पणी—३ *'सियराम अवलोकनि परसपर…'* इति। (क) श्रीरामजानकीजी तो अत्यन्त संकोची हैं, यथा—*'मातु समीप कहत सकुचाहीं॥'* (२। ६१) *'गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि॥'* (१। २४८) (परन्तु उस समयतक धनुर्भङ्ग हुआ नहीं था, यह निश्चय न था कि कौन तोड़ेगा। अतः उस समय *'गुरजन लाज…'*

समुचित ही था। धनुर्भङ्गके बाद *'तन सकोचु मन परम उछाहू॥'* कहा है। फिर भी *'जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअरि चित्र अवरेखी॥'* पर उस समय चारों ओर सखियाँ भी थीं और परस्पर अवलोकन न था।) कहाँ तो वह संकोचसमुद्र और कहाँ यह कि पिता, कुलगुरु, मुनि-विप्र आदिकी भारी सभामें सबके सामने नजर लड़ावें? इसका कारण है। विवाहपद्धतिमें ऐसा उल्लेख है, आदेश है कि वर और कन्या सम्मुख होकर परस्पर अवलोकन करें, वर दुलहिनको नखसे शिखतक और दुलहिन वरको देखे। यह *'समंजन'* कहलाता है। (वही रीति यहाँ करायी गयी। श्रीसीताजीको शतानन्दजीने और श्रीरामजीको श्रीवसिष्ठजीने अवलोकन करनेकी आज्ञा दी।) (ख) *'प्रेमु काहु न लखि परै""'* इति। वह प्रेम किसीको लख नहीं पड़ता, क्योंकि वह मन, बुद्धि और वर वाणीको भी अगोचर है। अर्थात् मन, बुद्धि और वाणीकी पहुँच वहाँ नहीं है। यहाँ मुनियोंके मन और बुद्धिके अगोचर और *'बर बानी'* से वेदका अगोचर कहा, यथा—*'बेद बचन मुनि मन अगम""॥'* (२। १३६) *बर बानी*=वेद। *'तत्व प्रेमकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥'* यह श्रीरामजीका संदेश हनुमान्‌जीने कहा है; वे ही जानते हैं दूसरा नहीं, तब कोई कैसे लख सके? [श्रीजानकीमङ्गलमें धनुषयज्ञके समय परस्पर अवलोकनका वर्णन इस प्रकार है—*'राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक। दोउ तन तकि तकि मयनु सुधारत सायक॥ प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं। जनु हिरदय गुनग्राम थूनि थिर रोपहिं॥'* (८४-८५) पं० रामवल्लभाशरणजी कहते हैं कि जो परस्पर अवलोकन हो रहा था और जो आपसका प्रेम था उसको कोई जान-समझ नहीं सकता था; अर्थात् किसीको यह पता न चला कि आपसमें नजाराबाजी और प्रेम हो रहा है। बैजनाथजी लिखते हैं कि 'दोनों स्नेहवश परस्पर एकटक निहार रहे हैं। ☞इस आलम्बनविभावमें जो प्रेमकी संक्रान्त दशा है, यथा—*'तृतिय भेद संक्रान्त जो तन मन मिलन समाय। द्विरागमन इव लोकमें दंपति प्रथम मिलाय॥'* यह प्रेम किसीको देख नहीं पड़ता। क्योंकि मन, बुद्धि और श्रेष्ठ परावाणीके अगोचर है।'] (ग) *'प्रगट कबि कैसे करै'*— भाव कि कविको मन, बुद्धि और वाणीहीका बल है, जब ये ही वहाँ नहीं पहुँच पाते, तब कवि किस बलसे कहे?

टिप्पणी—४ *'होम समय तनु धरि अनलु""'* इति। (क) *'होम समय'* अर्थात् जब होमका समय आया तब। *'आहुति लेहिं'* से जनाया कि अगणित तन धरकर आहुतियाँ ले-लेकर भोजन करते हैं। [होममें अग्निकी ज्वालाका उठ-उठकर आहुति लेना शकुन है, इससे अग्निदेवकी प्रसन्नता प्रकट होती है। और यहाँ तो अग्निदेव मारे आनन्दके साक्षात् मूर्तिमान्‌रूपसे प्रकट होते हैं। (पं० रामब० श०)] (ख) *'अति सुख'* का भाव कि आहुति लेनेसे सुख होता है और श्रीरामजीके हाथकी आहुति पानेसे *'अति सुख'* होता है। (ग) *'बिप्रबेष धरि बेद सब""'* इति। जब जैसा काम पड़ता है तब तैसा वेष वेद धारण कर लेते हैं। राज्याभिषेकके समय श्रीरामजीकी स्तुति करनी थी, इससे वहाँ बंदी (भाट) का वेष धरकर आये, यथा—*'बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्रीराम॥'* (७। १२) विवाहकी विधि ब्राह्मणोंके मुखसे कथन होनेसे सफल है, यथा—**'ब्राह्मणवचनात् सर्वं परिपूर्णमस्तु॥'** अतः विवाह-विधि बतानेके लिये *'बिप्र बेष'* से आये। (घ) इसपर शंका होती है कि 'जहाँ वसिष्ठ, शतानन्दादि वेदविधिके उत्तम ज्ञाता तथा वेदोंके ऋषि ही उपस्थित हैं वहाँ वेदोंके विप्रवेष धारण करके विधि बतानेकी क्या आवश्यकता?' इसका समाधान यह है कि इस समय सभी देवता श्रीसीतारामजीकी प्रसन्नताके लिये अपनी-अपनी सेवा करते हैं। गौरी-गणेश प्रकट होकर आहुति लेते हैं, सूर्य प्रकट होकर कुलरीति कहते हैं, अग्नि प्रकट होकर आहुति लेते हैं, देवता नगाड़े बजाते और पुष्पोंकी वृष्टि कर-करके जय-जयकार कर रहे हैं—यह सब सेवा है। यथा—*'अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहु बिधि लावहिं निज निज सेवा॥'* (१९१। ८), *'बरिसहिं सुमन जनावहिं सेवा।'*, *'मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥'* (४। १३। ४), *'रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥ कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥'* (२। १३३) जब जिस प्रकारकी सेवा करनी होती है तब उसीके अनुकूल वेष धारण करके देवताओंने सेवा की है। वैसे ही इस समय विप्ररूप धरकर समस्त वेद अपनी सेवा जनाते हैं। इस समय

यही उनकी सेवा है। [ब्रह्मलोकाधिपति ही स्वयं विप्ररूपमें आये हैं, अतः ब्रह्मलोकनिवासी वेदोंको भी इच्छा हो गयी—*'देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होइ न केही॥'* (प० प० प्र०)]

जनक पाट महिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी॥ १॥
सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई॥ २॥
समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई॥ ३॥

शब्दार्थ—**पाट**=सिंहासन, गद्दी, पट्टा। **पाटमहिषी**=वह रानी जो राजाके साथ सिंहासनपर बैठ सकती हो, जिसके नाम पट्टा होता है वही सब कामोंमें राजाके साथ रहेगी, दूसरी नहीं=प्रधान रानी। **सुआसिनि**=सुवासिन, '·पासकी बैठनेवाली, सखियाँ।=उसी नगरकी कन्या जिसका विवाह हो चुका हो=सौभाग्यवती, सधवा।

अर्थ—जनक महाराजकी जगत्-विख्यात पटरानी, श्रीसीताजीकी माँ क्योंकर बखानी जायँ॥ १॥ विधाताने सब सुयश, पुण्य, सुख और सुन्दरता समेटकर इन्हें बनाकर (अच्छी तरह सँभालकर) रचा है॥ २॥ समय जानकर मुनिवरोंने उन्हें बुलवाया। सुनते ही सुवासिनें उन्हें सादर ले आयीं॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'जनक पाट महिषी······'* इति। (क) *'पाट महिषी'* कहकर जनाया कि राजा जनककी और भी बहुत-सी रानियाँ हैं, यथा—*'सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥'* (२। २८१) *'रनिवासू'* कहनेसे पाया गया कि सब रानियाँ आयीं। और यहाँ केवल पटरानीका काम है, श्रीसुनयनाजी पटरानी हैं। (ख) *'जग जानी'* का भाव कि श्रीसुनयनाजी जगत्‌में प्रसिद्ध हैं, अन्य रानियाँ प्रसिद्ध नहीं हैं। [वे विवेकनिधि राजा जनककी वल्लभा हैं, भक्ति, विवेक और प्रेममें उन्हींके समान हैं, यथा—*'को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि।'* (२। २८३) अतः जग जानता है] (ग) *'पाट महिषी'* और *'सीयमातु'* कहकर सूचित किया कि श्रीजनकजीके साथ कन्यादान करनेका अधिकार इन्हींको है। (घ) *'सीय मातु किमि जाइ बखानी'* का भाव कि श्रीसीताजी जगज्जननी हैं, ब्रह्माण्डभरकी माता हैं, श्रीसुनयनाजीको उनकी माता होनेका सौभाग्य प्राप्त है, इससे वे महिमाकी अवधि हैं, अतः उनका बखान कैसे किया जा सकता है? यथा—*'जिन्हहि बिरचि बड़ भयेउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥'* (१। १६। ८)

टिप्पणी—२ *'सुजसु सुकृत सुख सुंदरताई···············'* इति। (क) *'सुकृत'* कारण है। सुयश, सुख और सुन्दरता उसके कार्य हैं। सुकृतसे ही ये तीनों होते हैं, यथा—*'पावन जस कि पुन्य बिनु होई।'* (७। ११२) *'सुख चाहहिं मूढ़ न धर्मरता।'* (७। १०२), *'चारिउ चरन धरम जग माहीं।······सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।'* (७। २१), *'सब दुख बरजित प्रजा सुखारी। धरमसील सुंदर नरनारी॥'* (१। १५५)—(धर्म, सुकृत और पुण्य पर्याय शब्द हैं)। (ख) *'सब समेटि···'* इति। अर्थात् कार्य और कारण दोनोंको समेटकर ब्रह्माने इन्हें रचा। (ग) यहाँतक श्रीसुनयनाजीकी पति-सम्बन्ध, संतान-सम्बन्ध और जन्म-सम्बन्धसे बड़ाई की। *'जनक पाट महिषी जग जानी'* यह पति-सम्बन्ध, *'सीय मातु किमि जाइ बखानी'* यह संतान-सम्बन्ध और *'सुजस सुकृत सुख सुंदरताई। सब समेटि बिधि रची बनाई॥'* यह जन्म-सम्बन्धसे बड़ाई है। ऐसे ही *'जय जय गिरिबरराजकिसोरी। जय महेस मुखचंद चकोरी॥ जय गजबदन षडानन माता।'* (१। २३५) में इन्हीं तीनों सम्बन्धोंसे स्तुति की गयी है। पुनः, (घ) उत्तमता चार प्रकारसे जानी जाती है-जन्म, संग, शरीर और स्वभावसे। यहाँ चारों प्रकारसे श्रीसुनयनाजीकी उत्तमता दिखायी गयी है। *'सब समेटि बिधि रची बनाई'* यह जन्मकी, *'जनक पाट महिषी'* से संगकी, *'सुजस सुकृत सुख सुंदरताई'* यह शरीरकी और *'सीय मातु'* से स्वभावकी उत्तमता कही गयी (यथा—*'रावरी सुभाव रामजन्म ही ते जानियत, भरतु मातु को कि ऐसो चहियतु है।'* (क० २०४) ऐसे ही *'जनम सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंकु।'* (२३७) में इन्हीं चारोंसे चन्द्रमाकी लघुता कही गयी है)। पुनः, (ङ) चारोंको समेटकर बनाया, इससे जनाया कि श्रीसुनयनाजी चारोंकी मूर्ति हैं। सुयशकी मूर्ति

हैं, इसीसे जगत् जानता है। सुकृतकी मूर्ति श्रीसीताजीकी माता हैं, यथा—'*जनक सुकृति मूरति बैदेही।*' (३१०। १) और, सुख-सुन्दरताकी मूर्ति हैं; इसीसे श्रीजनकजीकी पटरानी हैं। श्रीजनकजीकी पटरानी तथा श्रीसीताजीकी माता होनेसे बड़ाईकी अवधि हैं। (च) (श्रीसीताजीकी माता होनेमें) बड़ाई, सुयश, सुकृत, सुख और सुन्दरता—ये पाँच गुण यहाँ कहनेका भाव यह है कि जीवका यह शरीर ब्रह्मने पञ्चतत्त्वसे बनाया, पर श्रीसुनयनाजीका शरीर इन पाँच गुणोंको समेटकर बनाया।

नोट—बैजनाथजी लिखते हैं कि 'अपने बलसे जो परहित करनेपर प्रशंसा होती है उसे '*सुयश*' कहते हैं। श्रीकिशोरीजीको पाल-पोसकर उदार रघुकुलशिरोमणि श्रीरामजीको दान देकर पूर्णकाम किया, यह सुयश दूसरेको प्राप्त नहीं हुआ। सत्कर्मरीतिसे धर्मपथमें परिश्रम करना '*सुकृत*' है। ऐसा सुकृती कौन है कि परमशक्ति श्रीसीताजी जिसकी कन्या और ब्रह्म श्रीराम जिसके जामाता हों। भोजन, वस्त्र, शय्या, पान, सुगन्ध, पति-पुत्रादि उत्तम प्राप्त होना '*सुख*' है, सो इन्हें मिथिला-सा राज्य, विवेकनिधि जनकसे पति, लक्ष्मी-निधि-से पुत्र, सिद्धिकुँवरि-सी पतोहू और श्रीजानकी पुत्री, श्रीरामजी जामाता, दिव्य ऐश्वर्यसे परिपूर्ण ऐसा अद्वितीय सुख है। '*सुंदरता*' तो उनके नामसे प्रसिद्ध है, सर्वाङ्ग सुठौर बने हैं। अतः इनको चारोंकी मूर्ति कहा।'

टिप्पणी—३ '*समउ जानि*⋯' इति। (क) भाव कि स्त्रियाँ प्रथमसे ही नहीं बुलायी जातीं। प्रथम कन्याका पिता अपना सब कृत्य कराता है, कन्यादानके समय माता बुलायी जाती है। वही कन्यादानका समय आनेपर वे बुलायी गयीं। '*मुनिबरन्ह*' से जनाया कि विवाह करानेके लिये बहुत-से मुनि बैठे हैं (सबके बुलानेसे सबकी विवाहपद्धतिमें निपुणता तथा सभीकी सावधानता जनायी)। (ख) '*सुनत सुआसिनि*⋯⋯' से जनाया कि वे सब भी समय जानती थीं। इससे पहलेसे ही तैयार रही हैं, सुनते ही तुरत ले आयीं। ☞सब अपने-अपने काममें सावधान हैं।

जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मैना॥ ४॥

अर्थ—श्रीजनकमहाराजकी 'वाम दिशा' में श्रीसुनयनाजी (ऐसी) सुशोभित हैं मानो हिमाचलराजके साथ मैनाजी सुशोभित हैं॥ ४॥

'जनक बाम दिसि सोह सुनयना' इति

शंका—पुण्यकालमें (शुभकार्योंमें) स्त्री दाहिने चाहिये, वाम-दिशामें बैठनेसे शास्त्र-विरोध पड़ता है। यथा—'**सर्वयज्ञे दक्षिणे पत्नी चतुःकर्मसु वामतः। शय्यायां द्विरागमने सिन्दूरे चित्ररोहने॥**'

इस शङ्काको उठाकर पं० रामकुमारजी उसका समाधान इस प्रकार करते हैं कि (यहाँ यह समझना चाहिये कि जैसे दसों दिशाओंके पृथक्-पृथक् नाम हैं वैसे ही यहाँ एक दिशाका नाम दिया है। यहाँ '*बाम*' से उस '*बाम दिशा*' का तात्पर्य है। ईशानकोणको '*बाम दिसि*' कहा है। '*बाम*' नाम महादेवजीका है; इस प्रकार) '*बाम दिसि*'=महादेवजीकी दिशा=ईशानकोण। (इस प्रकार अर्थ करनेसे सुनयनाजीका जनकजीके ईशान-दिशामें बैठना कहनेसे वे दाहिनी ओर हुईं। क्योंकि वर पूर्वकी ओर मुँह करके बैठता है और कन्यादानके समय कन्याका पिता पश्चिम ओर मुख करके बैठता है। जब वे जनकजीके ईशान-दिशामें बैठायी जायँगी तब वे उनके दाहिने दिशामें हुईं।

पंजाबीजी 'सुनयनाजीकी वाम-दिशामें जनकजी शोभित हैं'—ऐसा अर्थ करते हैं।

बैजनाथजीने भी यही अर्थ किया है और कहते हैं कि यहाँ चौपाइयोंमें श्रीसुनयनाजीका वर्णन है, इसीसे प्रधानता उन्हींका शोभित होना कहते हैं। प्रधान होनेसे 'सुनयनाजी अङ्गी हुईं और राजा अङ्ग हुए। अङ्ग होनेसे राजा वाम-दिशामें हैं।⋯⋯।' अथवा, अभी बायीं ओर बैठी हैं, जब कन्यादान होने लगेगा तब दक्षिण ओर हो जायँगी।

बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि '**पत्नी तिष्ठति दक्षिणे**' इस स्मृतिवाक्य तथा लोकरीतिसे दक्षिण

ओर बैठना ही ठीक है। पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् है; इस नियमके अनुसार 'सुनयनाजीकी वाम-दिशामें जनकजी शोभित हैं' यह अर्थ होगा।

कोई कहते हैं कि 'वाम=शिव=कल्याण'। ***'बाम दिसि'*** =कल्याण दिशा=दक्षिण-दिशा। और कोई कहते हैं कि 'वाम=सुन्दर अर्थात् दक्षिण-दिशामें'। तथा किसी-किसीका कहना है कि यदि गोस्वामीजीको दक्षिण लिखना होता तो ***'बाम दिसि'*** कदापि न लिखते, फिर कुछ ऋषियोंका मत है कि वाम-दिशामें ही बैठना चाहिये। अतः ग्रन्थकारने यहाँ इसी मतका ग्रहण किया है।

प० प० प्र० स्वामीजी लिखते हैं कि यहाँ विरोधके लिये स्थान है ही नहीं। यथा—'**आशीर्वचनकालेषु नित्योपासनमार्जने। एतेषु वामतस्तिष्ठेत्पत्नी त्वन्यत्र दक्षिणे**॥' अर्थात् आशीर्वाद देते-लेते समय, अग्निहोत्र, मार्जन अर्थात् स्नान, पादप्रक्षालन, अभिषेकके समय पत्नी बायीं ओर रहे, दूसरे कार्योंमें दक्षिण ओर। इस समय सुनयनाजी प्रथम ही मण्डपमें आती हैं, ऐसे अवसरपर गुरु-विप्र-वृद्धोंको वन्दन करनेकी प्रथा है, वन्दनोत्तर आशीर्वाद मिलते हैं, इससे यह आशीर्वचनकाल होनेसे बायीं ओर रहना शास्त्रानुकूल है। इसके अनन्तर पादप्रक्षालन होता है जिसका अन्तर्भाव मार्जनमें होता ही है।

नोट—स्मृतिकारोंमें मत-भेद है। किसी ऋषिके मतानुसार इस अवसरपर पतिके दक्षिण ओर और किसीके मतानुसार बायीं ओर स्त्रीको बैठाना चाहिये। यहाँ गोस्वामीजीने ***'बाम दिसि'*** पद देकर दोनोंके मतोंकी रक्षा की है। एक अर्थ तो स्पष्ट ही है कि 'बायीं ओर' सुशोभित हैं। परन्तु दूसरा अर्थ ***'बाम'*** का 'सुन्दर' लेनेसे, दक्षिण वा बायीं, दोनोंमेंसे कोई अर्थ महानुभाव अपने-अपने मतानुसार जो उत्तम वा सुन्दर और ऋषियोंद्वारा प्रतिपादित समझें ले सकते हैं। साधारणतः तो 'बायीं ओर' ही अर्थ होगा (प्र० सं०)। विनयपत्रिकामें भी विन्दुमाधवजीकी स्तुतिमें ***'बाम भाग'*** पाठ प्राचीनतम सं० १६६६ वाली पोथीमें है, परंतु सम्भवतः पण्डितोंने कुछ स्मृतियोंके अनुसार उसको अशुद्ध समझकर 'दक्ष' वा 'दच्छ' भाग कर दिया है। विनय पद ६१, यथा—***'देव सकल सौभाग्य संयुक्त त्रैलोक्य श्री बाम दिसि रुचिर बारीस कन्या'*** ।

स्त्री कब-कब दक्षिण भागमें रहे और कब-कब वाम भागमें, इसके सम्बन्धमें खोज करनेपर हमें कुछ प्रमाण मिले हैं। यथा—'**सीमन्ते च विवाहे च तथा चातुर्थ्यकर्मणि। मखे दाने व्रते श्राद्धे पत्नी दक्षिणतो भवेत्॥ सम्प्रदाने भवेत्कन्या घृतहोमे सुमङ्गली॥ वामभागे भवेदार्या पत्नी चातुर्थ्यकर्मणि। व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थी सह भोजने॥ व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे। सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा॥ अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥**' पुनश्च यथा—'**सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः सदा। विप्रपादक्षालने च ह्यभिषेके तु वामतः। वामे पत्नी त्रिषु स्थाने पितॄणां पादशौचने। रथारोहणकाले तु ऋतुकाले सदा भवेत्॥**' (संस्कारकौस्तुभ), '**वामे सिन्दूरदाने च वामे चैव द्विरागमे। वामभागे च शय्यायां नामकर्म तथैव च॥ शान्तिकेषु च सर्वेषु प्रतिष्ठोद्यापनादिषु। वामे ह्युपविशेत्पत्नीं व्याघ्रस्य वचनं यथा॥**' (वायुनन्दन मिश्र)

इन श्लोकोंमें 'विप्रपादक्षालन' में वामभागमें होना कहा है। 'विप्र' से पूज्यका भाव ले सकते हैं। वर-कन्या विवाहके समय लक्ष्मी-नारायणरूप माने गये हैं। पादप्रक्षालनकार्य करनेको दम्पति उपस्थित हैं; अतः इस समय वामदिशामें होना ही ठीक है।

टिप्पणी—१ ***'हिमगिरि संग बनी जनु मैना'*** इति। (क) हिमाचल और मेनाकी उपमा देनेका भाव कि हिमाचलने गिरिजाजीको शिवजीकी शक्ति जानकर अर्पण किया था, यथा—***'गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहिं समरपी जानि भवानी॥'*** (१०१। २) वैसे ही श्रीजनकजीने श्रीसीताजीको रामजीकी शक्ति जानकर उन्हें अर्पण किया। यही आगे स्पष्ट कहते हैं, यथा—***'हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई। तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥'*** पुनः दूसरा भाव यह है कि समधीके सामने समधिन प्रकट नहीं होतीं, यह चाल छोटे-बड़े सभीमें है और ये तो रानी हैं, इनको परदा अवश्य करना चाहिये, वह परदा इस उत्प्रेक्षाके द्वारा दिखा रहे हैं। गिरिके संग जैसे मेना सोहती हैं, तात्पर्य कि पर्वतके पास स्त्री नहीं देख पड़ती, वैसे ही जनकजीके पास सुनयनाजी देख नहीं पड़तीं। [पुनः

भाव कि जैसे जगज्जननी भवानीकी माता मेनाकी शोभा थी वैसे ही श्रीकिशोरी जगज्जननीकी माता होनेसे यहाँ इनकी शोभा है—(मा० त० वि०)]

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥५॥
निज कर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी॥६॥
पढ़हिं बेद मुनि मंगलबानी। गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥७॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे॥८॥

शब्दार्थ—**रूरे**=उत्तम, अच्छे, श्रेष्ठ, सुन्दर। **पूरे**=भरे हुए। **पाय**=चरण, पैर। '**पखारना**'-प्रक्षालन करना, धोना।

अर्थ—पवित्र, सुगन्धित और माङ्गलिक (तीर्थ) जलसे भरे हुए सोनेके सुन्दर कलश और मणियोंके उत्तम कोपर॥५॥ राजा-रानीने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथोंसे लाकर रामचन्द्रजीके आगे रखे॥६॥ मुनि मङ्गलवाणीसे (स्वरके साथ गाते हुए) वेद पढ़ रहे हैं, अवसर जानकर आकाशसे फूलोंकी झड़ी होने लगी॥७॥ दूलहको देखकर राजा-रानी प्रेममें मग्न हो गये और पवित्र चरणोंको धोने लगे॥८॥

टिप्पणी—१ '*कनक कलस मनि कोपर रूरे।*......' इति। (क) पूर्व '*कनक कोपर*' कह आये हैं, यथा—'*भरे कनक कोपर कलस सो तब लिएहिं परिचारक रहैं।*' (१। ३२३) यहाँ '*मनि कोपर रूरे*' कहते हैं। भेदमें भाव यह है कि सोनेके परात मङ्गल द्रव्य भरकर रखनेके लिये हैं और श्रीरामजीके पादप्रक्षालनके लिये सुन्दर मणिके कोपर लाये। यहाँ 'रूरे' 'पूरे' द्विवचन हैं; यथा—'*राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥*' (२४१। ३) इससे जनाया कि चरण-प्रक्षालनके लिये दो परात लाये गये हैं, एकमें श्रीरामजीके चरण धोयेंगे और दूसरेमें श्रीजानकीजीके। कारण कि श्रीरामजीके चरणोदकके ऊपर श्रीसीताजी अपना चरण नहीं धुलावेंगी (वे तो श्रीरामजीके चरणरेखपर, जो मार्गमें चलते समय पृथ्वीपर बन जाते हैं, अपना चरण नहीं रखतीं।) यथा—'*प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥*' (२। १२३। ५) (तब भला अपने चरणप्रक्षालनका जल उनके चरणप्रक्षालन जलपर कैसे पड़ने देंगी)। राजारानी श्रीजानकीजीके इस भावको जान गये हैं इसीसे वे दो कोपर लाये। इसी प्रकार चित्रकूटमें उनके मनका भाव रानीने जानकर राजासे कहा था, यथा—'*कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥ लखि रुख रानि जनाएउ राऊ। हृदय सराहत सीलु सुभाऊ॥*' (२। २८७) (ख) '*सुचि सुगंध मंगल जल पूरे*' इति। 'शुचि जल' अर्थात् पवित्र तीर्थोंका जल। सुगन्ध अर्थात् अतर, गुलाब, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यमिश्रित। 'मङ्गल' अर्थात् हरिद्रादि (हल्दी आदि) मिश्रित।

टिप्पणी—२ '*निज कर मुदित राय*...' इति। (क) '*निज कर*' और '*मुदित*' राजा और रानी दोनोंकी श्रीराम-पादप्रक्षालनमें बड़ी श्रद्धा दिखायी। यथा—'*अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥*' (२। १०१) (ख) '*धरे राम के आगे आनी*' इति। '*आनी*' से जनाया कि ये अन्यत्र रखे हुए थे, जब चरणप्रक्षालनका समय आया तब उठाकर श्रीरामजीके आगे रखे। यदि एक कोपर होता तो दोनों मिलकर क्यों उठाते? श्रीरामजीके आगे रखना कहकर जनाया कि प्रथम श्रीरामजीका पूजन और पादप्रक्षालन होगा।

टिप्पणी—३ '*पढ़हिं बेद मुनि मंगलबानी।*...' इति। (क) जिस वाणीसे वेद पढ़ा जाता है वह मङ्गल वाणी है। ['**वेदानां सामवेदोऽस्मि।**' (गीता १०। २२) '**सा च असौ अमश्च सामः।**' सामवेद गायन करने लगे। ऋग्वेदका संगीत पद्धतिसे गायन 'साम' गायन है। (प० प० प्र०) '*मंगलबानी*' से सूचित किया कि गा-गाकर पढ़ते हैं (प्र० सं०)] (ख) '*गगन सुमन झरि अवसरु जानी*' इति। पादप्रक्षालन बड़ा भारी कृत्य है, इस समय अवश्य ही पुष्पोंकी वृष्टि होनी चाहिये, यथा—'*बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं॥*' (२। १०१) (देवता आकाशमें विमानोंपर हैं। पादप्रक्षालन मण्डपतले हो रहा है। अतः जब मुनि मङ्गलवाणीसे वेद पढ़ने लगे तब उस वेदध्वनिको सुनकर देवोंने जाना कि प्रक्षालन हो रहा है, क्योंकि

ये मन्त्र चरणप्रक्षालनके समयके हैं। अतः पुष्पवृष्टिका अवसर जानकर फूलोंकी झड़ी लगा दी। (ग) जब निषादने चरण धोया तब देवताओंने फूल बरसाये और जब राजा-रानी पादप्रक्षालन करने लगे तब उन्होंने फूलोंकी झड़ी लगा दी, क्योंकि केवट सामान्य अधिकारी है और राजा-रानी विशेष अधिकारी हैं।

टिप्पणी—४ *'बरु बिलोकि दंपति अनुरागे।....'* इति। (क) यथा—*'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥'* (२१६। ५) [वैसे ही यहाँ दम्पति, राजा-रानी दोनोंकी उस साँवली सूरतकी ओर दृष्टि गयी नहीं कि वे उस शृङ्गारयुक्त बाँकी छविको देख उसी सुखसागरमें डूब गये। दोनों मिलकर चरण धो रहे हैं। इस बातको कविने कैसी खूबीके साथ एक शब्द 'दम्पति' (जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों मिले हैं) ही देकर सूचित कर दिया। पुनः *'पखारन लागे'* से धीरे-धीरे विलम्बके साथ धोना लक्षित किया। अर्थात् तीन बार अञ्जलिमें जल लेकर चरणोंसे स्पर्श करके सिर और नेत्रोंमें लगाया]। यहाँ दोनों (राजा-रानी) चरण धो रहे हैं; *'लागे'* द्विवचन कहा। केवटने अकेले धोया, इससे वहाँ एकवचन *'लागा'* शब्द दिया। यथा—*'चरन सरोज पखारन लागा।'* निषाद आँखोंसे देख-देखकर कि ये कमल-समान हैं, उन्हें धो रहा है और श्रीजनकजी प्रभाव जानते हैं कि इनसे गङ्गाजी निकली हैं, ये पुनीत हैं।

नोट—१ इस प्रसङ्गका मिलान केवटके चरण-प्रक्षालन-प्रसङ्गसे कीजिये। यहाँ देवताओंका केवल *'गगन सुमन झरि अवसरु जानी'* कहा और वहाँ कहते हैं कि—*'बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।'* इस भेदका कारण यह है कि निषादने जोरावरीसे चरण धुलवा लिया, उसने आडम्बर फैलाया कि पदरज धो डालेंगे और फिर उसमें नावपर चढ़ते समयतक रज न लगने देंगे, वह कुछ अधिकारी न था, अतः उसके भाग्यको देवता सिहाते थे। और राजा जनक एवं अम्बा सुनयनाजी तो परम सुकृती और इन चरणोंके अधिकारी हैं, पुनः इन्होंने अपनी कन्या भी दानमें दी तब इन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ। २—दूसरा भेद उस प्रसङ्गमें और इसमें यह है कि यहाँ पाय पुनीत और पाय पंकज कहा और केवटके प्रसङ्गमें पुनीत विशेषण नहीं दिया। वह उन चरणारविन्दोंका प्रभाव नहीं जानता था, केवल चरणोंकी ललाई और कोमलतापर उसकी दृष्टि है; इसलिये उसके प्रसङ्गमें पद सरोज कहा और ये राजा-रानी चरणोंको सरोजवत् तो देखते ही हैं, यथा—*'लागे पखारन पाय पंकज'* परन्तु साथ ही इनका प्रभाव भी जानते हैं कि *'मकरंद जिनको संभु सिर....'*, अतः इनके सम्बन्धमें चरणोंको पुनीत और पंकज दोनों विशेषण दिये गये।

छंद—लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥
जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीं॥ १॥
जे परसि मुनि बनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिन्हको संभु सिर सुचिता अवधि सुर बर नई॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥ २॥

अर्थ—दम्पति पदकमलोंको धोने लगे। प्रेमसे शरीरमें पुलकावली हो रही है। आकाश और नगरमें गान, निशान और जयकी ध्वनि मानो चारों दिशाओंमें उमड़ चली। जो पदकमल कामदेवके शत्रु श्रीमहादेवजीके हृदयरूपी तालाबमें सदा ही विराजते हैं, जिनका एक बार 'भी' स्मरण करनेसे मनमें निर्मलता आ जाती है और कलिके सब पाप भाग जाते हैं, जिनका स्पर्श पाकर मुनिकी स्त्री अहल्याने सद्गति पायी कि जो पापमयी (अर्थात् पापका रूप महापापिनी) थी, जिन (चरण-कमलों) का मकरंद पवित्रताकी सीमा

देवताओंकी श्रेष्ठ* नदी (गङ्गाजी) श्रीशिवजीके सिरपर (सुशोभित) है, मुनि और योगी लोग अपने मनको भौंरा बनाकर जिन चरणकमलोंका सेवन करके इच्छित गति पाते हैं, उन्हीं चरणोंको भाग्य-भाजन भाग्यके पात्र अर्थात् अतिशय बड़भागी श्रीजनकजी धो रहे हैं और सब लोग जय-जयकार कर रहे हैं॥ १-२॥

टिप्पणी—१ (क) *'लागे पखारन''''''''* इति। जब पदप्रक्षालन करने लगे तब शरीरमें पुलकावली होनेका भाव कि श्रीरामजीके अङ्गके स्पर्शसे पुलकावली होती है, यथा—*'सब सिसु येहि मिस प्रेम बस परसि मनोहर गात। तन पुलकहिं अति हरषु हिय देखि देखि दोउ भ्रात॥'* (२२४) (ख) *'पाय पंकज'* कहकर जनाया कि वे चरण-कमलको देखते हैं (कि कमल समान हैं)। *'प्रेम तन''''''* कहनेका भाव कि चरणोंको देखनेमें तो तीर्थोंके जलसे धो रहे हैं पर वे वस्तुतः अन्तःकरणके प्रेमके जलसे प्रक्षालन करते हैं। (ग) *'नभ नगर उमगि जनु''''''* अर्थात् आकाश और नगर ध्वनिसे पूर्ण हो गये। नगरके बाहर आवाज (ध्वनि, शब्द) का जाना ही उमगकर चलना है, यथा—*'बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहु उमगि चला चहुँ ओरा॥'* (घ) *'जे पद सरोज मनोज अरि उर''''''* इति। पहले कहा कि *'पाय पंकज'* करसे प्रक्षालन करने लगे, अब बताते हैं कि यह पंकज कहाँका है। यह श्रीशिवजीके हृदयरूपी तड़ागका कमल है। *'मनोज अरि उर'* का भाव कि काम मनसे उत्पन्न होता है सो उसके ये शत्रु हैं अर्थात् इनके मनमें काम नहीं उत्पन्न होने पाता, इसीसे ये चरण-कमल इनके हृदय—तड़ागमें सदा विराजते हैं। क्योंकि यदि काम हृदयमें आ जाय तो फिर ये पद—कमल वहाँ नहीं आते। यथा—*'जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत।'* (वि० १८५) तब मनमें कामके न आनेका तथा उसके निर्मल रहनेका क्या उपाय है, यह अगले चरणमें बताते हैं—*'जे सकृत सुमिरत''''''''*। पुनः *'सदैव बिराजहीं'* का भाव कि कमल तालाबमें सदा नहीं रहता, पर ये कमल कामारिके हृदयसरमें सदैव रहते हैं। [*'सदैव''''''* का भाव कि वह कमल रातमें संपुटित हो जाता है और यह सदा *'बिराजहीं'*, सदा सुशोभित रहते हैं। अर्थात् सतीजीके वियोगरूपी रात्रिके कारण भी संपुटित नहीं हुए। *'बिराजहीं'* का कारण *'मनोज अरि'* है, यथा—*'जहाँ काम तहँ राम नहिं जहाँ राम नहिं काम॥'* (दोहावली) (प्र० सं०)] (ङ) *'जे सकृत सुमिरत''''''* इति। अर्थात् चरणके स्मरणसे मन निर्मल हो जाता है, कामादि विकार उत्पन्न नहीं होते और प्रथमके किये हुए समस्त कलिमलका नाश हो जाता है। *'सकल कलिमल'* अर्थात् मन-कर्म-वचन तीनोंसे किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पाप मन-वचन-कर्मसे उत्पन्न होते हैं यथा—*'जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥'* (२। १६७)

टिप्पणी—२ (क) *'जे परसि मुनि बनिता लही''''''''* इति। ऊपर जो कहा कि *'सकल कलिमल भाजहीं'* उसका अब उदाहरण भी देते हैं कि जो अहल्या पापमयी थी उसने सद्गति पायी। भाव यह कि अहल्याने जो पाप किया उसका फल सौ कल्पतक नरक भोग है, यथा—*'पतिबंचक परपति रति करई। रौरव नरक कलप सत परई॥'* (३। ५) (अहल्याने जान-बूझकर यह पाप किया था। यह पूर्व उनकी कथामें दोहा २१०। १२ में लिखा जा चुका है। इसीसे उसे 'पातकमयी' कहा) (ख) *'लही गति रही जो पातकमई',* यथा—*'परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥'* (२२३। ५) *'कृत अघ भूरी'* इसीसे *'पातकमई'* कहा। (*'लही गति'* से जनाया कि स्पर्श होते ही तुरत उसका सब मन-कर्म-वचनसे किया हुआ, घोर पाप नष्ट हो गया, यथा—*'परसत पदपावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।'* (१। २११) *'रही'* से जनाया

---

* नई—यह शब्द केवल पद्यमें प्रयुक्त होता है और इसका प्रयोग प्रान्तीय है। संज्ञा स्त्रीलिङ्ग है। इस तरह सुर-वर नई देवताओंकी श्रेष्ठ नदी यह अर्थ पं० रामकुमारजीने किया है। प्र० सं० में हमने अर्थ इस प्रकार किया था—'जिन चरण-कमलोंका मकरंदरस (अर्थात्, चरणोदक गङ्गाजी) शिवजी सिरपर धारण किये हुए हैं। जिसको देवता पवित्रताकी सीमा वर्णन करते हैं।' प्रायः सभी टीकाकारोंने यही अर्थ लिखा है, जो हमने लिखा था। इस बार पण्डितजीका अर्थ देखकर हमने कोश देखा तो उसमें 'नई' का अर्थ नदी मिला। यह अर्थ उत्तम जँचता है, इससे इस संस्करणमें दे रहे हैं।

कि बहुत दिनकी पापिणी थी)। (ग) ऊपर कहा था कि *'जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजहीं'* (अर्थात् कमल और उसका तालाब कह आये), अब उस कमलका मकरन्द कहते हैं—*'मकरंद जिन्ह को'''*।' शम्भु कारण और कार्य दोनोंको धारण किये हुए हैं। चरण कारण हैं; गङ्गा कार्य हैं (उन चरणोंका धोवन हैं, मकरन्द हैं)। चरणोंको भीतर हृदयमें धारण किया और गङ्गाजीको अपने स्वामीके चरणोंका धोवन समझकर सिरपर धारण किया। पुनः भाव कि गङ्गाजी ब्रह्मलोकमें रहीं। ब्रह्मलोक (विश्वरूप ब्रह्मका) सिर (कहा गया) है, यथा—*'पद पाताल सीस अज धामा।'* (६। १५। १) अतः अपने सिर (ब्रह्माण्ड) पर उनको वास दिया। (घ) गङ्गाजी चरणमकरन्द हैं, पापसमूहका नाश करती हैं; यथा—*'बिष्नुपदकंज मकरंद इव अंबुबर बहसि दुख दहसि अघबृंद बिद्रावनी'* (विनय० १८)।

टिप्पणी—३ *'करि मधुप मन मुनि'''''* इति। (क) कमल, सर, मकरन्द कहे गये। अब मकरन्दके पान करनेवाले चाहिये, सो उनको यहाँ कहते हैं। मकरन्दका पान मधुप करता है, यहाँ मुनियों और योगियोंके मन मधुप हैं, ये उस चरणमकरन्दका पान करते हैं। अर्थात् मुनि और योगी लोग मन लगाकर श्रीगङ्गाजीका सेवन करते हैं। (ख) *'अभिमत गति लहैं'* अर्थात् सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य और सारूप्य जिस भी मुक्तिकी इच्छा होती है, वही उनको प्राप्त हो जाती है। मुनि और योगी अर्थ, धन और कामकी चाह नहीं करते, इसीसे *'गति'* की प्राप्ति कही। गङ्गाजीके मज्जन और पान दोनोंका माहात्म्य है; यथा—*'मज्जन पान पाप हर एका।'* (१। १५) अतएव यहाँ दोनों कहे। *'मकरंद जिन्हको संभु सिर सुचिता अवधि सुर-बर-नई'* यह मज्जन है, और *'करि मधुप मन'''''* यह पान है। (ग) *'ते पद पखारत भाग्य भाजनु जनकु'* इति। भाव कि जिन चरणोंका सेवन शिवजी हृदयमें करते हैं (अर्थात् मनमें ध्यान करते हैं, साक्षात् चरणकी प्राप्ति उनको नहीं है) और जिस पदके धोवनका सेवन मुनि और योगी मन लगाकर करते हैं, साक्षात् उन चरणोंको जनकजी धो रहे हैं। चरण-सेवा एवं चरणोंकी साक्षात् प्राप्तिसे 'भाग्यभाजन' विशेषण दिया। *'अतिसय बड़भागी चरनन्ह लागी'* १। २११ छन्द १ देखिये। (घ) *'जय जय सब कहैं'* इति। ऊपर जो कहा था कि *'नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली'* उसको यहाँ स्पष्ट किया कि वह जय-जयकार किसके लिये थी और कौन कर रहा था। श्रीजनकजीके अतिशय बड़भागी होनेकी जयध्वनि थी और सभी लोग उनको धन्यवाद दे रहे हैं, वही ध्वनि सर्वत्र फैली हुई थी।

नोट—मिलान कीजिये—**'सभार्यो जनकः प्रायाद्रामं राजीवलोचनम्। पादौ प्रक्षाल्य विधिवत्तदपो मूर्ध्न्यधारयत्॥'** (अ० रा० १। ६। ५१) **या धृता मूर्ध्नि शर्वेण ब्रह्मणा मुनिभिः सदा।'''''** (५२) अर्थात् रानीसहित राजा जनक राजीवलोचन श्रीरामजीके पास आये और विधिपूर्वक उनके चरण धोकर उन्होंने पदतीर्थको सिरपर रखा, जिसे शिव, ब्रह्मा और अन्यान्य मुनिजन भी सदा मस्तकपर धारण करते हैं।

छं०—बर कुँअरि करतल जोरि साखोच्चारु दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानि गहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरे॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियें।
करि लोक बेद बिधानु कन्या दानु नृप भूषन कियें॥ ३॥

शब्दार्थ—**शाखोच्चार**=विवाहके समय वंशावलीका कथन। वंशोंके आदि वा कई पीढ़ीके पुरुषोंके नाम, गोत्र, वेदशाखा-सूत्रादि कथन 'शाखोच्चार' है—(बैजनाथजी)। **पानि गहनु**=पाणिग्रहण। वरके हाथमें नीचे कुछ लोहा और ऊपर कुछ द्रव्य रखा जाता है और कन्याका हाथ मध्यमें। पिता कन्याका हाथ वरके हाथपर उलट देता है, यहाँ पाणिग्रहणसे इतना ही व्यवहार दिखाया।

अर्थ—वर और कन्याकी हथेलियोंको मिलाकर (अर्थात् वरके दक्षिण हथेलीपर कन्याकी दक्षिण हथेलीको रखवाकर) दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ, यह विधि देखकर ब्रह्मा (आदि) देवता,

मनुष्य और मुनि आनन्दसे भर गये। सुखके मूल दूलहको देखकर दंपति (राजा और रानी दोनों) का शरीर पुलकित हुआ और हृदयमें आनन्द उमड़ आया। राजाओंमें भूषणस्वरूप श्रीजनकजीने लोक और वेद (दोनोंकी) विधियाँ करके कन्यादान किया॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'साखोच्चारु दोउ कुलगुर करैं.....'* इति। पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीनोंका नाम लेना 'शाखोच्चार' है।

नोट—१ वाल्मीकीयमें विवाहके एक दिन पूर्व ही महर्षि वसिष्ठजीने इक्ष्वाकुकुलकी वंश-परम्पराका वर्णन किया। श्रीजनक महाराजने, यह कहते हुए कि कन्यादानके सम्बन्धमें कुलीन मनुष्योंको अपने कुलका आद्यन्त वर्णन करना चाहिये, अपने कुलका वर्णन किया है। गीतावलीमें भाँवरी फिरते समय शाखोच्चार हुआ है, यथा—*'कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी॥ ३॥ इत बसिष्ठ मुनि उतहि सतानंद बंस बखान करैं दोउ ओरी।'* (१। १०३) पार्वतीमंगल उमा-शिव-विवाहमें शाखोच्चार होते समय या होनेके पश्चात् कन्यादान हुआ है। यथा—*'साखोच्चार समय सबे सुर मुनि बिहँसहिं। लोक-बेद-बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर। कन्यादान संकलप कीन्ह धरनीधर॥'* (७९) कन्यादानके बाद भाँवरें हुईं। ऐसा ही यहाँ हुआ। श्रीशिवपार्वती-विवाहमें कन्यादान होनेपर पाणिग्रहण जान पड़ता है, यथा—*'गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपी जानि भवानी॥ पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा। हिय हरषे तब सकल सुरेसा॥'* (१०१। २-३) और यहाँ पाणिग्रहण विधि होनेपर कन्यादान हुआ। वाल्मीकीयमें कन्यादान इस प्रकार हुआ। जनकजीने श्रीरामजीसे कहा 'यह सीता मेरी कन्या है, तुम्हारे साथ धर्माचरण करनेके लिये तुम्हें दी जाती है, तुम इसको ग्रहण करो, तुम्हारा कल्याण हो, इसका हाथ अपने हाथमें लो, यह पतिव्रता, सौभाग्यवती और तुम्हारी छायाके समान होगी। यथा—**'इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥ २६॥ प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना। पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥ २७॥'** (७३) मानसकथित पाणिग्रहणसे यह विधि ही कही गयी जान पड़ती है। वहाँ श्रीजनकजीके ऐसा कहनेपर देवता और ऋषियोंका साधुवाद, नगाड़ोंका बजना और पुष्पवृष्टि हुई। यथा—**'साधु साध्विति देवानामृषीणां वदतां तदा।'** (७३। २८-२९), वैसे ही यहाँ इस विधिके होते ही *'सुर मनुज मुनि आनंद भरे।'* वहाँ इस विधिके अनन्तर राजाने मन्त्र और जलके साथ कन्यादान किया, वैसा ही यहाँ हुआ।

☞ वस्तुत: करतल जोड़ना, शाखोच्चार करना, इत्यादि सब कन्यादान कर्मकाण्डके अङ्ग हैं। ये सब एक ही समय होते हैं, पर कवि एक है, लेखनीसे वे आगे-पीछे लिखे ही जायँगे।

विवाहपद्धतिमें समंजनके पश्चात् विप्रोंद्वारा प्रथम शाखोच्चार वर और कन्या दोनों पक्षोंमें होना कहा गया है। इसके अनन्तर कुछ मंगलकारक मन्त्रोंका पठन होता है, तब कन्यादानका विधान इस प्रकार है—वरके दाहिने हाथपर कन्याका दक्षिण हाथ रखकर दान करनेवाला प्रार्थना करता है और उसके बाद वह कन्यादानका संकल्प करता है। यथा—**'जामातृदक्षिणकरोपरि कन्यादक्षिणकरं निधाय॥'** प्रार्थना-**'दाताहं वरुणो राजा द्रव्यमादित्यदैवतम्। वरोऽसौ विष्णुरूपेण प्रतिगृह्णात्वयं विधिः। प्रतिज्ञासंकल्पः......।'** कन्यादान करनेवाला इस सङ्कल्पमें वर और कन्या दोनोंका शाखोच्चार तीन बार करता है। जिसमें दोनोंके पिता, पितामह और प्रपितामहका नाम आता है। (श्रीवायुनन्दनमिश्रकृत विवाह-पद्धति)

टिप्पणी—२ *'भयो पानि गहनु बिलोकि बिधि......'* इति। यहाँ कहते हैं कि पाणिग्रहण हुआ, पर अभी पाणिग्रहण नहीं हुआ, क्योंकि अभी तो सङ्कल्प, होम, भाँवरी, सिंदूर-वन्दन सभी बाकी हैं। इसका समाधान यह है कि शाखोच्चारके पश्चात् संकल्प होता है। संकल्पमें पिताका हाथ, कन्याका हाथ और वरका हाथ तीनों एकत्र होते हैं, यथा—**'वरहस्तेषु सत्पिण्डं पिताहस्ते कुशोदकम्॥ तयोर्मध्ये कन्याहस्तमेतत्संकल्पको विधिः।'** यह पाणिग्रहणकी विधि देखकर सुर-नर-मुनि सुखी हुए। शाखोच्चार करके संकल्प करना चाहिये; वही यहाँ *'भयो पानि गहनु.......'* में कहा। [पूर्व संस्करणमें हमने विधिका अर्थ ब्रह्मा आदि लिखा। इस

संस्करणमें हमने विधि और ब्रह्मा दोनों अर्थ लिये हैं। प्राय: अन्य सभी टीकाकारोंने ब्रह्मा आदि अर्थ किया है। पं० रामकुमारजी और बाबा हरिहरप्रसादजीने विधि अर्थ लिखा है और यह ठीक भी जान पड़ता है।]

टिप्पणी—३ *'सुखमूल दूलहु देखि……'* इति। (क) सुखमूल, यथा—*'आनँदहूके आनँददाता॥'* (२१७। ३) *'नयन बिषय मो कहुँ भयेउ सो समस्त सुखमूल॥'* (३४१) (यह स्वयं जनकजीने कहा है), **'सुखाकरं सतां गतिम्॥'** (३। ४) (अत्रिवाक्य), इत्यादि। २१६ (७) देखिये। दूलह सुखके मूल हैं, इसीसे दम्पति इनको बार-बार देखते हैं। यथा—*'बर बिलोकि दंपति अनुरागे।……'* यथा यहाँ *'सुखमूल दूलहु देखि'* (ख) *'सुखमूल'* कहकर *'हूलस्यो'* का अर्थ स्पष्ट कर दिया। *हुलस्यो*=सुख हुआ। सुर-नर-मुनि यह झाँकी देखकर आनन्दित हुए और दम्पति श्रीरामजीको देखकर आनन्दित हुए। (ग) *'नृप भूषन'* इससे कहा कि श्रीरामजीको भी इन्होंने दान दिया। [चक्रवर्ती महाराज दशरथको तथा महादानिशिरोमणि श्रीरामजीको भी दान दिया। अत: *'नृप भूषन'* कहा। (प्र० सं०) यथा—**'प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा।'** (वाल्मी० १। ६९। १४) श्रीदशरथजीने श्रीजनकजीसे कहा है कि मैंने सुना है कि दान दाताके अधीन होता है। पर यह स्मरण रहे कि ये वाक्य श्रीजनकजीके **'दिष्ट्या मे निर्जिता विघ्ना दिष्ट्या मे पूजितं कुलम्॥ ११॥ राघवैः सह सम्बन्धाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः॥……'** अर्थात् भाग्यकी बात है कि मेरे सब विघ्न दूर हुए, मेरा कुल पवित्र हुआ, पराक्रमी रघुवंशियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे मेरा कुल उन्नत हुआ—इन वचनोंके उत्तरमें कहे गये हैं। श्रीसीताजी धनुष टूटनेसे श्रीरामजीकी हो गयीं, कन्यादानसे नहीं। यह तो केवल विवाहका विधानमात्र था।]

नोट—*'करि लोक बेद बिधानु……'*। यथा—*'अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ। कन्यादान बिधान संकलप कीन्हेउ॥'* (८९) (जानकीमङ्गल)

छं०—हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिश्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति साँवरी।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भाँवरी॥ ४॥

दो०—जय धुनि बंदी बेद धुनि मंगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान॥ ३२४॥

अर्थ—जैसे हिमाचलने महादेवजीको पार्वतीजी दीं और सागरने भगवान् विष्णुको लक्ष्मीजी दीं, वैसे ही श्रीजनकजीने श्रीरामजीको श्रीसीताजी समर्पण कीं (जिससे) संसारमें सुन्दर नवीन कीर्ति हुई। श्रीजनकजी क्योंकर विनती करें? उन्हें तो उस साँवली मूर्त्तिने विदेह ही कर दिया है (अर्थात् उनको तो देहकी सुधबुध ही नहीं रह गयी है)। विधिपूर्वक होम करके गँठ-बन्धन किया गया और भाँवरें होने लगीं॥ ४॥ जयध्वनि, भाटोंकी ध्वनि, वेदध्वनि, मङ्गल गान और निशानोंकी ध्वनि सुनकर सुजान देवता हर्षित हो रहे हैं और कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं॥ ३२४॥

'हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि……।' इति।

१ पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि हिमाचल और सागरका दृष्टान्त देनेका भाव यह है कि हिमवान्-ने गिरिजाको शिवजीकी शक्ति जानकर शिवजीको दिया, यथा—*'गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपी जानि भवानी॥'* (१०१। २) (देवर्षि नारदसे उनको और मेनाको गिरिजाके शिवशक्ति होनेकी बात मालूम हुई थी, यथा—*'जगदंबा तव सुता भवानी॥ अजा अनादि शक्ति अबिनासिनि। सदासंभु अरधंग निवासिनि॥ अब जनमि तुम्हरे भवन निज पति लागि दारुन तपु किया। अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया॥'* (१। ९८) सागरने 'श्री' (लक्ष्मीजी) को हरिकी शक्ति जानकर हरिके ही करकमलोंमें उनको समर्पण किया; वैसे ही श्रीजनकजीने श्रीसीताजीको श्रीरामजीकी शक्ति जानकर श्रीरामजीके ही करकमलोंमें

उन्हें समर्पण किया। तात्पर्य यह कि दानाभिमानी, दातृत्वके अहङ्कारी नहीं बने, यह समझकर नहीं दिया कि हमारी कन्या है, हम दान दे रहे हैं (किन्तु इस भावसे कि आपकी ही वस्तु है, सो आपको समर्पण करता हूँ—**'त्वदीयं वस्तु श्रीराम तुभ्यमेव समर्पितम्'**—भावसे)।

नोट—क्षीरसिंधुके मंथनसे निकले हुए रत्नोंमेंसे एक 'लक्ष्मीजी' भी थीं। लक्ष्मीजीको सागरने भगवान्‌के करकमलोंमें समर्पण किया, यह अध्यात्मरामायणसे भी पाया जाता है। वहाँ भी यह दृष्टान्त इस प्रसङ्गमें आया है। यथा—**'दीयते मे सुता तुभ्यं प्रीतो भव रघूत्तम। इति प्रीतेन मनसा सीतां रामकरेऽर्पयन्॥ ५४॥ मुमोद जनको लक्ष्मीं क्षीराब्धिरिव विष्णवे।'** (अ० रा० १। ६); अर्थात् हे रघुश्रेष्ठ! मैं अपनी पुत्री आपको देता हूँ; आप प्रसन्न हूजिये। इस प्रकार, प्रसन्न चित्तसे सीताजीको श्रीरामजीके करकमलोंमें सौंपकर राजा जनक ऐसे आनन्दमग्न हो गये जैसे क्षीरसागर श्रीविष्णुभगवान्‌के करकमलोंमें लक्ष्मीजीको सौंपकर हुआ था—**करेऽर्पयन्'** से शक्ति जानकर अर्पण करनेका भाव ले सकते हैं। सागरने शक्ति जानकर समर्पण किया, इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मालूम है।

श्रीजनकजी श्रीसीताजीको श्रीरामजीकी शक्ति जानते थे, इसका प्रमाण अयोध्याकाण्डमें श्रीसुनयनाजीके वचनोंमें मिलता है। यथा—***'राम जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥ अमर नाग नर राम बाहु बल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥ यह सब जागबलिक कहि राखा॥'*** (२। २५८) श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीरामजीको जैसा जानते हैं वह श्रीरामचरितमानससे ही प्रकट है। उन्होंने श्रीजनकजीसे ब्रह्म रामके अवतार और चरित कहे थे। अतः जानते हैं। दूसरे, श्रीविश्वामित्रजीसे प्रश्न करनेपर कि क्या ये ब्रह्म ही तो नहीं हैं—***'उभय रूप धरि की सोइ आवा'*** उन्होंने उत्तर दिया था कि ***'बचन तुम्हार न होइ अलीका'*** अर्थात् ये ब्रह्म ही हैं। धनुषयज्ञमें धनुष इन्हींने तोड़ा। अतः निश्चय हुआ कि श्रीसीताजी उनकी शक्ति हैं। परशुरामजीका पराजय भी श्रीरामके ब्रह्म होनेका निश्चय करानेवाला है। स्तुतिसे स्पष्ट है—***'जय सुर धेनु बिप्र हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहारी॥······जय महेस मन मानस हंसा॥'*** (१। २८५) आगे बारातके बिदा होनेपर इसी भावसे जनकजीने श्रीरामजीकी स्तुति की है और अध्यात्मरामायणमें तो स्पष्ट ही यह बात राजाने श्रीवसिष्ठ और विश्वामित्रजीसे कही है, यथा—**'परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया। देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च॥ जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक्। आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः॥ योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि। अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः॥ नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः।'** (अ० रा० १। ६। ६३—६६) यह बात श्रीनारदजीने जनकजीसे कही थी कि 'परमात्मा भक्तोंपर कृपा करने और देवकार्य-सिद्ध तथा रावणवधके लिये मायामानुषरूपसे अपने चार अंशोंसहित दशरथजीके यहाँ प्रकट हुए हैं और उनकी शक्ति सीता तुम्हारी पुत्री हुई हैं। अतः आप प्रयत्नपूर्वक इनका पाणिग्रहण उन्हीं ***'रामके'*** साथ ही करना और किसीसे नहीं, क्योंकि ये पूर्वसे ही श्रीरामजीकी ही भार्या हैं। इसके आगे श्रीजनकजीका वाक्य है कि तबसे मैं सीताजीको भगवान्‌की शक्ति ही समझता हूँ।

२—मयङ्ककार लिखते हैं कि हिमवंत और क्षीरसागरसे राजा जनकको रूपक देनेका कारण है कि 'जैसे हिमवन्त तुषारमय है और जैसे क्षीरसागर पयोमय है वैसे ही राजा जनक ज्ञानमय और निर्मल भक्तिरसके अगाधसागर हैं। और जैसे उन्होंने देव-विवाह-विधिसे पार्वती और लक्ष्मीको शिव और नारायणको दिया उसी प्रकार प्रथम जनकजीने देव-विवाह-विधिसे जानकीजीको रामचन्द्रजीको अर्पण किया। यथा—***'भयो पानि गहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरे'***, ***'करि लोकबेद बिधान कन्या दान नृपभूषन किये'***। तत्पश्चात् मनुष्य-विवाह-विधि हुई। यथा—***'कुअँर कुअँरि कल भाँवरि देहीं······'*** ***'राम सीय सिर सेंदुर देहीं······'***।

३—प्रज्ञानानन्दस्वामीजी मयङ्ककारके भावको संशोधित और परिवर्धितरूपमें इस प्रकार लिखते हैं कि एक उपमासे अर्थ पूर्ण न होनेसे दो उपमाएँ दीं। ***'हिमवंत'*** से ज्ञानसम्पन्न और क्षीरसागरसे निर्मल भक्तिरससम्पन्न जनाया, क्योंकि जैसे हिमालय दुर्गम है वैसे ही ***'ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका'*** और क्षीरसागर रसमय है वैसे

ही प्रेमभक्ति रस है—*'हरिपद रति रस……'*। श्रीजनकजी ज्ञान और प्रेमभक्ति दोनोंसे सम्पन्न हैं, अतः दो उपमाएँ दीं। पुनः जैसे हिमालय नगाधिराज, शान्त, निर्मल, गम्भीर, परमोच्च, शीतल वैसे ही राजा नृपभूषण, शान्त, मायामलरहित इत्यादि। क्षीरसागर अगाध है, उससे अमृत निकला; वैसे ही राजाकी भक्ति अगाध है। ये मुनियोंको भी मोक्षरूपी अमृत दे सकते हैं। यथा—*'उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू।'* (२। २८६), *'जासु ज्ञान रबि भवनिसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥'* (२। २७७। १) पार्वतीजी औरस कन्या हैं; उनको हिमवंतने पाल-पोसकर बड़ा किया है, किन्तु सीताजी औरस कन्या नहीं हैं, ये तो अयोनिजा हैं; अतः 'अयोनिजा' के लिये लक्ष्मीकी उपमा देनी पड़ी। पर लक्ष्मीजीको पालना-पोसना न पड़ा था और न उनका विवाह धूमधामसे हुआ था। दोनों बातोंकी एक उपमा पर्याप्त न होनेसे दो उपमाएँ दी गयीं।

४—किसी महानुभावका यह मत है कि यहाँ दो उदाहरण दिये जानेका भाव यह है कि उपासक दो प्रकारके हैं—एकके मतानुसार तो श्रीजानकीजी जनकपुरहीमें रहीं, अवध आयी ही नहीं और रामजी भी जनकपुरमें रह गये; इस बातके लिये *'श्रीसागर दई'* कहा, अर्थात् जैसे विष्णुभगवान् लक्ष्मीको पाकर क्षीरसागरमें रह गये। और दूसरे, लोकप्रसिद्ध तथा रामायणोंसे प्रमाणित मतानुसार श्रीसीताजीको ब्याहकर श्रीरामजी अवध लाये।(और यही श्रीरामचरितमानसका मत है) जैसे श्रीशिवजी पार्वतीजीको ब्याहकर कैलासको ले गये। इसके लिये *'हिमवंत-महेसहि'* का दृष्टान्त दिया।

५—किसीने लिखा है कि 'सागरको बिना परिश्रम अलभ्य लाभ हुआ कि लक्ष्मी ऐसी पुत्री और भगवान् ऐसे दामाद घर बैठे मिल गये; अतः उनके आनन्दका ठिकाना नहीं था। इसी प्रकार भूमिशोधनमें अनायास राजा-रानीको आदिशक्ति श्रीसीताजीकी प्राप्ति हुई और घर बैठे ब्रह्मको दामाद कर पाया। अतः इनके आनन्दका ठिकाना नहीं। यह कथा ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखण्ड अध्याय ३६ में है' (प्र० सं० में हमने बैजनाथजीका उद्धरण लिखा था। परंतु इस समय जो संस्करण हमारे सामने है उसमें यह नहीं है और न रा० प्र०, मा० त० वि०, पं० पां० में है)।

नोट—ऐसा ही 'जानकीमंगल' में गोस्वामीजीने कहा है। यथा—*'संकलपि सिय रामहि समरपी सील सुख सोभा मई। जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा, हरिहि श्रीसागर दई॥'* (८०)

टिप्पणी—१ *'बिश्व कल कीरति नई'* इति। [दातृत्वके अहंकारी न बनकर उन्हींकी शक्ति समझकर उनको देनेसे क्या *'कल कीरति नई'* हुई? किसीकी थाती (धरोहर) किसीको पुनः दे देनेमें क्या कीर्ति हो सकती है? वस्तुतः जिसकी वस्तु है उसीको सौंप देनेमें कोई कीर्तिकी बात ही नहीं, ऐसा न करनेसे वह अधर्मी, बेईमान ही कहायेगा और करनेसे उसने केवल कर्तव्यका पालन किया; कोई कीर्तिकी बात नहीं? कीर्ति तो अपनी वस्तुको देनेसे होती है? इस सम्भावित शङ्काके निराकरणार्थ ही कहते हैं कि *'बिश्व कल कीरति नई'*]। भाव यह है कि यद्यपि इन तीनोंने उनकी-उनकी शक्ति जानकर उनको-उनको अर्पण की तथापि तीनों (हिमाचल, सागर और श्रीजनकजी) की सुन्दर नवीन कीर्ति हुई। तात्पर्य यह कि विश्व इस बातको तथा इनके भावको नहीं जानता, वह तो यही कहता है कि इन लोगोंने अपनी-अपनी कन्याएँ दीं। *'नई'* कहनेका भाव कि यह पुरानी बात कि ये उनकी शक्ति हैं, कोई नहीं जानता, सब इसी समयकी बात जानते हैं कि ये इनकी कन्या हैं और इन्होंने इनको दी। यदि पुरानी बात सब लोग जानते तो इनकी कीर्ति न होती। [प० प० प्र० का मत है कि कीर्ति तो पहले भी थी पर वह *'नई'* अर्थात् अपूर्व हुई। कारण कि रघुवंशसे सम्बन्ध हो गया। इस भावकी पुष्टि वाल्मी० (१। ६७। २२) से होती है। यथा—'**जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता। सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम्॥**' जनकजी धनुर्भंग होनेपर विश्वामित्रजीसे कहते हैं कि यह मेरी कन्या कुलकी कीर्ति बढ़ावेगी; क्योंकि राजा दशरथके पुत्र श्रीरामको इसने पति पाया।]

टिप्पणी—२ (क) *'क्यों करै बिनय बिदेहु……'*—भाव यह कि श्रीजानकीजीको अर्पण करके श्रीजनकजीको श्रीरामजीसे कुछ विनती करनी चाहिये थी। जैसे कि आप तो पूर्णकाम हैं, हम आपको देने योग्य नहीं हैं, ये तो आपकी ही शक्ति हैं जिन्होंने हम लोगोंपर असीम कृपा करके हमें वात्सल्यका सुख दिया, आपकी प्राप्ति

करायी, आपकी वस्तुको ही हमने आपके करकमलोंमें समर्पण की है और सुन्दर कीर्ति पा रहे हैं इत्यादि। पर इन्होंने विनती नहीं की, इसपर कहते हैं कि वे विनती कैसे करें, कारण कि (एक तो वे ऐसे ही विदेह हैं दूसरे वे उस) साँवली मूर्तिको देखकर और भी विशेष विदेह हो गये, यथा—'*मूरति मधुर मनोहर देखी। भएउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥*' (२१५।८) (यह दशा उस समय हुई थी जब यह भी न जानते थे कि किसके पुत्र हैं, कौन हैं, और अब तो सब जानते हैं, तनकी विदेहताको क्या कहा जाय?) उस आनन्दमें विनय करनेकी सुधि न रह गयी। [यह प्रेमकी क्रान्त दशा है। (वै०)] (ख) '*करि होम बिधिवत गाँठि जोरी*'''' इति।—'विधिवत्' देहलीदीपक है। विधिपूर्वक होम किया और विधिवत् गाँठ जोड़ी। विवाहपद्धतिमें क्रमसे देवताओंका होम लिखा है, उसी क्रमसे किया, यही 'विधिवत्' करना है। चौथी भाँवरीमें गाँठ जोड़ी जाती है, यही विधिवत् जोड़ना है। यथा—'**चतुर्थी ग्रन्थबन्धनम्**'। [वरके पीताम्बरका एक छोरकन्याके चूनरीके एक छोरमें बाँधा जाता है, इसीको 'गँठबंधन' कहते हैं। यथा—'*मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी। कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी॥*' (गी० १। १०३) मानस तथा गीतावलीमें गाँठ जोड़ने और भाँवरीके क्रमसे तो यही जान पड़ता है कि गाँठ जोड़नेके पश्चात् भाँवरें फेरी गयीं। हाँ, उमा-शिव-विवाहमें भाँवरीके बाद गठबन्धनका क्रम पार्वतीमंगलमें है, यथा—'*लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी। बंधन बंदि ग्रंथिविधि करि ध्रुव देखेउ॥*' (८०)]

टिप्पणी—३ '*जय धुनि बंदी बेद धुनि*'''' इति। (क) '*धुनि*' का अन्वय मङ्गल-गान, निसान सबमें है। जब भाँवरी होती है तब स्त्रियाँ मङ्गल गाती हैं, भाँवरी गिन-गिनकर बाजा बजाते हैं, पण्डित लोग वेद पढ़ते हैं, इत्यादि। वही उत्साह यहाँ गोसाईंजी लिख रहे हैं। जय-जयकारकी ध्वनि, भाटोंकी यशोगानकी ध्वनि, वेदध्वनि, मङ्गलगानकी ध्वनि और नगाड़ोंकी ध्वनि इन सबोंकी सुहावनी ध्वनि हो रही है, इसीसे देवता '*सुनि हरषहिं*''''। (ख) यह समय सबसे श्रेष्ठ है, अतः इस समय सबसे श्रेष्ठ कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करते हैं। (जान पड़ता है कि इस समयके लिये देवताओंने कल्पवृक्षके फूल लाकर रख लिये थे, अथवा संकल्पमात्रसे इसी समय उन्होंने कल्पवृक्षके पुष्प प्राप्त कर लिये।) देवता समय-समयपर फूल बरसाते ही हैं, पर भाँवरोंका समय सर्वश्रेष्ठ है, इसपर कल्पवृक्षके फूल बरसाये, इसीसे उन्हें यहाँ '*बिबुध*' (विशेष बुद्धिमान्) नाम दिया और '*सुजान*' कहा। (भाँवरें होनेसे अब अपने मनोरथकी पूर्ण तैयारी हो गयी यह समझकर कल्पवृक्षके फूल बरसाये। स्वार्थी हैं, इसीसे रावणवधके अनन्तर सीतामिलनके समय और राज्याभिषेकके समयमें फूल नहीं बरसाये। प० प० प्र०)

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरि देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं॥ १॥
जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहौं सो थोरी॥ २॥
राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं॥ ३॥
मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा॥ ४॥
दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥ ५॥
भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे॥ ६॥

अर्थ—सुन्दर वर और कन्या संख्यापूर्वक सुन्दर भाँवरें फेर रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक नेत्रोंका लाभ ले रहे हैं॥ १॥ मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं हो सकता, जो कुछ भी उपमा कहूँ तो वह लघु एवं थोड़ी ही होगी॥ २॥ श्रीराम और श्रीसीताजीकी सुन्दर परछाहीं मणिखम्भोंमें झलक रही है (ऐसी जान पड़ती हैं) ॥ ३॥ मानो कामदेव और रति बहुतसे रूप धारण करके उपमारहित श्रीरामविवाहको देख रहे हैं॥ ४॥ दर्शनकी लालसा और संकोच (दोनों ही कुछ) कम नहीं हैं। अर्थात् बहुत हैं। (इसीलिये) बार-बार प्रकट होते और छिपते हैं॥ ५॥ सब देखनेवाले आनन्दमें मग्न हो गये, राजा जनकके समान सभी अपनी सुध भूल गये॥ ६॥

प० प० प्र०—'*कुअँरु कुअँरि*' इति। यहाँ वर-वधू अथवा वर-कन्या न कहकर '*कुअँरु कुअँरि*'

शब्द देनेका भाव यह है कि इस समय समस्त देखनेवालोंके हृदयमें इस नूतन दाम्पत्यके लिये वात्सल्यभाव भर रहा है। अब अवधवासी सीताजीको अपनी ही स्नुषा मानते हैं और जनकपुरवासी श्रीरामजीको अपना ही दामाद समझते हैं।

टिप्पणी—१ (क) *'कल भावँरि देहीं'* इति। यहाँ *'कल संख्याने'* धातु है अर्थात् *कल* =संख्या करके। सब जनकपुरवासियोंका मनोरथ यही रहा है कि *'पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू।'* (३१०। ६) उस मनोरथकी यहाँ पूर्ति हुई कि दोनोंको भाँवरी देते देख रहे हैं। *'नयन लाभु सब सादर लेहीं'* अर्थात् मनोरथके अनुसार सब भली प्रकार नेत्रोंका लाभ ले रहे हैं। *'लेब भली'''* यहाँ चरितार्थ हुआ। (ख) *'जाइ न बरनि'''* इति। अर्थात् देखते ही बनती है, कहते नहीं बनती। *'जो उपमा कछु कहौं'''* अर्थात् पहले तो कुछ कहते बनती ही नहीं और यदि कुछ उपमा कहूँ भी तो वह थोड़ी ही लगती है। पुनः भाव कि इनमेंसे एककी तो उपमा है ही नहीं जैसा पूर्व दिखा आये हैं तब जोड़ीकी उपमा कहाँसे मिल सकती है? (ग) *'राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं। जगमगात मनि खंभन माहीं॥'* श्रीरामसीताकी जोड़ी सुन्दर है, इसीसे परछाहींको भी सुन्दर कहा। (घ) *'मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा।'''* इति। जोड़ीकी जो भी उपमा सोचते हैं वह थोड़ी सिद्ध होती है, अतः परछाहींकी उपमा देते हैं कि मानो काम और रति हैं, पर ये परछाहींकी सुन्दरताके समान भी नहीं ठहरते। इनका थोड़ा होना आगे कहते हैं, यथा—*'दरस लालसा सकुच न थोरी'* । *'धरि बहु रूपा'* का भाव कि एक रूपसे देखकर तृप्ति नहीं होती, इसीसे अनेक रूप धरकर देखते हैं। *'अनूपा'* क्योंकि *'जो उपमा कछु कहौं सो थोरी'* पूर्व कह आये हैं। अनुपमका भाव (क० १। १५-१६) से स्पष्ट हो जायगा। यथा—*'देखे हैं अनेक ब्याह, सुने हैं पुरान बेद, बूझे हैं सुजान साधु नर-नारि पारखी। ऐसे समसमधी समाज ना बिराजमान, राम से न बर दुलही न सीय सारिखी।'* (१५), *'बानी बिधि गौरी हर सेसहू गनेस कही, सही भरी लोमस भुसुंडि बहु बारिषो। चारिदस भुवन निहारी नर-नारि सब नारदको परदा न नारद सो पारिखो॥ तिन कही जगमें जगमगाति जोरी एक, दूजो को कहैया औ सुनैया चष चारि खो। रमा रमारमन सुजान हनुमान कही, सीय-सी न तीय, न पुरुष राम-सारिखो।'* (१६) [*'बहु रूपा'*— खंभे चारों ओर हैं और बहुत हैं। फिर प्रत्येक खंभेमें अनेक रत्न जो स्वयं विचित्र रंगके हैं लगे हुए हैं। इसीसे एक साथ कई-कई खंभोंमें और अनेक रत्नोंमें युगल जोड़ीका प्रतिबिम्ब देख पड़ता है। अतः बहु रूप धरना कहा। (मा० सं०) पुनः भाव कि काम और रतिके तो दो-ही-दो नेत्र हैं, इससे समाधान नहीं होता। मणि-रत्नोंमें पहलू होते हैं, प्रत्येक पहलूमें प्रतिबिम्ब पड़ता है और रत्नोंके वर्णानुसार ही प्रतिबिम्बका वर्ण देख पड़ता है; इससे भी *'बहुरूपा'* कहा। (प० प० प्र०)]

नोट—*'राम सीय सुंदर प्रतिछाहीं।''''''बहोरी'* इति। श्रीरामजी और श्रीसीताजी दूलह-दुलहिनवेषमें भाँवरी फेर रहे हैं, उस समयकी मनोहरता इस जोड़ीकी अनुपम है। कोई उपमा नहीं मिली तब कविने उनकी परछाहीं—जो चलतेमें मणिके खंभोंमें जगमगाती देख पड़ती है और फिर ज्यों ही जोड़ी आगे बढ़ती है और पिछले खंभे आड़में पड़ जाते हैं तो उनमेंसे वह प्रतिबिम्ब गायब हो जाता है और जिन खम्भोंके सामने अब पहुँचे उनमें वही प्रतिबिम्ब पुनः प्रकट हो जाता है—इसकी उपमा देना चाही, वह भी न मिली, तब इसकी उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो यह जोड़ीका प्रतिबिम्ब नहीं है किन्तु यह कामदेव और उसकी स्त्री हैं। वे यहाँ खंभोंमें क्यों आये और क्यों कभी देख पड़ते हैं और फिर छिप जाते हैं फिर देख पड़ते हैं, फिर गायब हो जाते हैं?—उसका उत्तर देते हैं कि उनको मनोहर जोड़ीके दर्शनकी बड़ी लालसा है, इससे बहुतसे रूप धरकर देखने लगते हैं, साथ ही जब कुछ संकोच होता है तब छिप जाते हैं। क्या संकोच है? इसके कारण टीकाकारोंने अपने-अपने मतानुसार यह कहे हैं—

पं० रामकुमारजी कहते हैं कि संकोचका कारण है अपने रूपकी तुच्छता। [पुनः कारण यह है कि लोग जान लेंगे कि हम खंभोंमें छिप-छिपकर देख रहे हैं तो वे हमें देखकर हँसेंगे, कि अरे! हमने तो काम और रतिकी सुन्दरताकी बड़ी प्रशंसा सुनी थी, पर ये तो कुछ भी नहीं हैं।]

बैजनाथजी कहते हैं कि 'संकोच यह है कि इस मनोहर जोड़ीके सामने अपने सौन्दर्यका अभिमान न रह गया, अपनी सुन्दरता तुच्छ समझ रहे हैं, इसी लज्जासे प्रकट होते डरते हैं। पर संकोचसे तो लालसा पूरी नहीं हो सकती और लालसा है तो मानापमानका विचार कैसा? अतः समझना चाहिये कि ईश्वरतत्त्व एक है, काम भगवान्‌का पुत्र है—*'कृष्ण तनय होइहि पति तोरा।'* पुत्रको माता-पिताका विवाह देखनेमें संकोच हुआ ही चाहे।'

श्रीसंतसिंहजी पंजाबी लिखते हैं कि 'कामदेवके शत्रु महादेवजी यहाँ उपस्थित हैं; उनके डरसे छिपा फिरता है। इसीलिये वह मानो श्रीरामचन्द्रजीके संग-संग फिरता है। अर्थात् जिस ओर प्रभु जाते हैं, उसी ओरसे मणिखम्भोंमें वह प्रकट होता है, दूसरी ओरसे छिप जाता है।'

टिप्पणी—२ *'बहोरि बहोरी'* अर्थात् बार-बार। भाव यह कि काम और रतिने यद्यपि बहुत रूप धारण किये हैं, तब भी उनकी तृप्ति नहीं होती, इसीलिये दर्शनके लिये बारम्बार प्रकट होते हैं।

टिप्पणी—३ *'भये मगन सब……'* इति। भाव कि श्रीरामजानकीजी उपमेय और काम-रति उपमान दोनों उपमेय उपमानकी अवधि हैं, दोनोंको देखकर सब मग्न हो गये। [*'जनक समान अपान बिसारे'* का अर्थ यह भी है कि 'जनक ऐसे लोग जो अपनपौ भूले हुए थे, वे भी माधुर्यके आनन्दमें डूब गये, तब औरोंकी क्या कही जाय? (रा० प्र०) जानकीमंगलमें इस स्थानपर कहा है—*'सिंदूरबंदन होम लावा होन लागी भाँवरी। सिलपोहनी करि मोहनी मन हर्‍यो मूरति साँवरी॥'* (९०) इस तरह *'अपान बिसारे'* का अर्थ है कि सबके मन हर लिये गये, बिना मनके तनकी सुध कहाँ?]

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी। नेग सहित सब रीति निबेरी॥ ७॥
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥ ८॥
अरुन पराग जलजु भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के॥ ९॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥ १०॥

शब्दार्थ—नेग=वह वस्तु या धन जो विवाह आदि शुभ अवसरोंपर सम्बन्धियों, पुरोहितों, नौकर-चाकरों तथा नाई-बारी आदि काम करनेवालोंको उनकी प्रसन्नताके लिये नियमानुसार दिया जाता है। बँधा हुआ पुरस्कार। **निबेरी**=निबटाई, समाप्त की, चुकायी।

अर्थ—मुनियोंने आनन्दपूर्वक भाँवरी फिरवायीं॥ ७॥ श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजीके सिरमें सिंदूर दे रहे हैं। वह शोभा किसी प्रकार भी नहीं कही जाती॥ ८॥ (मानो) कमलमें भली प्रकार लाल पराग भरकर सर्प अमृतके लोभसे चन्द्रमाको भूषित कर रहा है॥ ९॥ फिर वसिष्ठजीने आज्ञा दी (तब) दूलह और दुलहिन (दोनों) एक आसनपर बैठे॥ १०॥

टिप्पणी—१ (क) *'प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी'* इति। (उपमेय, उपमान, दृष्टान्त और दार्ष्टान्त श्रीरामजानकी और काम-रति दोनों एकत्र हो गये, यह देख *'भये मगन सब देखनिहारे'*, और भाँवरी फिरानेवाले मुनि आनन्दमें मग्न होते हुए भी कुछ सावधान हैं; इससे उनको सबसे अलग *'प्रमुदित'* कहा)। *'प्रमुदित……भाँवरी फेरी'* कहनेसे पाया गया कि इनको नेग परिपूर्ण मिला, इससे इन्होंने बड़े आनन्दसे भाँवरी फिरायी। (ख) *'नेग सहित सब रीति निबेरी'* कहनेका भाव कि चौथी भाँवरी रोकी जाती है, जबतक पुरोहित अपना पूरा नेग नहीं ले लेते तबतक वे चौथी भाँवरी नहीं फिरने देते, जब नेग पा जाते हैं तभी फिरने देते हैं। *'नेग सहित'* कहकर जनाया कि पूरा नेग मिल गया। *'निबेरी'* से जनाया कि सफाईसे (बड़ी सुन्दर रीतिसे) समाप्त की। [प्र० सं० में हमने लिखा था कि अन्तिम भाँवरीपर पुरोहितका नेग होता है। जबतक नेग नहीं मिलता पुरोहित उसे रोके रहता है] (ग) *'कुँअरु कुँअरि कल भाँवरि देहीं'* उपक्रम है और *'भाँवरी फेरी'* उपसंहार। (उपक्रममें *'कल'* शब्द देकर संख्या करना सूचित किया था, पर यह न जान पड़ा कि कै भाँवरें हुईं। इस प्रसङ्गमें युक्तिसे यह बात भी कविने जना दी है)। उपक्रमसे उपसंहारतक सात चौपाइयाँ हैं। सात चौपाइयोंमें भाँवरीका

उल्लेख करके सात भाँवरें होना लक्षित कर दिया। (घ) *'सोभा कहि न जाति बिधि केहीं'* इति। किसी प्रकारसे नहीं अर्थात् न उपमेयद्वारा न उपमानद्वारा, न अपनी उक्तिसे न ग्रन्थ देखकर और न अनुभवसे। (ङ) भाँवरीके पश्चात् सिंदूरवन्दन (सिंदूरदान) होता है वही यहाँ कहते हैं।

'अरुन पराग जलजु भरि नीके····'। इति

पं० रामकुमारजी अर्थ करते हैं कि 'कमलमें अच्छी तरहसे लाल परागको भरकर सर्प चन्द्रमाको भूषित करता है।' इस अर्थमें अरुण पराग सिंदूर है; कमल श्रीरामजीका हाथ है। *'नीके भरना'* पाँचों उँगलियोंसे भरना है, सिंदूर पाँचों उँगलियोंसे भरा जाता है। चन्द्रमा श्रीजानकीजीका ललाट है। भूषित करना सिंदूरका लगाना है (माँग भरना है)। अहि श्रीरामजीकी भुजा है, यथा—*'भुजग भोग भुजदंड कंज दर चक्र गदा बनि आई'* (विनय० ६२ विन्दुमाधवछबि)। अमृत सुहाग है; अमृतकी प्राप्तिसे मृत्यु नहीं होती, इसीसे सुहाग अमृत-समान है। पतिकी मृत्यु न हो इसलिये सिंदूरवन्दन होता है। चन्द्रमाको देखकर कमल सम्पुटित होता है, सिंदूर भरनेमें पाँचों उँगलियाँ सम्पुटित हुई हैं।

यही अर्थ बैजनाथजी, पाँड़ेजी, बाबा हरिहरप्रसादजीने भी किया है। इनके मतानुसार मुखछबि, मंदहास, प्रेमरस इत्यादि अमृत है, श्रीसीताजीका मुखमण्डल चन्द्रमा है। लाल-लाल करतल कमल है, उँगलियाँ कमलदल हैं। शेष सब वही है जो ऊपर लिखे गये।

यहाँ केवल उपमान कहकर उससे उपमेयका अर्थ प्रकट किया गया है। अरुणपराग, जलज, भरि नीके, शशि, अहि, अमी और भूष ये सब उपमान हैं। इनसे जो उपमेयका अर्थ प्रकट होता है वह ऊपर लिखा गया है। यहाँ 'रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार' और 'गौणीसाध्यवसानलक्षणा' वीरकविजीके मतसे है। बैजनाथजी कहते हैं कि अतिशयोक्तिद्वारा अभूतोपमा है। बाबू श्यामसुन्दरदासजीने यहाँ लुप्तोपमा अलङ्कार कहा, वीरकविजीने उसका विरोध किया है। वे लिखते हैं कि यहाँ बिना वाचक पदके 'गम्य असिद्ध विषया फलोत्प्रेक्षा अलङ्कार' है। पंजाबीजी इस अर्थमें यह दोष बताते हैं कि 'सर्प भुजदण्डके लिये कहकर फिर हथेलीके लिये भिन्न पद जलज देना ठीक नहीं बनता। दूसरे, विवाह मङ्गलका समय है और यहाँ सीताजीको रामचन्द्रजीका प्रथम स्पर्श है। इस प्रथम ही अवसरपर सर्पकी उपमा भुजाओंको देना योग्य नहीं'; अतः उनके मतानुसार *'भूषअहि'* क्रिया है, जिसका अर्थ है—भूषित करता है। कमल भूषित करता है और कहता है कि अब हम-तुम वैर छोड़कर मित्र हो जायँ। वह जलमें सदा रहता ही है। अमृतका लोभ है जिसमें कभी सम्पुटित न हो, सूखे नहीं।

संत उन्मुनी टीकाकारका मत है कि '**अहिर्दैत्यविशेषः स्यात्सूर्योऽप्यहिरहिध्वजः**' इति। *'अहि'* का अर्थ यहाँ सूर्य है। भाव यह है कि सूर्य यों तो सदा अपनी किरणोंसे चन्द्रमाका पोषण करता ही रहा, पर आज उसे भी चन्द्रमाके अमृतका लोभ हो आया है; इससे वह अनूठे-से-अनूठा अरुण रंगका केशर अपने प्रियवर कमलमें ही भरकर चन्द्रमाको भूषित करने लगा है। यहाँ सूर्यके स्थानमें रामजी, चन्द्रमा किशोरीजी, जलज हस्तकमल और अरुण पराग सिंदूर है······'।

प० प० प्र०—१ सीतामुख शशि है। मुखछबि वा मुखका रूप सुधा है, यथा—*'जौं छबि सुधा पयोनिधि होई', 'पियत नयनपुट रूप पिऊषा।'* श्रीरामजीका कर कमल है। कमलको सुधाकर सुधाका लाभ तीनों लोकमें नहीं है, इसीसे इस समय मानो वह चन्द्रबिम्बमें ही अमृत पानेके लोभसे प्रयत्न कर रहा है। और इस (कर) कमलने अमृतका लाभ कर ही लिया तभी तो जटायुके विषयमें *'कर सरोज सिर परसेउ',* और कह सके कि *'तन राखहु ताता'* तथा बालीके सिरपर हाथ फेरकर कह सके कि *'अचल करौं तन'* और हनुमान्‌जी और विभीषणजीको तो चिरञ्जीव कर ही दिया। इसी समयसे *'कर'* अमृतमय हो गया।

२-अहिका अर्थ सर्प लेनेमें बड़ी हानि है और विरोध भी। क्योंकि सूर्यकी संनिधिमें तो कमल विकसित ही रहता है और चन्द्रमा निस्तेज, इससे उसमेंसे अमृत लाभ करनेको इच्छा अविवेक है। रामविवाह-प्रसङ्ग

(दो० ३१६ से ३२५ तक) में केवल एक बार *'रघुकुलकमलरबि'* की उपमा श्रीरामजीको दी गयी है और वह भी सुरवरोंके सम्बन्धमें। विधुवदनियोंका जहाँ सम्बन्ध है वहाँ रविकी उपमा विसङ्गत है।

३—*'अहि'* पाठ लेनेमें भी काव्यसौन्दर्यहानि है। आनन्दमय वात्सल्यरसपूर्ण, शृङ्गारमय वातावरणमें *'अहि'* को लानेमें रसहानि होगी। भुजको अहिकी उपमा देते हैं पर संभोगशृङ्गारके वर्णनमें। यथा—'**स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियः।**' (वेदस्तुति श्रीभागवत) एक बार सर्पोंने अमृत लाभका प्रयत्न किया तो द्विजिह्व हो गये। फिर वे प्रयत्न करनेका साहस कैसे करेंगे?

नोट—प्र० सं० में हमने लिखा था कि पं० रामकुमारजी और पंजाबीजीका एक मत है पर उनके हस्तलिखित पत्रेमें जो है वह हमने ऊपर दिया है जिससे उनका मत *'भूष अहि'* पाठकी ओर है। वे लिखते हैं कि यहाँ न चन्द्र है, न सर्प और न अमृत ही है। सर्प अमृतके लिये चन्द्रमाके समीप जाता है, इसकी उपमा (गोस्वामीजीने गीतावलीमें दी) है। यथा—*'देखु सखी हरिवदन इंदु पर। चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि, कहि न जाइ सोभा अनूपबर॥ बालभुअंगिनि निकर मनहु मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर'।* (कृष्णगीतावली २१) प्र० सं० में हमने पंजाबीजीवाला ही अर्थ ठीक समझा था। उसीको अर्थमें दिया था। परन्तु अब विचार करनेसे *'भूष अहि'* को एक शब्द माननेमें संकोच होता है। ऐसा प्रयोग गोस्वामीजीने कहीं और किया हो, सो हमको नहीं मालूम। गोस्वामीजी यदि यहाँ इसे एक शब्द लिखते तो *'भूषिअहि'* पाठ होता, जैसे *'देखिअहि', 'जनिअहि'।*

टिप्पणी—२ *'बर दुलहिनि बैठे एक आसन'* इति। प्रथम श्रीजानकीजी दाहिने बैठी थीं, सिंदूरवन्दन-समय बायीं ओर बिठायी गयीं। अब पुनः वसिष्ठजीकी आज्ञासे एक आसनपर बैठे, जिसमें श्रीजानकीजी दक्षिण ओर हैं।

(हरिगीतिका)

छंद—बैठे बरासनु रामु जानकि मुदित मन दसरथु भये।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक एहु मंगलु महा॥ १॥
तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साजु सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीरति उर्मिला कुँअरि लै हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभा मई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥ २॥

शब्दार्थ—**लई हँकारि कै**=बुला लिया। **कुसकेतु**=राजा जनकके छोटे भाई कुशध्वज राजा।

अर्थ—श्रीराम-जानकीजी श्रेष्ठ आसनपर बैठ गये। राजा दशरथ मनमें आनन्दित हुए, अपने सुकृतरूपी कल्पवृक्षमें नये फल देख उनका शरीर बारम्बार पुलकित हो रहा है। चौदहों लोकोंमें उत्साह भर गया, सभी कहने लगे कि रामचन्द्रजीका ब्याह हो गया। जिह्वा एक है और यह मङ्गल महान् (बहुत बड़ा) है, (भला वह) किस प्रकार वर्णन करके समाप्त कर सके?॥ १॥ तब वसिष्ठजीकी आज्ञा पाकर और विवाहका सामान सजाकर राजा जनकने श्रीमाण्डवी, श्रीश्रुतिकीर्ति और श्रीउर्मिलाजी इन कन्याओंको बुला लिया। फिर पहले राजा कुशध्वजकी बड़ी कन्याको जो गुण, शील, सुख और शोभाका रूप ही थीं, प्रेमपूर्वक सब रीति करके राजाने श्रीभरतजीको ब्याह दिया॥ २॥

टिप्पणी—१ (क) *'अपने सुकृत सुरतरु फल नये'* इति। भाव कि कल्पवृक्षमें तीन फल लगते हैं—अर्थ, धर्म और काम। [सुरतरु धर्म और मोक्ष नहीं दे सकता। स्वर्गमें कल्पवृक्षोंका वन होनेपर भी इन्द्रको स्वर्गसे भी जाना पड़ा। (प० प० प्र०)] उसमें श्रीरामजानकीदर्शनरूपी फल नहीं लगता।

इसी प्रकार सुकृतरूपी कल्पवृक्षसे चार फलोंकी प्राप्ति होती है, श्रीराम-जानकीजीकी प्राप्ति नया फल है। (पुनः भाव कि अभीतक और जितने सुकृती हुए उनको सुकृतरूपी कल्पतरुसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये ही चार अधिक-से-अधिक मिले, पर इनके सुकृतकल्पतरुमें नवीन-नवीन फल मिलते जाते हैं जो किसीको नहीं मिले। पहले श्रीराम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न मिले, अब श्रीजानकीजी मिलीं। श्रीसीतारामजी किसी औरके पुत्र-पतोहू न हुए। अभी आगे और नये फल मिलेंगे। *'नये'* बहुवचन है। श्रीराम और श्रीजानकीजी ये दो नये फल हैं)। (ख)—*'भरि भुवन रहा उछाहु'* इति। एक बार पूर्व उत्साहका चौदहों भुवनोंमें भरना कह चुके हैं, यथा—*'भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥'* (२९६। ३) इसीसे यहाँ *'चारि दस'* चौदह नहीं कहा, यहाँ भी वही जान लेना चाहिये। (ग) *'राम बिबाह भा सबही कहा'* इति। (*'सबही कहा'* का क्या प्रयोजन है? क्या सब न कहते तो विवाहमें कुछ कसर रह जाती? उत्तर—यह विवाहकी अन्तिम रीति है। इससे सब विवाहके साक्षी हो जाते हैं।) विवाह-पद्धतिमें लिखा है कि सब लोग कहें कि विवाह हुआ। **'ततो ग्रामवचनं च कुर्युः'** यहाँतक जब वेदवाक्य हो गया तब ग्राम (जनकपुर) निवासियों आदिने कहा कि 'विवाह हो गया', वही बात गोस्वामीजी महाराजने लिखी। (जैसा-जैसा विवाहमें होता गया वैसा-ही-वैसा क्रमसे लिखते आ रहे हैं। सब बातें साभिप्राय हैं, निरर्थक कोई नहीं।) (घ)—*'केहि भाँति बरनि सिरात……'* इति। भाव यह कि यह महान् मङ्गल है, अनेक जिह्वावाले तो इसका वर्णनकर पार नहीं पा सकते; यथा—*'प्रभु बिबाह जस भएउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥'* (३६१। ६) तब मेरे तो एक ही जीभ है, मैं कैसे कह सकूँ? (ङ) यहाँ श्रीरामविवाह-वर्णनकी इति लगायी—*'केहि भाँति……'*।

टिप्पणी—२ *'तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु……'* इति। (क) *'तब'* अर्थात् जब श्रीरामविवाह हो गया तब। (ख) *'बसिष्ठ आयसु पाइकै'* कहनेका भाव कि श्रीजनकजी अपनी ओरसे नहीं कह सकते थे कि हमारी अन्य कन्याओंसे अपने अन्य पुत्रोंका विवाह कर लीजिये (यद्यपि यह चाह उनके तथा सभी पुरवासियोंके मनमें तभीसे रहा है कि जबसे उन्होंने सब भाइयोंको देखा है। यथा—*'पुर नर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं। ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ येहि पुर हम सुमंगल गावहीं॥……सखि सब करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।'* (३११) विशेष आगे नोटमें देखिये।) (ग) *'सँवारि कै'* भाव कि जिस श्रद्धासे श्रीसीताजीका विवाह किया था, उसी श्रद्धासे तीनों लड़कियोंका विवाह करते हैं। [अतः जैसे श्रीसीताजी सँवारकर मण्डपमें लायी गयी थीं वैसे ही ये सब सँवारकर लायी गयीं, यथा—*'सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहि चलीं लवाई॥'* (३२२। ८)] (घ) *'लई हँकारि कै'* इति। जनकजीके बुलानेका भाव यह है कि ये बड़े भाई हैं। इनके सामने कुशध्वजजी अपनी कन्याको न बुला सकते थे—(यह हिंदू वा पुरानी आर्यसंस्कृति थी)। बड़े भाई होनेसे प्रधानता श्रीजनकजीको ही है। उन्होंने बुलाया और उन्होंने ब्याह दिया। रहा कन्यादान, सो कुशध्वजजीने किया, क्योंकि आगे कहते हैं कि *'जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी॥'* विधि यही है कि पिता कन्यादानका सङ्कल्प करे। यथा—**'पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा।'** (ङ) *'माण्डवी श्रुतिकीरति उर्मिला'*—यहाँ तीनों बहिनोंके बुलानेमें क्रम नहीं है, क्रम होता तो 'माण्डवी उर्मिला श्रुतिकीरति' ऐसा लिखते (छोटे-बड़ेके विचारसे)। आगे विवाह क्रमसे लिखा है (क्योंकि बड़ी कन्याके रहते पहले छोटीका विवाह नहीं हो सकता) और क्रमका कोई प्रयोजन न था इससे यहाँ क्रमसे नहीं लिखा। श्रीमाण्डवीजी और श्रीश्रुतिकीर्तिजी दोनों सगी बहिनें हैं, इससे इनको एक साथ लाये, श्रीमाण्डवीजी बड़ी हैं, इससे उनको प्रथम बुलाया, श्रीउर्मिलाजी उनसे छोटी हैं। (श्रीश्रुतिकीर्तिजीको पहले बुलाकर यह भी दिखाया कि हमारी संस्कृतिमें बड़े भाईका अपने छोटे भाई आदिपर कितना प्रेम रहता था।)

नोट—*'कुसकेतु'*— निमिकुल राजर्षि स्वर्णरोमाके पुत्र ह्रस्वरोमा हुए। इनके दो पुत्र शीरध्वज और

कुशध्वज हुए। श्रीशीरध्वजजी बड़े हैं। इनको राज्य देकर पिता वनको चले गये। यही राजा जनक हैं। श्रीउर्मिलाजी इनकी औरस कन्या हैं। संकाश्यनगरके राजा सुधन्वाने मिथिलाको घेर लिया, (यह कथा पूर्व (२४४।५) में लिखी गयी है), और अन्तमें मारा गया। तब उस नगरका राज्य श्रीजनकजीने श्रीकुशध्वजजीको दे दिया। (वाल्मी० १। ७१। १२—१९) श्रीमाण्डवीजी और श्रीश्रुतिकीर्तिजी इन्हींकी अनुपम सुन्दरी कन्याएँ हैं। श्रीविश्वामित्रजीने श्रीवसिष्ठजीकी सम्मतिसे राजा जनकसे श्रीभरत-शत्रुघ्नजीके लिये श्रीकुशध्वजजीकी दोनों कन्याएँ देकर इक्ष्वाकुकुलको सम्बन्धमें बाँध लेने और कन्याओंके विवाहसे निश्चिन्त हो जानेकी बात कही, जिसको उन्होंने शिरोधार्य किया। यथा—'**उभयोरपि राजेन्द्र सम्बन्धेनानुबध्यताम्। इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतः पुण्यकर्मणः॥ ८॥''एवं भवतु''''११।**' (वाल्मी० १। ७२)

टिप्पणी—३ '*कुसकेतु कन्या*''' इति। (क) '*प्रथम जो*' अर्थात् जो ज्येष्ठा कन्या है। प्रथम कन्या कहनेका भाव कि श्रीरामजी ज्येष्ठ भ्राता हैं, उनको अपनी ज्येष्ठा कन्या 'सीताजी' ब्याह दीं। अन्य भाइयोंमें श्रीभरतजी ज्येष्ठ हैं और इधर माण्डवीजी जेठी कन्या हैं; अतः इनका विवाह भरतजीसे हुआ। '*प्रथम जो*' कहकर जनाया कि बड़े-छोटेके क्रमसे विवाह हुआ जिसमें परिवेत्ता-परिवेत्ती दोष न लगे। (ख) '*गुन सील सुख सोभा मई*' इति। माण्डवीजीको सुखमयी कहा; क्योंकि आगे इनको सुषुप्ति अवस्था कहेंगे। सुषुप्ति अवस्था सुखमयी है। जैसे ३२३। २ में श्रीसीताजीको '*सब भाँति पुनीता*' कहकर तुरीयावस्थारूप जनाया था।

छं०—जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय* दीन्ही ब्याहि लषनहि सकल बिधि सममानि कै॥
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥ ३॥
अनुरूप बर दुलहिनि परस्पर लखि सकुचि हिय हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुरगन बरषहीं॥
सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन्ह सहित बिराजहीं॥ ४॥

शब्दार्थ—**तनय** (तनया)=पुत्री, कन्या। **आगरी**=घर, खान। **उजागरी**=प्रसिद्ध, विख्यात। **अनुरूप**=उपयुक्त, अनुकूल, सदृश।

अर्थ—श्रीजानकीजीकी छोटी बहिन (श्रीउर्मिलाजी) को सब सुन्दरी स्त्रियोंकी शिरोमणि जानकर, उस

---

* जनक—१७२१, १७६२, छ०, को० रा०। तनय—१६६१, १७०४। ☞ पं० रामकुमारजी भागवतदासजीकी पुस्तकसे पाठ करते थे। उसमें यहाँ 'जनक' पाठ है 'जनक' पाठको लेकर वे एक भाव यह कहते हैं कि 'जनकजीकी दो कन्याएँ, श्रीसीता और श्रीउर्मिलाजी हैं, इसीसे इनके संकल्पमें 'जनक' नाम दिया गया है, यथा—'तिमि जनक रामहिं सिय समरपी''''' तथा यहाँ 'सो जनक दीन्हीं ब्याहि लषनहि''''।' श्रीमाण्डवी और श्रीश्रुतिकीर्तिजी श्रीकुशध्वजजीकी कन्याएँ हैं, अतः इनके संकल्पमें जनकका नाम नहीं दिया। 'नृप' और 'भूपति' का देना कहा। 'नृप' और 'भूपति' से राजा कुशध्वजका संकल्प करना सूचित किया। अ०रा० में जनकका ही चारों बेटियाँ ब्याहना कहा है। वाल्मीकीयमें प्रथम राजा जनकने श्रीभरत-शत्रुघ्नजीसे श्रीमाण्डवी-श्रुतिकीर्तिका पाणिग्रहण करनेको कहा है। तदनन्तर विधिपूर्वक विवाह होना लिखा है जिससे कुशध्वजजीका कन्यादान करना लिया जा सकता है। मानसमें भी यहाँ ब्याह देना कहकर आगे 'जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहि करनी॥' और फिर 'कर जोरि जनक बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों। बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥ संबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब बिधि भए।' कहा है। इन शब्दोंसे वेदविधिके अनुसार कुशध्वजजीका अपनी कन्याओंका दान करना लिया जा सकता है।

पुत्रीको (श्रीजनकजीने) सब प्रकारसे सम्मान करके श्रीलक्ष्मणजीको ब्याह दिया। जिसका नाम श्रुतिकीर्ति है, जो सुलोचना, सुमुखि, सब गुणोंकी खान और रूप तथा शीलमें विख्यात हैं, उसे राजाने श्रीशत्रुघ्नजीको (ब्याह) दिया॥ ३॥ (चारों) दूलह-दुलहिनें आपसमें अपने-अपने उपयुक्त जोड़ीको देखकर सकुचते हुए हृदयमें हर्षित हो रहे हैं। सब लोग आनन्दित होकर सुन्दरताकी प्रशंसा कर रहे हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब सुन्दरी (दुलहिनें), सुन्दर दुलहोंके साथ एक ही मण्डपमें ऐसी शोभित हो रही हैं मानो जीवके हृदयमें चारों अवस्थाएँ अपने-अपने स्वामियोंसहित विराजमान हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ (क) *'जानकी लघु भगिनी……'* इति। श्रीसीताजीकी सुन्दरताके विषयमें कहा था *'सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई॥'* (३२३। १) वही सुन्दरतागुण उनकी छोटी बहिनमें वर्णन करते हैं। (प० प० प्र० जी कहते हैं कि श्रीमाण्डवी-उर्मिलादिके सम्बन्धमें, *'सोभा किमि जाइ बखाना' 'सुंदरता बरनि न जाई'* निरूपम आदि कहीं नहीं कहा गया है। अतः उनकी गुण-रूप-सुख-शील-शोभा आदिमें सीताजीकी समानता करना अनुचित है। तुरीयाके सुखकी समानता शेष तीनों अवस्थाओंसे कैसे हो सकती है?) लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजीसे बड़े हैं, इसी तरह उर्मिलाजी श्रुतिकीर्तिजीसे बड़ी हैं, इसीसे उर्मिलाजी लक्ष्मणजीको ब्याही गयीं। (ख) *'जेहि नामु श्रुतकीरति'* इति। श्रीश्रुतिकीर्तिजी श्रीमाण्डवीजीकी छोटी बहिन हैं, इसीसे जो गुण माण्डवीजीमें हैं वही श्रुतकीर्तिजीमें कहते हैं। उनको *'गुन सील सुख सोभा मई'* कहा था, वैसे ही *'सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी'* और *'रूप सील उजागरी'* इनको कहते हैं। दोनों एक-से हैं—

माण्डवीजी—शोभामयी	। गुणमयी	। शीलमयी	। सुखमयी—सुषुप्ति
श्रुतिकीर्तिजी—सुलोचनि-सुमुखि	। गुण-आगरी	। शील-उजागरी	। रूप-उजागरी—जाग्रत्

श्रीशत्रुघ्नजी सबसे छोटे, वैसे ही श्रुतिकीर्तिजी सबसे छोटी, अतः इन दोनोंका ब्याह हुआ। (ग) श्रीरामचन्द्रजीकी शक्ति श्रीसीताजी अर्थात् चन्द्रकी चन्द्रिका हैं। चन्द्र शीतल और श्रीसीताजी भी शीतल। श्रीभरतजीकी शक्ति श्रीमाण्डवीजी हैं। *'बिस्वभरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥'* (१९६। ६) भरतजी विश्वका भरण-पोषण करनेवाले हैं और विश्वभरणपोषणसे शोभा होती है। (इसीसे शोभारूप माण्डवी उनकी शक्ति हैं। माण्डवी शब्द **'मडि भूषायाम्'** धातुसे बना है, **माण्डवी**=भूषणरूप।) श्रीलक्ष्मणजी शेष वा शेषके अधिपति हैं, इससे उनकी शक्ति उर्मिलाजी हैं। *ऊर्मि* =लहर। *'ला आदाने'* धातु है। इस प्रकार, उर्मिला=जो लहरको ग्रहण करे। *'जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥'* (१९७। ८) **रिपुसूदन**=शत्रुको मारनेवाला। शत्रुके मारनेसे कीर्ति 'श्रुति' (कानों) में आती है अर्थात् कीर्ति सुन पड़ती है। अतः श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्नजीकी शक्ति हैं, इनको ब्याही गयीं। [ये भाव आधिभौतिक-दृष्ट्या नामसादृश्यसे सम्मत हैं। (प० प० प्र०)]

नोट—१ *'अनुरूप बर दुलहिनि'* अर्थात् वरके अनुरूप दुलहिन है और दुलहिनके अनुरूप वर है। इस तरह परस्पर एक-दूसरेके अनुरूप हैं। पुनः, श्रीरामजी और श्रीभरतजी श्याम वर्ण हैं तथा उनकी दुलहिनें श्रीसीताजी और श्रीमाण्डवीजी गौरवर्णा हैं। वैसे ही श्रीलक्ष्मणजी और श्रीशत्रुघ्नजी गौरवर्ण हैं, उनकी दुलहिनें श्रीउर्मिलाजी और श्रीश्रुतिकीर्तिजी श्यामवर्णा हैं। इस प्रकार वर्णके अनुसार श्याम-गौर वर्णकी चार जोड़ियाँ हैं। प्रमाण यथा—*'सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥ स्याम गौर सब अंग सुहाए……भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥ लखनु सत्रुसूदन एकरूपा॥'* (१। ३११) **'हिरण्यवर्णां सीतां च माण्डवीं पाटलप्रभाम्। उर्मिलां श्यामवर्णाभां श्रुतिकीर्तिसमप्रभाम्॥'** इति (नारदपञ्चरात्रे) रूप, गुण, स्वभाव और अवस्था आदिसे दूलह-दुलहिन एक-दूसरेके योग्य हैं। टिप्पणी १ (ग) में जो लिखा गया वह भी परस्परकी अनुरूपता ही है।

टिप्पणी—२ (क) *'परस्पर लखि सकुच हिय हरषहीं'* यथा—*'तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेमु*

लखि परै न काहू॥' (२६४। ३) (गुरुजन सब बैठे हुए हैं, इससे परस्पर अवलोकन करनेमें संकोच होता है, यथा—'*गुरुजन लाज समाज बड़ देखि सीय सकुचानि।*' भीतरसे हर्ष है, बाहर संकोच है यथा—'*पुनि पुनि रामहिं चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न।*……' (३२६) छोटा भाई बड़े भाईके सामने अपनी दुलहिनको देखकर सकुचेगा ही)। (ख) '*सब मुदित*……' इति। सुन्दरता देखकर सब मुदित होकर सराहने लगे, तब देवताओंने फूल बरसाये। पहले श्रीरामजीके विवाहमें फूल बरसाये थे, अब तीनों भाइयोंका विवाह हो जानेपर बरसाया। (चारों जोड़ियोंको देखकर उचित समय जानकर फूल बरसाया।)'

टिप्पणी—३ '*सुंदरी सुंदर बरन्ह सब*……' इति। (क) चारों बहिनें चार अवस्थाएँ हैं और चारों भाई विभु हैं। अवस्थाएँ—जाग्रत् (श्रुतिकीर्तिजी), स्वप्न (उर्मिलाजी), सुषुप्ति (माण्डवीजी), तुरीया (श्रीसीताजी) विभु—विश्व (शत्रुघ्नजी), तैजस (लक्ष्मणजी), प्राज्ञ (श्रीभरतजी), अन्तर्यामी (श्रीरामजी) '*जनु*' का भाव यह है कि सब जीवोंके हृदयमें चारों अवस्थाएँ एक साथ नहीं होतीं। मण्डप जैसा दिव्य और अलौकिक है, ऐसा ही दिव्य पुरुष यदि कोई है तो उसके हृदयमें चारों अवस्थाएँ अपने-अपने विभुओंसहित विराजती हैं। जिस निशामें सब सोते हैं उसी निशामें योगी जागते हैं, यह जाग्रत् अवस्था हुई। जिस निशामें सब कोई जागते हैं उसमें योगी सोते हैं, यह स्वप्नावस्था है। स्वरूपके आनन्दमें मग्न होनेपर देहाध्यास न रह गया, यह सुषुप्ति-अवस्था है। स्वरूपकी प्राप्ति 'तुरीयावस्था' है। जैसे श्रीलक्ष्मण-शत्रुघ्नजी एकरूप, वैसे ही विश्व और तैजसका एकरूप है; और जैसे श्रीराम-भरतजी एकरूप, वैसे ही प्राज्ञ और अन्तर्यामी एकरूप।

परमार्थपक्षमें वेदान्तदर्शनके अनुसार जीवात्माकी चार अवस्थाएँ होती हैं—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। तत्त्वबोधकार प्रथम तीन ही अवस्थाएँ मानते हैं। यथा—'**अवस्थात्रयं किम्? जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः।**' चारों अवस्थाओंके चार विभु (स्वामी) माने गये हैं।*

जाग्रत्—यह अवस्था चौबीस तत्त्वों, पञ्च प्राण, दस कर्म और ज्ञान-इन्द्रियाँ, पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत अर्थात् पञ्चतत्त्व, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारसे मिलकर बनती है। इनके द्वारा बुद्धि बाहरी पदार्थोंमें फैली रहती है। इस अवस्थामें इन्द्रियद्वारा सब प्रकारके विषयों-व्यवहारों और कार्योंका अनुभव मनुष्यको होता रहता है। ज्ञानेन्द्रियाँ और उनके विषयोंसे उस अवस्थाका ज्ञान होता है; जैसे कानसे शब्दका, नेत्रसे रूपका, नासिकासे गन्धका, जिह्वासे रसका और त्वचासे स्पर्शका ज्ञान जाग्रत्‌हीमें होता है। इसी अवस्थामें सब बातोंका ज्ञान होता है, यथा—'**जाग्रदवस्था का? श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः शब्दादिविषयैश्च ज्ञायते इति यत्र सा जाग्रदवस्था॥**' (तत्त्वबोध)

यह स्थूल अवस्था है। बाह्यज्ञानका जहाँतक विस्तार है वह सब विश्व कहलाता है। इसलिये विश्वनिष्ठ होनेसे इस अवस्थाका अभिमानी स्वामी चेतन विश्व कहलाता है। अर्थात् इस अवस्थामें रहनेवाले जीवात्माकी संज्ञा विश्व होती है। यथा—'**स्थूलशरीराभिमानी आत्मा विश्व इत्युच्यते।**' (तत्त्वबोध)

स्वप्न—यह अवस्था पञ्चप्राण, दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन सत्रह तत्त्वोंसे बनी हुई होती है। इसमें बुद्धिकी वृत्ति भीतरकी ओर फैली रहती है। अर्थात् इन्द्रियाँ मनमें लीन हो जाती हैं। जाग्रत्-अवस्थामें जो देखा-सुना जाता है उस देखने-सुननेसे जो वासना वा संस्कार उत्पन्न हुए उससे जो प्रपञ्च प्रतीत होता है, विषयोंसहित जो भासमान प्रतीति होती है, वही स्वप्नावस्था है। यथा—'**स्वप्नावस्था केति चेत्? जाग्रदवस्थायां यद्दृष्टं यच्छ्रुतं तज्जनितवासनया निद्रासमये यः प्रपञ्चः प्रतीयते सा स्वप्नावस्था।**' (तत्त्वबोध)

यह सूक्ष्म है। यह सूक्ष्म शरीराभिमानी जीवात्माकी 'तैजस' संज्ञा है। अर्थात् स्वप्नावस्थाका स्वामी 'तैजस' है। यथा—'**सूक्ष्मशरीराभिमानी आत्मा तैजस इत्युच्यते।**' (तत्त्वबोध)

---

* चार अवस्थाओं और उनके चार विभुओंका उल्लेख माण्डू० ९, १०, ११, १२ और श्रीरामोत्तरतापिनी-उपनिषदोंमें आया है। १। १९७ में देखिये।

सुषुप्ति—यह अवस्था समाधि वा मूर्च्छाकी-सी होती है। इसमें अपनेसे चित्तको प्रकर्ष नहीं करना पड़ता। इसमें जाग्रत् तथा स्वप्न-अवस्थाओंके सब तत्त्वोंका लय हो जाता है। इसमें सूक्ष्म शरीरमें सूक्ष्म भोग होता है। 'इसमें सब प्रकारसे ज्ञानका उपसंहार होता है। बुद्धि कारणरूपमें प्रतिष्ठित रहती है। (प० प० प्र०) इसमें जीव नित्य ब्रह्मकी प्राप्ति करता है, पर उसको इस बातका ज्ञान नहीं होता कि मैंने ब्रह्मकी प्राप्ति की है। (शं० सा०) पातञ्जलयोगदर्शनके अनुसार यह चित्तकी एक वृत्ति या अनुभूति है। (श० सा०) 'मैं कुछ नहीं जानता। मैंने सुखसे निद्राका अनुभव किया। इस प्रकारका ज्ञान जब होता है उसीको सुषुप्त्यवस्था कहते हैं।' यथा—'**अतः सुषुप्त्यवस्था का? अहं किमपि न जानामि सुखेन मया निद्रानुभूयते इति सुषुप्त्यवस्था।**' (तत्त्वबोध)

इस कारण-शरीरके अभिमानी आत्माको प्राज्ञ कहते हैं। अर्थात् इस अवस्थामें जीवात्माकी '**प्राज्ञ**' संज्ञा है। इसका स्वामी है '***प्राज्ञ***' अर्थात् प्रकर्ष करके अज्ञ है, उसको कोई ज्ञान नहीं रहता, जैसे सुखकी गाढ़ निद्रामें।—'**कारणशरीराभिमानी आत्मा प्राज्ञ इत्युच्यते।**' (तत्त्वबोध)

तुरीय—'यह चौथी अवस्था मोक्ष, अद्वैत, कैवल्य वा कल्याणरूप है जिसमें समस्त भेदज्ञानका नाश हो जाता है। इसमें परमात्माके सिवा और कुछ भी नहीं देख पड़ता। जीव उसीमें लय हो जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है। (श० सा०) यह केवल शुद्ध निर्विषयानन्दमय मोह—अज्ञान-रहित जीव ब्रह्मकी तादात्म्यावस्था है, यह सहज स्थिति है। इसका स्वामी अन्तर्यामी है। (प० प० प्र०) '**तुरीया**' यथा—'**स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तः पञ्चकोशातीतः सन् अवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्माधारस्तुरीयावस्था अन्तर्यामी देवता।**' (वै०) '**स्थूल''''स आत्मा**' इतना अंश तत्त्वबोधका है, शेष बैजनाथजीकी टीकामें है।)

पूर्व दोहा १९७ में लिखा जा चुका है कि प्रणवकी मात्राएँ वा पाद अकार, उकार, मकार और अर्द्धमात्रा क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीयके वाचक वा रूप हैं। और यह भी बताया गया है कि लक्ष्मणजी जाग्रत्के अभिमानी 'विश्व' के रूपमें भावना करनेयोग्य हैं। शत्रुघ्नजीका आविर्भाव 'उकार' से होनेसे वे स्वप्नके अभिमानी 'तैजस'-रूप हैं। श्रीभरतजी सुषुप्तिके अभिमानी 'प्राज्ञ'-रूप हैं और श्रीरामजी ब्रह्मानन्दके विग्रह हैं। (माण्डू० ९, १०, ११, १२। श्रीरामोत्तरतापिनी-उ०। विशेष दो० १९७ में देखिये।) इन श्रुतियोंके आधारपर श्रीउर्मिलाजी जाग्रत्, श्रीश्रुतिकीर्तिजी स्वप्न, श्रीमाण्डवीजी सुषुप्ति और श्रीसीताजी तुरीया अवस्था हुईं। ये अपने-अपने स्वामियोंसहित मण्डपमें विराजमान हैं। इतनी ही उत्प्रेक्षा है।

'**जनु जीव उर चारिउ अवस्था**''''' इति।

मानसमयङ्क—मण्डपमें तीन आवरण हैं। वे ही तीन आवरण जीवके स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन प्रकारके देह हैं। आत्मा वा जीव चक्रवर्ती महाराज हैं। इस शरीररूपी मण्डपमें जीवरूपी दशरथ चारों पुत्रों और पुत्रवधुओंसे संयुक्त कैसे शोभित हैं मानो चारों अवस्थाएँ स्वामीसंयुक्त विराजमान हों। (इस प्रकार दशरथ और जीव, मण्डप और शरीर उपमेय-उपमान हैं।)

अ० दीपकमें इसका भाव इस प्रकार कहा है—'*मंडप त्रय त्रय देह उर नृप चूड़ामणि जीव। चारि अवस्था उर निकट राजत संयुत पीव॥*' (१०१) जिसका भावार्थ यह है कि श्रीजनकजीने विवाहके लिये जो तीन मण्डप बनवाये हैं वे ही मानो स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन देह हैं। उसके बीचमें चक्रवर्तीजी मानो जीव हैं। उनका उर मण्डपकोष है। श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि 'कोई-कोई मण्डपको जीव कहते हैं। वे सम्प्रदाय तथा सत्संगविहीन हैं, क्योंकि धर्ममें प्रत्यक्ष विरोध पड़ता है।' (अ० दी० च०)

बैजनाथजी—(१) चारों भाइयों और इधर चारों बहिनोंका एक ही साथ विवाह एक ही मण्डपमें और चारों जोड़ियोंका एक साथ विराजमान होना, ऐसा संयोग आश्चर्यमय है; इससे वैसी ही आश्चर्यमय उत्प्रेक्षा यहाँ की गयी। जनकमहाराजके मण्डपमें चारों जोड़ियाँ इस समय सुशोभित हैं। यहाँ राजकुमार अङ्ग और राजकुमारी अङ्गी हैं, कन्याकी प्रधानतासे यहाँ सम्बन्ध जनकजीका जानिये अर्थात् कैसा आनन्द

हुआ मानो जनकजीके जीवके उरमें स्वामियोंसमेत चारों अवस्थाएँ विराजमान हैं। (२) लक्ष्मण विश्वरूप हैं क्योंकि रामकार्यमें सदा सजग रहते हैं और सदा चैतन्य उर्मिलाजी जाग्रत्-अवस्था हैं। तैजसरूप शत्रुघ्न तथा स्वप्नावस्था श्रुतिकीर्ति हैं। प्राज्ञ आनन्दरूप भरतजी तथा सुषुप्ति माण्डवीजी हैं। अन्तर्यामी परब्रह्मरूप रघुनाथजी और तुरीयावस्था श्रीजानकीजी हैं। (३)—जैसे पतियोंसहित चारों कन्याओंको एक मण्डपमें देखा वैसे ही मिथिलेशजीको चारों अवस्थाएँ भी साथ ही सदा प्राप्त हैं, क्योंकि वे सदा तुरीयावस्थामें रहते—विदेह कहलाते और राजभोग भी करते हैं, इससे तीन अवस्थाएँ सुगम ही प्राप्त हैं।

कुछ महानुभाव कहते हैं कि पं० रामकुमारजीने जो कहा वह अद्वैतवादी वेदान्तियोंका एकदेशीय मत है जो जीवको अनित्य और झूठा मानते हैं, परंतु अन्य वेदान्तियोंका मत यह नहीं है, ये जीवको ब्रह्मसे पृथक् और नित्य मानते हैं। इसके मतानुसार चक्रवर्तीजी और जनकजीका जीव-स्थानपर होना ही ठीक है और मण्डप देह-स्थान हुआ। मानसमयङ्कके टीकाकार भी लिखते हैं कि 'मण्डपको जीवसे रूपक करनेमें प्रत्यक्ष विरोध पड़ता है। प्रथम तो चेतनका जड़से रूपक अलग्न है, दूसरे जीव देहहीमें चारों अवस्थाओंको प्राप्त होता है सो देहका रूपक दूसरा क्या होगा?'

वीरकविजीका मत मा० म० से मिलता है। वे लिखते हैं कि 'जीव और दशरथजी, उर और मण्डप, जाग्रत्-अवस्थाएँ और श्रीजानकीजी आदि बहुएँ, ब्रह्म आदि चारों विभु और श्रीरामादि चारों भाई क्रशः उपमान-उपमेय हैं। एक ही मण्डपमें वर और दुलहिनोंका शोभित होना उत्प्रेक्षाका विषय है। सिद्ध होनेपर जीवोंके हृदयमें विभुओंसहित चारों अवस्थाएँ शोभित होती ही हैं। यह 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है।

बाबा हरिहरप्रसादजी मण्डपको जीव मानते हैं।

श्रीनंगे परमहंसजी—(१) एक मण्डप कहनेका भाव यह है कि एक मण्डपमें एक ही वर-कन्याका संयोग होता है। परंतु यहाँ एक ही मण्डपमें चारों वरों और चारों कन्याओंका संयोग है। पुनः अवस्थाका भी एक साथ संयोग नहीं होता, इसीलिये '*जनु*' शब्द दिया है। (२)-यहाँ ग्रन्थकार मण्डपमें दुलहिनोंकी शोभा कह रहे हैं, दुलहोंको साथमें रखा है—'*सुंदर बरन्हि सह*'। क्योंकि 'प्रथम मण्डप और कुमारियोंका संयोग हुआ है तत्पश्चात् दुलहोंका मण्डपसे संयोग हुआ किंतु दूलह सब दुलहिनोंके शोभा-हेतुमें लिखे गये हैं—'*अवस्था बिभुन्ह सहित बिराजहीं।*' इसीलिये मण्डपमें दुलहिनोंकी शोभा लिखी गयी है, क्योंकि जो प्रथमसे उपस्थित है वहाँ दूसरा गया तो जो प्रथमसे उपस्थित है, उसीकी प्राप्तिमें दूसरा लिखा जायगा, न कि दूसरेकी प्राप्तिमें प्रथम लिखा जायगा। अतः कुमारियोंके लिये अवस्थाओंकी उपमा दी गयी।' पुनः(३) जैसे अवस्थाएँ क्रमशः ऐश्वर्यमें एक-से-एक श्रेष्ठ हैं वैसे ही कुमारियोंमें भाव है। श्रुतिकीर्तिजीसे उर्मिलाजी, उर्मिलाजीसे माण्डवीजी और माण्डवीजीसे श्रीसीताजी श्रेष्ठ हैं। इसी प्रकार भाइयोंमें श्रेष्ठता है। पुनः, (४) अवस्थाओंका स्वरूप इस प्रकार है—जाग्रदवस्था वह है जिसमें मोह निवृत्त है, यथा—'*जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥*', '**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**' (गी० २। ६९) स्वप्नावस्था वह है जिसमें कभी-कभी संयोगवश मनके द्वारा संसारका स्फुरण होता रहता है। सुषुप्तिमें मन और इन्द्रियाँ दोनों करके संसारका अभाव हो जाता है। तुरीया मोक्षस्वरूप है जो विदेहदशा कहलाती है। पुनः, (५) और अवस्थामें एकके साथ दूसरीका अभाव रहता है, पर तुरीयामें तीनों लीन रहती हैं क्योंकि वह समर्थ है। पुनः (६) जैसे प्रथम तीन अवस्थाएँ तीनों विभुओंसहित मोक्षकी सहायक हैं और तुरीया मोक्षस्वरूपा है ही, इसी प्रकार तीनों कुमारियाँ तीनों कुमारोंसहित मोक्षपदकी सहायक हैं पर श्रीजानकीजी तो श्रीरामजीके सहित मोक्षकी स्वरूप ही हैं।

कोई महाशय मण्डप और जीवकी समतामें धर्म-विरोध कहते हैं, पर यह नहीं बताते कि कौन-सा धर्म-विरोध है? यदि कहिये कि सामान्य-विशेषका धर्म-विरोध है तो उपमा अथवा समतामें सामान्य-

विशेषका भाव ग्रन्थकार नहीं लेते हैं, रूपकका भाव लेते हैं। प्रमाण, यथा—'*जाहिं सनेह-सुरा सब छाके*' (में श्रीरामस्नेहको मदिरापानकी समता दी गयी है); '*चले जहाँ रावन ससि राहू*' (में रावणको चन्द्रमा और श्रीरामजीको राहु कहा है), इत्यादि। जब ऐसी समतामें धर्मविरोध नहीं है, तब मण्डप और जीवकी समतामें कैसे धर्म-विरोध हो सकता है। फिर मण्डपका ऐश्वर्य भी तो सामान्य नहीं है। यथा—'*सो बरनै असि मति कबि केही*'; '*सो बितान तिहुँ लोक उजागर।*' मूलका शब्द है '*सह एक मंडप राजहीं*'; कैसे एक मण्डप राजहीं? '*जनु जीव उर अवस्था।*' इसमें न दशरथजीके लिये कोई शब्द है, न जनकजीके लिये। फिर जनकजीमें चारों अवस्थाएँ कहनेमें विरोध होगा, क्योंकि चारों कन्याएँ उनकी नहीं हैं और दशरथजीको लेनेमें तो सर्वथा विरोध है क्योंकि कन्याओंके लिये अवस्थाओंकी उपमा है।

'जनु जीव उर चारिउ अवस्था……'

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी—यहाँ कविने सीता, माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्तिके क्रमशः राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके साथ एक मण्डपमें विराजमान होनेकी छबिकी प्रशंसा की है। उपमा देते हैं कि जैसे जीवके उरमें तुरीया, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थाएँ क्रमशः अपने-अपने विभु ब्रह्म, प्राज्ञ, तैजस और वैश्वानरके साथ विराजमान हों।

इन्द्रियोंद्वारा अर्थोपलब्धिको 'जागरित' अवस्था कहते हैं। इन्द्रियोंके उपरत होनेपर जागरितके संस्कारसे उत्पन्न विषयोंकी अनुभूतिको 'स्वप्न' कहते हैं। एक प्रकारके ज्ञानोंके उपसंहार होनेपर बुद्धिके कारण कार्यरूप अवस्थानको 'सुषुप्ति' कहते हैं, और ब्रह्ममें अभेदरूपसे अवस्थानको 'तुरीया या समाधि' कहते हैं।

पञ्चीकृत महाभूत तथा उनके कार्यको 'विराट्' कहते हैं। यही आत्माका स्थूल शरीर है। सो विराट् और जागरितावस्थाके अभिमानी आत्माको वैश्वानर कहते हैं। ये तीनों अकार हैं।

अपञ्चीकृत महाभूत, पञ्चतन्मात्रा और उसके कार्य, पञ्च प्राण, दस इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन सत्रहको 'हिरण्यगर्भ' कहते हैं, यही आत्माका 'सूक्ष्म शरीर' है। हिरण्यगर्भ और स्वप्नावस्थाके अभिमानी आत्माको 'तैजस' कहते हैं। ये तीनों उकार हैं। उपर्युक्त दोनों शरीरोंके कारण, आत्माके अज्ञानको, जो कि आभाससे युक्त होता है, 'अव्याकृत' कहते हैं। यह आत्माका 'कारण शरीर' है। अव्याकृत और सुषुप्ति अवस्था, इन दोनोंके अभिमानीको प्राज्ञ कहते हैं। ये तीनों मकार हैं। साक्षी केवल चिन्मात्रस्वरूप नित्य शुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाव परमानन्दाद्वय आत्माको ब्रह्म कहते हैं। यह तुरीय पद अमात्र है।*

कविने जनकजीके मण्डपकी उपमा जीवके हृदयसे दी है। बृहदारण्यकश्रुति कहती है कि इस ब्रह्मपुरीमें छोटा-सा कमलरूपी गृह (मण्डप) है। उसमें जो दहराकाश है, वह उतना ही है जितना कि यह आकाश है। उसके भीतर द्यावापृथ्वी है, अग्नि और वायु हैं, सूर्य और चन्द्रमा हैं, बिजली है, नक्षत्रमण्डल है, जो कुछ यहाँ है सो सब है और जो यहाँ नहीं है, वह सब भी है। जिस मण्डपकी शोभा देखकर ब्रह्मादेव चक्कर खाते हैं, उसकी उपमा इससे न दी जाय तो किससे दी जाय, और ऐसी सुन्दरियों और सुन्दर वरोंकी उपमा सिवा चारों अवस्थाओं और उनके विभुओंके अन्यत्र कहाँ मिल सकती है? परंतु अध्यात्म-दृष्टिसे वस्तुतः यहाँ 'अनन्वयालङ्कार' है। यहाँ उपमा और उपमेय वस्तुतः एक हैं। तापनीय श्रुति कहती है कि लक्ष्मणजी अकारके, शत्रुघ्नजी उकारके, भरतजी मकारके अवतार हैं और ब्रह्मानन्दैकविग्रह श्रीरामजी अर्धमात्रात्मक हैं। शुभम्। (दोहा १९७ नोट ४ देखिये)

---

* अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म……यावान् वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन् द्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि। यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन् समाहितमिति। (छां० ८। १, ३)

☞ वेदान्तभूषणजीने एक तालिका बनायी है उसे हम नीचे देते हैं—

प० प० प्र०—विवाहप्रकरणमें यह उत्प्रेक्षा क्यों की गयी, यह इन अवस्थाओं और विभुओंको रामायणसे तात्त्विक दृष्ट्या मिलान करनेसे मालूम हो जायगा और इससे रामायणका आध्यात्मिक तत्त्वविचार भी समझमें आ जायगा।

शरीर १	विवरण २	अवस्था. (वधू) ३	तत्सम्बन्धी कर्म ४
स्थूल	पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्चमहाभूत, पञ्चविषय, मन, अहंकार, बुद्धि और महत्तत्त्व—इन २४ तत्त्वोंका व्यापार। यथा—'**महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥**' (गीता १३। ५)	जाग्रत् (उर्मिला)	क्रियमाण
सूक्ष्म	पञ्चप्राण, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धि—इन १७ सत्रह तत्त्वोंका व्यापार। यथा—'**पञ्चप्राणमनोबुद्धिर्बद्धजीवस्य बन्धनम्। अपञ्चीकृतमस्थूलं सूक्ष्मं भोगस्यसाधनम्॥**' (जिज्ञासापञ्चक)	स्वप्न (श्रुतिकीर्ति)	प्रारब्ध भोगमात्र
कारण (वासना)	मोह एव='**अविद्या भगवच्छक्तिबद्धजीवस्य बन्धनम्। सदसद्भ्यामनिर्वाच्यं शरीरे सास्ति कारणम्॥**' (जिज्ञासापञ्चक)	सुषुप्ति (माण्डवी)	संचित
मुक्त शरीर	जीवके संकल्पसे प्राप्त होनेवाला भगवच्छेषत्वका साधनीभूत भगवत्प्रदत्त दिव्य विग्रह जो सच्चिदानन्द है।—'***ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥***'	तुरीया (श्रीसीताजी)	दिव्यशेषत्व भोग

दसों इन्द्रियोंका सम्बन्ध विषयोंके साथ होनेसे ही विश्व (जगत्प्रपञ्च) का ज्ञान होता है। अन्तःकरणमें वृत्तिकी लहरें उठती हैं, वृत्तियाँ विषयोंतक जाती हैं और विषयाकार होकर लौट आती हैं। यह अवस्था (वृत्तिका आना-जाना) उर्मिमय अर्थात् उर्मिला है। विश्वविभुको ही सामर्थ्य है कि वह जाग्रत्-अवस्थाको छोड़कर वृत्तिको भगवान्‌की सान्निध्यमें ले जाय, यदि स्वप्न और सुषुप्तिमें न पड़ जाय। इसी तरह लक्ष्मणजी उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्तिको छोड़कर श्रीसीतारामजीके साथ गये। जीव जाग्रत्‌से ही तुरीयामें प्रवेश करता है। इसीलिये श्रीसीता और उर्मिलाजी दोनों जनककी कन्याएँ हैं (सगी बहनें हैं)।

श्रुतकीर्ति =श्रुत (जो सुना जाय और उपलक्षणसे जो देखा जाय उसकी) कीर्ति (अर्थात् उसका ऐसा कीर्तन करना कि जाग्रत्के विषय मनश्चक्षुके आगे प्रत्यक्ष हो जायँ)। यही स्वप्नावस्था है।

विवरण ५	विभुके नियामक (वर) ६	अवस्था विजयका उपाय ७
जब श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे तत्तद्विषयोंका ज्ञान हो। तात्पर्य यह कि जब जीव जगत्की ममतारूपी रात्रिमें जग जाये— ***जानिय तबहि जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥ यहि जग जामिनि जागहिं योगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥***	श्रीलक्ष्मणजी। श्रीलक्ष्मणजी ही संकर्षण व्यूहके कारण (उत्पादक) एवं नियामक हैं।	श्रीरामजीकी वनयात्रासमय जैसे विचार-सहित श्रीलक्ष्मणजीने '***सब तजि राम चरण लय लावा***', वैसे विचारसहित—'**परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥**' (मुण्डकोपनि०)॥ जगत्-सम्बन्ध-त्यागपूर्वक भजन-परायण होना, नवधाभक्ति करना।
जाग्रत्में देखे-सुने-अनुभवमें विषयोंका साक्षात्रूपेण (स्वप्न-अर्द्धनिद्रामें) भान होना। तात्पर्य कि जगत्के साक्षात्-सम्बन्ध-त्याग रहनेपर भी पूर्व अनुभवित तत्तत्कार्योंका भान होना।	श्रीशत्रुघ्नजी। श्रीशत्रुघ्नजी अनिरुद्ध व्यूहके कारण (उत्पादक)एवं नियामक हैं।	श्रीशत्रुघ्नजीकी तरह श्रीभरत-वद्विवेकी परम भागवत आचार्यकी सेवा करना सत्सङ्ग एवं प्रेमाभक्ति करना।
घोर निद्रा तात्पर्य बुद्ध्यादिसे जगद्व्यापार आदिसे सम्पूर्णतया पृथक् रहना, अर्थात् जगत्का भान किञ्चिन्मात्र नहीं रहता।	श्रीभरतजी। श्रीभरतजी प्रद्युम्न व्यूहके कारण (उत्पादक) एवं नियामक हैं।	श्रीभरतजीके समान विवेक और श्रीरामस्नेह तथा पराभक्ति करना।
पूर्ण ज्ञानमयी आनन्दावस्था	श्रीरामजी। श्रीरामजी वासुदेव व्यूहके कारण एवं नियामक हैं। '**वासुदेवादिमूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम्॥**' (नारदपं०)	(तुरीयावस्था त्याज्य-हेय नहीं है, इसीसे उसके विजयकी बात न सोचकर उसीमें मग्न रहना।) श्रीरामजीके राज्यसिंहासनारूढ़ होनेपर श्रीविभीषणाङ्गदादिके समान परिकरानन्द प्राप्त करनेवाले (***गहे छत्र चामर व्यजन धनु असि चर्म शक्ति बिराजते***)।

बाह्य-विषयका, सत्यवत् ग्रहण दुःखका कारण होनेसे शत्रुवत् है। इस शत्रुका नाश तैजसात्मा करता है। इसलिये शत्रुघ्न नाम यथार्थ है। शत्रुघ्नजी भरतानुगामी हैं वैसे ही श्रुतकीर्तिजी माण्डवीजीकी बहिन हैं।

यद्यपि लक्ष्मण और शत्रुघ्न सहोदर भ्राता हैं तथापि शत्रुघ्नजी उनके अनुगामी न बनकर भरतके अनुगामी हुए। क्योंकि स्वप्न अवस्था और सुषुप्ति सम्बन्धी हैं। जीव स्वप्नसे सुषुप्तिमें प्रवेश करता है। लक्ष्मण-शत्रुघ्न दोनों सहोदर भ्राता हैं, क्योंकि दोनों अवस्थाओंमें विषय-प्रवृत्तिकी समानता है। जाग्रत्‌में प्रत्यक्ष व्यावहारिक सत्तासे विषयोंमें प्रवृत्ति होती है तो स्वप्नमें प्रातिभासिक विषयोंमें प्रवृत्ति होती है, तथापि स्वप्नकालमें इन विषयोंकी सत्ता व्यावहारिक सत्यवत् ही प्रतीत होती है। जाग्रत् और स्वप्नमें विषयप्रतीति एक रूप-सी होनेसे ***'लखनं सत्रुसूदन एक रूपा'*** हैं।

जाग्रत् और स्वप्न दोनोंमें अज्ञान और विपरीत ज्ञानका अस्तित्व रहता है। सुषुप्तिमें केवल अज्ञान होता है, विपरीत ज्ञान नहीं होता। प्राज्ञ अज्ञानावरणसंयुक्त होता है और प्रत्यगात्मा शुद्ध केवलानन्दमय अज्ञानरहित इत्यादि होता है; फिर भी ऊपरसे दोनों आनन्दमय दीखते हैं इससे दोनोंका एक रूप कहा गया—***'भरत रामही की अनुहारी'।*** भरतजी कैकेयीपुत्र हैं, तमोगुणवृत्तिजन्य 'प्राज्ञ' हैं। कैकेयी तमोगुणमय अज्ञानमय है—***'नींद बहुत प्रिय सेज तुराई', 'दाहिन बाम न जानउँ काऊ।'***

माण्डवी सुषुप्त्यवस्था है। सुषुप्तिका आनन्द भूषणरूप लगता है। निद्राका नाश होनेपर स्वप्न और जागृतिजन्य सुख भी भाररूप लगता है। इसीसे तो निद्राके लिये जीव विह्वल हो जाता है। निद्रामें निर्विषयानन्द-ब्रह्मानन्दमें ही बुद्धिके साथ तादात्म्य पाता है, पर अज्ञानका आवरण साथ ही रहता है। इससे माण्डवी तीनोंमें बड़ी, जैसे भरतजी तीनोंमें बड़े। माण्डवी भूषणरूप हैं (मण्ड-मण्डन-माण्डवी)।

जैसे प्रत्यगात्मा, आत्मा सच्चिदानन्दरूप, नित्य, इत्यादि वर्णित की जाती है वैसे ही श्रीरामजी सच्चिदानन्दघन इत्यादि हैं। श्रीसीताजी **'क्लेशहारिणीं सर्वश्रेयस्करीम्'** हैं। तुरीयामें ही सब क्लेशोंका नाश, मोक्षदायक ग्रन्थिभेद होता है—***'छोरन ग्रन्थि पाव जौ सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥'*** अतः सीताजी तुरीया हुई। सीताजी ही ब्रह्माकार अखण्ड वृत्ति हैं, ब्रह्मविद्या हैं। सीता और राम जल और तरङ्गके समान हैं, वैसे ही ब्रह्म और ब्रह्माकार वृत्ति।

दो०—मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपालमनि क्रियन्ह* सहित फल चारि॥ ३२५॥

अर्थ—सब पुत्रोंको बहुओंसमेत देखकर श्रीअवधेशजी ऐसे आनन्दित हुए मानो भूपतियोंके शिरोमणि श्रीदशरथजीने क्रियाओंसहित चारों फल (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) पाये हैं॥ ३२५॥

टिप्पणी—१ (क) ऊपर ***'सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं'*** कहा अर्थात् ***'सुंदरी'*** को प्रथम कहकर तब ***'सुंदर बरन्ह'*** को कहा, इस तरह कन्याओंकी प्रधानता हुई। और यहाँ ***'सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि'*** में पुत्रोंकी प्रधानता कही। क्योंकि पिताके भवनमें कन्याका प्राधान्य है, इसीसे मण्डपतले सुशोभित कहनेमें कन्याओंकी प्रधानता रखी, और वरके यहाँ वरकी प्रधानता रहती है इससे अवधपतिके समीप पुत्रोंकी प्रधानता कही। (बैजनाथजी लिखते हैं कि पूर्व कुमारियोंको अंगी और कुमारोंको अंग कहा था और अब यहाँ कुमारियोंको अंग और कुमारोंको अंगी सूचित किया है। कुमारोंकी प्रधानतासे यहाँ दशरथजी महाराजका आनन्द कह रहे हैं)। (ख) ***'मुदित अवधपति सकल सुत''''निहारि'*** इति। सब पुत्रोंको बहुओंसहित देखकर मुदित हुए, इस कथनका भाव कि एक पुत्रको वधूसमेत देख आनन्दित हुए थे, यथा—***'बैठें बरासन राम जानकि मुदित मन दसरथ भए'*** वैसे ही अब सब पुत्रोंको बहुओंसमेत देख

* क्रियन्ह—१६६१।

आनन्दित हुए। (ग) '*जनु पाये महिपालमनि*' इति। क्रियाओंसहित चारों फलोंकी प्राप्ति कर रहे हैं, इसीसे '*महिपालमनि*' कहा, क्योंकि क्रियाओंसहित सब फल सब राजाओंको नहीं मिलते, राजा दशरथ समस्त राजाओंमें मणिरूप हैं, इससे इनको वे सब प्राप्त हुए।

नोट—१ चारों पुत्रोंको बहुओंसहित देखनेसे जो आनन्द हुआ वह यहाँ उत्प्रेक्षाका विषय है। चारों पुत्र उपमेय हैं और चारों फल उपमान हैं, क्योंकि पुत्र और फल दोनों पुँल्लिङ्ग हैं। इसी प्रकार चारों पुत्रवधुएँ उपमेय हैं और चारों क्रियाएँ उपमान हैं, क्योंकि वधू और क्रिया दोनों स्त्रीलिङ्ग हैं। फल चार हैं और क्रियाएँ भी चार हैं। वैसे ही यहाँ चार पुत्र हैं और चार ही बहुएँ। अर्थ-धर्मादि चारों फलोंकी चाह और आवश्यकता राजाओंको हुआ करती है, इसीसे यहाँ '*अवधपति*' और '*महिपालमनि*' शब्दोंका प्रयोग किया गया।

नोट—२ जितने भी कर्म हैं उनके फल चार ही हैं। कोई अर्थ चाहता है, कोई धर्म, कोई काम और कोई मोक्ष। कोई-कोई एक साथ इनमेंसे कई चाहते हैं। चार क्रियाएँ कौन हैं? अर्थात् किस क्रियासे कौन फल प्राप्त होता है?-इसमें मतभेद है।

पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि—चार फलकी चार क्रियाएँ हैं, यथा—'**आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती। विद्याश्चैताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः॥* आन्वीक्षिक्यां तु विज्ञानं धर्माधर्मौ त्रयी स्थितौ''' तु वार्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ। वार्ता चतुर्विधा लोके वेदे च परिनिष्ठिता। कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं कुसीदं तुर्यमुच्यते॥**' श्रीसीताजी आन्वीक्षिकी हैं, श्रीरामजी मोक्ष हैं। श्रीमाण्डवीजी त्रयी हैं, श्रीभरतजी धर्म हैं; यथा—'*भरतहि धरम धुरंधर जानी।*' (२। २५९) श्रीउर्मिलाजी वार्ता हैं और श्रीलक्ष्मणजी काम हैं। श्रीश्रुतिकीर्तिजी दण्डनीति हैं और श्रीशत्रुघ्नजी अर्थरूप कहे गये। पुनः, यथा—'*अर्थ चातुरी सों मिलै, धर्म सुश्रद्धा जान। काम मित्रता ते मिले, मोक्ष भक्ति ते मान॥*' इसके अनुसार अर्थकी क्रियाचातुरी, धर्मकी उत्तम श्रद्धा, कामकी मित्रता और मोक्षकी क्रिया भक्ति है।

बैजनाथजीका मत है कि 'अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी क्रियाएँ क्रमशः उद्यम, अनुष्ठान, रति और भक्ति हैं। ***अर्थ*** =द्रव्य। शत्रुनाशसे धन बढ़ता है, अतः शत्रुघ्नजी अर्थ हैं। उद्यम [तप, दान आदि] से कीर्ति बढ़ती है, अतः श्रीश्रुतकीर्तिजी उद्यम हैं। ***धर्म*** =सत्य, शौच, तप और दानकी पूर्णता। श्रीभरतजी धर्म हैं क्योंकि इनमें ये सब हैं। क्षत्रियोंका अनुष्ठानपूर्वक कर्म, जैसे कि शास्त्रमें दक्षता, युद्धमें अचलता दानमें उदारता, शूरता, धीरता, तेज आदि धर्मकी क्रियारूप श्रीमाण्डवीजी हैं। ***काम*** =लोकसुखकी परिपूर्णता। पूर्णकाम फलरूप लक्ष्मणजी हैं, कामकी क्रिया तपस्या वा रति श्रीउर्मिलाजी हैं। ***मोक्ष*** =जीवका भवबन्धनसे छूटना। मोक्षफल श्रीरामजी हैं; मोक्षकी क्रिया-भक्ति श्रीजानकीजी हैं।

श्रीदेवतीर्थस्वामीजीने '**धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः**' शार्ङ्गधरके इस प्रमाणसे फलोंका क्रम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह देकर उनकी क्रियाएँ क्रमशः विधिपूर्वक अनुष्ठान, योग, रति और विरति लिखी हैं।

पाँड़ेजी कहते हैं कि सेवा, श्रद्धा, तपस्या और भक्ति चार क्रियाएँ हैं। सेवासे अर्थकी, श्रद्धासे धर्मकी, तपस्यासे कामकी और भक्तिसे मोक्षकी सिद्धि होती है।

मयङ्ककार लिखते हैं कि '*त्रयी वेद रु दंडनीति वाते आतमज्ञान। अर्थ धर्म कामे मुकुति लली ललन्ह*

---

* यह श्लोक रघुवंशकी मल्लिनाथसूरिकृत टीकामें मिलता है। वहाँ यह 'कामन्दक' से उद्धृत बताया गया है। रघुमहाराजको चार विद्याएँ पढ़ायी गयीं। उसी सम्बन्धमें यह श्लोक उद्धृत किया गया है। आगेके श्लोक कहाँके हैं, इसका पता नहीं लगा। सम्भव है कि 'कामन्दक' के ही हों। वह ग्रन्थ इस समय हमें नहीं मिला। भा० १०। २४। २१ में चार प्रकारकी वार्ताका प्रसंग आया है। यथा—'कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते। वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम्॥'—पर इन श्लोकोंसे मानसके इस प्रकरणका अर्थ कुछ मेरे समझमें नहीं आया। विद्वान् लोग लगा लें और यदि पं० रामकुमारजीका भाव समझा सकें तो मुझे लिख दें।

को जान॥' अर्थात् वेदत्रयी, दण्डनीति, प्रियवार्ता और आत्मज्ञान—ये चार क्रियाएँ हैं सो क्रमसे श्रुतकीर्ति, उर्मिला, माण्डवी और सीताको जानो और अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष क्रमसे शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और रामचन्द्रको जानो।' वे ही मानस-अभिप्राय-दीपकमें यों लिखते हैं कि-'*मेधा श्रद्धा मैत्रता शान्ति स्वकर मिथिलेश। अर्पेउ फल सह प्राप्ति लखि प्रेम मगन अवधेश॥'*

चारों पुत्रोंको पुत्रवधूसंयुक्त पाया मानो क्रियासंयुक्त चारों फलोंकी प्राप्ति हुई। अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—ये चारों फल मानो मेधा, श्रद्धा, मैत्रता और शान्तिसंयुक्त मिले। अभिप्राय यह कि राजा जनकने तपोबलसे चार क्रियाओंस्वरूप चार पुत्रियोंको प्राप्त किया। जिनके द्वारा शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और रामरूपी अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी प्राप्ति हुई। पुनः, उन फलोंको क्रियासहित राजा दशरथको अर्पण कर दिया क्योंकि क्रिया फल बिना निष्फल प्रतीत होती है और फल क्रिया-बिना क्रियाहीन है।—(इनके मतानुसार लक्ष्मणजी धर्म और भरतजी काम हैं। मा० त० वि० कारने धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यको चार फल मानकर कर्म, योग दृष्टानुश्रविक विषयदोषदर्शनादि, संयमको क्रियाएँ मानी हैं।)

प० प० प्र० स्वामीजी यह कहकर कि शत्रुघ्नको अर्थ और भरतको कामसे उत्प्रेक्षित करनेको जी नहीं चाहता, वे धर्म, विराग, भगवत्-धर्मानुराग और भजनको चार फल और श्रद्धा, स्वकर्मनिष्ठा, सत्संग तथा नवधा भक्तिको उनकी क्रिया मानते हैं।

☞(वस्तुतः अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—ये ही चार फल हैं। जहाँ चार फलोंकी चर्चा एक साथ आती है वहाँ सर्वत्र इन्हीं चारका ग्रहण होता है।)

		पं०रा०कु०	मा० म०	पं०रा०कु०	पाँ०, शिला०	वै०	रा० प०	पोद्दारजी
अर्थकी	क्रिया	दण्डनीति	वेदत्रयी	चातुरी	सेवा	उद्यम	उद्योग	यज्ञ
धर्मकी	क्रिया	त्रयी	दण्डनीति	सुश्रद्धा	श्रद्धा	अनुष्ठान	विधिपूर्वक अनुष्ठान	श्रद्धा
कामकी	क्रिया	वार्ता	प्रियवार्ता	मित्रता	तपस्या	रति वा तपस्या	रति	योग
मोक्षकी	क्रिया	आन्वीक्षिकी	आत्मज्ञान	भक्ति	भक्ति	भक्ति	विरति	ज्ञान

टिप्पणी—दोहेका भाव यह है कि जिनको योगीलोग देखते हैं, वे ही श्रीदशरथजी महाराजको क्रियाओंसहित चार फलके समान मिले हैं।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुअँर ब्याहे तेहि करनी॥ १॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी॥ २॥
कंबल बसन बिचित्र पटोरे। भाँति भाँति बहु मोल न थोरे॥ ३॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत काम दुहा सी॥ ४॥
बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा॥ ५॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने॥ ६॥
दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहि आवा॥ ७॥

शब्दार्थ—**भूरी**=अधिकता, बहुतायत। **कंबल**=ऊनी वस्त्र। **करनी**=बिधि, रीति। **उबरा**=बचा।

अर्थ—जैसी विधि श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी वर्णन की गयी, उसी रीतिसे सब कुमार ब्याहे गये॥ १॥ दहेजकी अधिकता कुछ कही नहीं जा सकती। मण्डप स्वर्ण और मणियोंसे भर गया॥ २॥ भाँति-भाँतिके बहुत-से ऊनी वस्त्र कम्बल, विचित्र सूती वस्त्र और विचित्र पाटाम्बर (रेशमी कपड़े) जो बहुमूल्यके थे और थोड़े न थे (अर्थात् बहुत थे)॥ ३॥ हाथी, रथ, घोड़े, दास और दासियाँ अलङ्कारोंसे सजी हुई कामधेनु-सरीखी गायें, इत्यादि॥ ४॥ अनेक वस्तुएँ थीं, उनका उल्लेख कैसे

किया जा सके? जिन्होंने देखा वे ही जानते हैं, कही नहीं जा सकतीं॥ ५॥ लोकपाल देखकर सिहाने लगे। अवधेशजीने सभीको सुख मानकर ले लिया॥ ६॥ जिस याचकको जो भाया वही उसको दिया गया। जो बच रहा वह जनवासेमें आया॥ ७॥

टिप्पणी—१ [(क) ऊपर तीनों भाइयोंका विवाह तो कहा गया, पर कोई रीति व्यवहार नहीं कहे गये। केवल '*ब्याहि नृप भरतहि दई*' '*सो तनय दीन्ही ब्याहि लषनहि*' और '*सो दई रिपुसूदनहि*' इतना ही कहा गया। उस कमीको पूरा करने और संदेहनिवारणार्थ कहते हैं कि '*जसि''''''करनी।*' इस कथनसे पूर्वकी सब विधियोंका वर्णन इन सबोंके विवाहमें भी आ गया] (ख) '*रहा कनक मनि मंडप पूरी*' इति। कनक मणि चारों जोड़ियोंका उपमान है, यथा—'*मरकत कनक बरन बर जोरी।*' (३१५। ७), इसीसे इन्हें प्रथम लिखा। ये अन्य सब वस्तुओंसे श्रेष्ठ हैं क्योंकि इनमें चारों जोड़ियोंकी उपमा मिली है,—'*जो बड़ होत सो राम बड़ाई।*' '*मनि*' कहनेसे सब प्रकारकी मणियोंका ग्रहण हो गया। '*रहा मंडप पूरी*' कहकर जनाया कि अब वहाँ और कनक तथा मणि रखनेकी जगह नहीं रह गयी। (ग) '*कंबल बसन पटोरे*' कहकर जनाया कि वस्तु अनेक हैं, '*बिचित्र*' से अनेक रंगके और '*भाँति-भाँति*' से अनेक प्रकारके अर्थात् भिन्न-भिन्न बनावटके जनाये। '*बहु मोल*' से कामदारी, जरकशी, कारचोबी आदि तथा स्वर्ण और मणियोंसे युक्त जनाया। (घ) '*गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलंकृत''''''*' इति। गऊको अलंकृत करके (सींग, खुर सब सुवर्ण आदिसे भूषित किये जाते हैं, झूल ऊपरसे पहनायी जाती है, इत्यादि) दान करनेकी विधि है। यहाँ गऊको अलङ्कृत कहा और उसी पंक्तिमें गज, रथ, तुरग, दास और दासीको गिनाकर सूचित किया कि ये सब भी अलङ्कृत हैं। दास-दासी सेवाके लिये दिये। रानीकी सेवाके लिये दासियाँ और राजाकी सेवाके लिये दास दिये गये। '*गज*' और '*तुरग*' के बीचमें '*रथ*' को लिखकर जनाया कि गजरथ दिये और तुरङ्गरथ दिये। रथ हाथी और घोड़े जुते हुए दिये गये। (ङ) '*बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा*'— भाव कि कुछ वस्तुओंका उल्लेख किया, इतनी अगणित वस्तुएँ हैं कि उनको गिनाया नहीं जा सकता। '*कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा*' का भाव कि वस्तु देखते ही बनती है, कहते नहीं बनती; पुनः भाव कि जिन्होंने देखा है उनसे भी कहते नहीं बनती (तब मुझसे कैसे कहते बन पड़े?—'*गिरा अनयन नयन बिनु बानी*' का भाव इसमें आ गया)।

टिप्पणी—२ (क) '*लोकपाल अवलोकि*' का भाव कि वहाँ सब लोकपाल (विप्रवेषमें) विद्यमान हैं, यथा—'*बिधि हरिहरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥ कपट बिप्र बर बेष बनाए। कौतुक देखहिं अति सचु पाए॥*' (१। ३२१। ६-७) प्रथम कहा कि '*कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा*', अब देखनेवालोंका हाल कहते हैं कि लोकपालोंने देखा तो ललचाने लगे, ईर्ष्यापूर्वक प्रशंसा करने लगे। (ख) '*लीन्ह अवधपति''''''*' —'*अवधपति*' कहनेका भाव कि अवधमें बड़ा भारी ऐश्वर्य है, यथा—'*अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज। सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥*' (७। २६) '*अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई॥*' (२। ३२४। ६) ऐसे ऐश्वर्यसम्पन्न श्रीअवधके ये स्वामी हैं तब इनको कोई क्या देगा? '*लीन्ह सब सुख माने*' का भाव कि उनको कोई कमी न थी कि लेते, परंतु वे बड़े कृपालु चित्तके हैं, उन्होंने (केवल राजा जनकके सम्मानार्थ) सब ले लिया और उसमें बहुत सुख माना। अर्थात् संतुष्ट हो गये कि जनकजीने हमें बहुत दिया। (ग) '*दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा*' इति। भाव यह कि इतना दायज दिया गया कि उसको लेनेभरको याचक भी न मिले तब जनवासेमें आया। याचक यही '*कंबल बसन बिचित्र पटोरे*' बिछा-बिछाकर मणि और सोना बाँध-बाँधकर लाद-लादकर ले-ले गये।

गौड़जी—यहाँ राजा जनकका तो वह वैभव, वह ऐश्वर्य कि उनके दानके धनको देखकर कुबेर दाँतों-तले अँगुली दबाते हैं, उधर '*अवधपति*' की वह बेपरवाई कि बेतकल्लुफ लेकर आम हुक्म दे देते हैं कि भाई, जिसे जो कुछ पसन्द आये ले ले। विरागी राजा जनकके अप्रतिम ऐश्वर्यको देखकर राजा दशरथको लेशमात्र आश्चर्य, राग वा मोह न हुआ, मानो उन्होंने जो कुछ दिया उसकी कोई कीमत न

थी। वहीं लुटा दिया। परंतु वह धन भी इतना अधिक था कि याचकोंके ले लेनेपर और तृप्त हो जानेपर भी बच रहा। एक अर्द्धालीमें कविने जनक और दशरथ दोनोंका अतुल ऐश्वर्यका खुले हाथों दान व्यञ्जित किया है। बेटेको बापसे बढ़ा हुआ होना ही है। आगे जाकर कहेंगे—*'जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिये दस माथ। सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥'*

तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥ ८॥

छं०—सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनिबृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥
सिरु नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किए।
सुर साधु चाहत भाउ सिंधु कि तोष जल अंजलि दिए॥ १॥
कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब बिधि भये।
येहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लये॥ २॥
ए दारिका परिचारिका करि पालिबी करुना नई*।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यों कई †॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥ ३॥

शब्दार्थ—**प्रेम लड़ाई कै**=बड़े लाड़-प्रेमसहित। **संपुट किए**=अंजलि बाँधे हुए। **संबंध**-नातेदारी। **गथ**=मूल्य, दाम, यथा—*'बाजार रुचिर न बनै बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।'* (७। २८)

अर्थ—(राजा जनकने) आदर, दान, विनती और बड़ाई करके सब बारातका सम्मान कर बड़े ही आनन्दपूर्वक महामुनियोंके समाजकी बहुत प्रेमसंयुक्त पूजा करके वन्दना की। (वे) प्रणाम करके, देवताओंको मनाकर, हाथ जोड़े हुए सबसे कहते हैं कि देवता और सन्त तो भाव चाहते हैं (भावके भूखे हैं), कहीं एक अञ्जलि जल देनेसे समुद्र संतुष्ट (तृप्त) हो सकता है?॥ १॥ फिर भाईसहित जनकमहाराज हाथ जोड़कर कोसलराज दशरथजीसे प्रेम और शील-स्वभावसे सने हुए मनोहर वचन बोले कि 'हे राजन्! आपके सम्बन्धसे अब हम सब प्रकारसे बड़े हुए, इस राजसाजसमेत हमको बिना दामका लिया हुआ सेवक समझिये॥ २॥ इन लड़कियोंको टहलनी मानकर इनका पालन-पोषण नित्य नवीन दया करके कीजियेगा। मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मैंने बहुत बड़ी ढिठाई की कि आपको यहाँ बुला भेजा। फिर रघुकुलभूषण श्रीदशरथजीने समधीको सम्पूर्ण सम्मानका निधि कर दिया। उनकी आपसकी विनती कही नहीं जाती, दोनोंके हृदयमें प्रेम परिपूर्ण भरा है॥ ३॥

टिप्पणी—१ (क) *'तब कर जोरि·····'* अर्थात् जब दहेज दे चुके (याचक चले गये और दहेज जनवासेमें

---

* मई—१७२१, १७६२, को० रा०। नई—१६६१, १७०४।

† कई—१६६१, रा० प्र०, १७०४, को० रा०। दई—१७२१, १७ ६२ छ०। 'ढीठ्यो०' भाववाचक कर्मकारक है। परंतु इस तरहका भाववाचकरूप इस ग्रन्थमें अन्यत्र प्रयुक्त हुआ याद नहीं पड़ता, सम्भवतः इसीसे 'दई' पाठ कर दिया गया हो। 'दई' पाठका अन्वयार्थ होगा—'हे दई (देव)! मैं बहुत ढीठ हूँ।' यदि 'दई' को ठीक मानें तो 'ढीठ्यो' यहाँ चिन्त्य है। अन्वयके साथ 'ढीठो' ही ठीक होता है। 'हे' सम्बोधन-चिह्न विवक्षित है। दई=देव।

चला गया) तब बारातका सम्मान किया। (ख) *'सनमानि……आदर दान बिनय बड़ाइ कै'*— 'आदरदान' करके सम्मान किया, मृदु वाणीसे विनय और बड़ाई की। यथा—*'सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी॥'* (३२१। ५) (ग) *'प्रमुदित महामुनिबृंद बंदे'* कहनेसे सूचित हुआ कि बारातियोंकी अपेक्षा मुनियोंमें विशेष भाव है। (महामुनियोंके समाजकी *'प्रेम लड़ाइ'* 'प्रेम लड़ाकर' पूजा की और वन्दना की। प्रेम लड़ानेका विशेष अभिप्राय यह है कि केवल राजाकी ओरसे प्रेम-पूर्ण पूजा थी यह बात नहीं है। महामुनियोंके समाजको भी विदेहराजसे घनिष्ठ प्रेम है। दोनों ओरसे अधिकाधिक प्रेमका मुकाबला हो रहा है, इसी अभिप्रायसे 'लड़ाना' शब्दका प्रयोग है। *'प्रमुदित'* दोनोंमें लगता है। प्रेम लाड़से वे भी प्रमुदित हुए)। (घ) *'सिरु नाइ देव मनाइ'* अर्थात् प्रणाम करके और प्रार्थना करके। (ङ) *'सिंधु कि तोष जल अंजलि दिये'*, यथा—'**भावमिच्छन्ति देवताः**', '**अपांनिधिं वारिभिरर्चयन्ति दीपेन सूर्यं प्रतिबोधयन्ति। ताभ्यां तयोः किं परिपूर्णता स्याद् भक्त्यैव तुष्यन्ति महानुभावाः॥**' भाव यह कि आप समुद्र हैं, हमारा यह सब आदर-दान आदि अञ्जलिभर जल है। तात्पर्य कि जैसे समुद्रका अञ्जलिभर जल लेकर समुद्रको दिया जाय, वैसे ही हमारा सब द्रव्य सुरसाधुके प्रसादसे है, आपका दिया हुआ है, तब मैं भला आपको क्या दे सकता हूँ!

नोट—१ बाबा हरिदासजीने *'सिंधु'* के बदले *'भानु'* पाठ दिया है। वे कहते हैं कि समुद्रको जलाञ्जलि नहीं दी जाती और सूर्यको जल दिया ही जाता है। परंतु सर्वत्र *'सिंधु'* ही पाठ मिलता है। दूसरे समुद्र तीर्थपति हैं, उसकी देवताओंमें गिनती है। उपर्युक्त श्लोक भी *'सिंधु'* पाठका पोषक है।

नोट—२ गौड़जी—समुद्र देवता है। उसकी पूजामें यदि हम अर्घ्यके लिये तीन अञ्जलि जल दें, तो उसे हमारे पूजा-भावसे *'तोष'* अवश्य होगा, उसे जलकी मात्रासे तोष नहीं होगा। क्योंकि वह तो स्वयं जलनिधि है। भाव यह है कि मैं आपको क्या देनेलायक हूँ। जो देनेकी हिम्मत (साहस) कर रहा हूँ उसके तो आप सागर हैं। मैं तो केवल अपना सद्भाव इस रूपमें प्रकट कर रहा हूँ। एक अञ्जलि जलसे समुद्रकी कौन-सी कमी पूरी होगी, या कौन-सा जल-धन बढ़ जायगा?

टिप्पणी—२ (क) *'कर जोरि जनकु बहोरि……'* इति। (बहोरिसे जनाया कि पहले भी विनती की थी, अब भाईसहित विनती करते हैं। अथवा, महामुनिवृन्द और देवताओंसे विनय करनेके पश्चात् अब कोसलराजसे विनय करते हैं)। *'कर जोरि'* यह तन वा कर्म है, *'बोले मनोहर बयन'* यह वचन और *'सनेह'* मनका कर्म है; अर्थात् विनयमें तन-मन-वचन तीनों लगाये हैं। (ख) राजाने बारातियोंको *'दान, मान, बिनती, बर, बानी'* से और मुनियों तथा देवताओंको प्रेमसे संतुष्ट किया, दशरथजी महाराजको दहेज देकर और बन्धुसहित मनोहर वाणीसे संतुष्ट किया। (ग) *'एहि राजसाज समेत……'* अर्थात् जहाँतक यह राज्य है और जितना हमारा साज (अर्थात् लक्ष्मीका विलास) है, इसको अपना जानिये। *'बिनु गथ लये'* अर्थात् हम बिना मोलके आपके हाथ बिके हैं।

टिप्पणी—३ (क) *'बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यों कई'* इति। बुलाकर कन्या दी, यह हमारी बड़ी भारी ढिठाई (धृष्टता) है। तात्पर्य कि हमें उचित था कि कन्या लेकर आपके यहाँ जाकर देते। हम आपके दास हैं, आप स्वामी हैं। सेवकको उचित है कि स्वामीको न बुलावे, स्वयं स्वामीके पास जाय। (ख) *'पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमाननिधि……'* इति। भानुकुलभूषणका भाव कि भानुवंश बहुत ही महिमावाला है, उसके भी आप भूषण हैं, इसीसे आपने बड़ा सम्मान किया, जैसे आप समुद्रके समान बड़े हैं वैसे ही समुद्रके समान सम्मान किया। ☞यहाँ यह दिखाते हैं कि जो जैसा ही अधिक बड़ा है, कुलवान् है, वह वैसा ही दूसरेका सम्मान करता है। यथा—*'सनमाने प्रिय बचन कहि रबिकुल-कैरवचंद।'* *'राम कस न तुम्ह कहहु अस हंसबंस अवतंस।'* (२। ९), *'गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रघुकुलदीपा॥'* (२। २९६) वैसे ही हंस-बंस-अवतंस श्रीदशरथजीने श्रीजनकजी और श्रीकुशध्वजजीका बड़ा भारी सम्मान किया। [*'सकल सनमाननिधि समधी किये'* का भाव यह है कि उनके आदर-सत्कारकी इतनी प्रशंसा की, मानो उनको सम्मानका समुद्र ही बना दिया। जैसे, कहा कि दान देनेवाला बड़ा होता

है न कि लेनेवाला, दाता प्रतिगृहीतासे सदा ही बड़ा है। आपने हमें कन्या दानमें दी, भला आपके बराबर कौन हो सकता है? आप दोनों भाइयोंके असंख्य गुण हैं। आपने ऋषियों और सब बारातियोंका बड़ा उत्तम सत्कार किया। आपकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है, इत्यादि रीतिसे उनका सम्मान किया, यथा—'**प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा॥**' (वाल्मी० १। ६९। १४), '**युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौ मिथिलेश्वरौ। ऋषयो राजसङ्घाश्च भवद्भ्यामभिपूजिताः॥**' (१। ७२। १८)] (ग) '*कहि जाति नहिं बिनती परस्पर*……' इति। शंका—'परस्पर विनती करना कैसे कहा? राजा जनकका विनती करना योग्य ही है, पर दशरथजी महाराजका विनती करना तो उचित नहीं हो सकता?' समाधान—श्रीदशरथजी महाराजका सम्मान और श्रीजनकजीकी विनती परस्पर कही नहीं जाती (यह अर्थ है)। '*कर जोरि जनक बहोरि बंधु समेत*……' यहाँसे प्रारम्भ किया और '*कहि जाति नहिं बिनती परस्पर*' पर समाप्ति की। अथवा, श्रीदशरथमहाराजने सम्मानका समुद्र कर दिया और जनकजीकी विनती कही नहीं जाती अर्थात् यह भी समुद्रवत् है। परस्परके प्रेमसे दोनोंके हृदय परिपूर्ण हैं, (इस प्रकार अर्थ है)।

छं०—बृंदारकागन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी जय धुनि बेदधुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखी मंगल गान करत मुनीस आयेसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

दो०—पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन॥ ३२६॥

शब्दार्थ—**बृंदारक**=देवता। **कौतूहल**=कुतूहल=कौतुक=तमाशा=आनन्द। **कोहबर**=वह स्थान या घर जहाँ विवाहके समय कुलदेवता स्थापित किये जाते हैं और जहाँ कई प्रकारकी कुलरीतियाँ और अनेक हास-विलासकी बातें की जाती हैं। काष्ठजिह्वास्वामी इसे 'कौतुकघर' कहते हैं। ऐसा भी कहते हैं कि यहाँ वर नेगके लिये रूठता है, इससे इसका नाम कोहबर हुआ।

अर्थ—राजा जनवासेको चले, देवतावृन्द फूल बरसाने लगे, आकाश और नगरमें नगाड़ेकी ध्वनि, जयध्वनि और वेदध्वनि हो रही है। आकाश और नगर दोनोंमें खूब कौतूहल हो रहा है। तब मुनीश्वरकी आज्ञा पाकर सुन्दरी सखियाँ मङ्गलगान करती हुई दुलहिनोंसहित दुलहोंको लिवा लेकर कोहबरको चलीं। सीताजी बारम्बार रामजीको देखती हैं। (फिर) सकुचा जाती हैं, पर मन नहीं सकुचता, प्रेमपियासे नेत्र सुन्दर मछलीकी छबिको हर रहे हैं॥ ३२६॥

टिप्पणी—१ (क) '*बृंदारकागन सुमन*……' इति। जब राजा जनवासेको चले तब देवता आदि सभी उनको प्रसन्न करनेके लिये अपनी-अपनी सेवा करने लगे। देवता फूल बरसाते और नगाड़े बजाते तथा जय-जयकार कर रहे हैं, मुनि लोग वेदध्वनि करते हैं और (नट आदि) कौतुकी लोग कौतुक दिखा रहे हैं। ['*कौतूहल भले*' के भाव कि सर्वत्र भली प्रकार आनन्द छा रहा है। अथवा अनेक प्रकारके अच्छे-अच्छे तमाशे हो रहे हैं। '*भले*' के दोनों अर्थ होते हैं। भली प्रकार, खूब या बहुत; और अच्छे-अच्छे।] (ख) '*तब सखी*……*कोहबर ल्याइ कै*'— विवाह-पश्चात् बारात तो जनवासेको लौट जाती है, पर दूलह कोहबरमें जाता है, यह लोकरीति है।

टिप्पणी—२ '*पुनि पुनि रामहि चितव सिय*……' इति। (क) समञ्जन (परस्पर अवलोकन) की रीति-रस्मको छोड़ जबतक श्रीसीताजी मण्डपतले रहीं, तबतक उन्होंने लज्जाके मारे श्रीरामजीकी ओर नहीं देखा। अब एकान्त है, केवल सखियाँ हैं, सो भी चलती फिरती हैं, गान करती हैं, हास्य कर रही हैं, अतः यह अच्छा मौका समझकर समय पाकर पुनः देख रही हैं, पर यहाँ भी सखियोंका संकोच है,

लोकलाजको निबाहना है; (अत: संकोचसे दृष्टि श्रीरामजीकी ओरसे हटाकर नीचे कर लेती हैं। पर मनमें तो दर्शनोंकी भारी लालसा होनेसे फिर देखने लगती हैं। नेत्रोंको संकोच होता है, फिर भी मनकी उत्सुकता और प्रेमजलकी प्यास दृष्टिको बारम्बार उधर कर देती है। देखती हैं फिर दृष्टि हटा लेती हैं, फिर मौका पाकर देखती हैं, इत्यादि। अत: *'पुनि पुनि चितव'* कहा।) (ख) *'हरत मनोहर मीन छबि'* इति। मीनके दृष्टान्तका भाव कि जैसे मछली स्थिर नहीं रहती वैसे ही श्रीरामजीके दर्शनोंके लिये नेत्र थिर नहीं हैं; जैसे मीनकी छबि जलके प्रेमसे है, वैसे ही नेत्र श्रीरामजीके प्रेमके प्यासे हैं, (जैसे मछली जलके लिये छटपटाती है, वैसे ही नेत्र दर्शनजलके लिये आकुल हैं।) नेत्रोंकी उपमा मीन है। 'नेत्र मनोहर मीनकी छबिको हरते हैं' यह कहकर जनाते हैं कि मनोहरसे भी अधिक मनोहर हैं। (ग) *'प्रेम पिआसे नैन……'* इति। यहाँ श्रीरामजीके प्रति जो प्रेम है वही जल है। नेत्र प्यासे हैं, इसीसे पलभर भी नहीं छोड़ सकते, जैसे मछली जलको पलभर भी नहीं छोड़ सकती। प्रेमके प्यासे नेत्र मीनकी छबिको हरण करते हैं, यह कहकर जनाया कि मीनसे उनमें विशेषता है; वह यह कि मछली जब जलमें रहती है तब प्यासी नहीं रहती पर श्रीजानकीजीके नेत्र श्रीरामजीको देखते हुए भी प्यासे हैं, देखनेसे तृप्ति नहीं होती। (घ) भीतरकी इन्द्रियोंमें मन प्रबल है, सो श्रीरामजीमें लगा हुआ है, वह नहीं सकुचाता। बाह्येन्द्रियोंमें नेत्र प्रबल हैं, सो वे दर्शनके प्यासे हैं। यथा—*'दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन॥'* (२। २६०) *'निज पद नयन दिये मन रामचरन महँ लीन।'* (५। ८) *'बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा॥'* अत: मन और नेत्र दोनों ही पलभर भी दर्शन नहीं छोड़ना चाहते, इसीसे बार-बार देखते हैं।

प० प० प्र०—*'हरत मनोहर मीन छबि……'* इति। मछली जलमें रहकर भी उसके अंदर जल नहीं पी सकती। वैसे ही श्रीसीताजी भी श्रीरामरूपसागरमें तैरती तो थीं पर मनसे, नेत्रोंकी प्यास बुझानेके लिये नयन—मीनोंको ऊपर उठाना पड़ता है किन्तु संकोचसे मीनरूपी नेत्रोंको फिर नीचे गिराना पड़ता है, जैसे जलाशयमें पानी पीनेको मीन। यह मछलीका स्वभाव है। ☞इससे बताया कि स्त्रीसमाजमें स्त्रीस्वभावसुलभ लज्जा और सुशीलता कितनी थी।

स्याम सरीरु सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥ १॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥ २॥
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बालरबि दामिनि जोती॥ ३॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥ ४॥

शब्दार्थ—**सुभाय**=स्वाभाविक, बिना किसी शृङ्गारके ही। **जावक** (यावक)=महावर।

अर्थ—साँवला शरीर स्वाभाविक ही सुन्दर है। करोड़ों कामदेवोंकी शोभाको लज्जित करनेवाला है॥ १॥ महावरसे युक्त (अर्थात् महावर लगे हुए) चरणकमल शोभा दे रहे हैं कि जिनमें मुनियोंके मनरूपी भौंरे छाये रहते हैं॥ २॥ पवित्र मन हरनेवाली सुन्दर पीली धोती प्रात:कालके उदयकालीन सूर्य और बिजलीकी ज्योतिको हरे लेती है॥ ३॥ सुन्दर किंकिणी और कटिसूत्र (करधनी, तागड़ी) मनको हरनेवाले हैं। विशाल (घुटनेपर्यन्त लम्बी भुजाओंमें सुन्दर विभूषण पहने) हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ *'स्याम सरीरु सुभाय……'* इति। (क) स्त्रियोंकी भावना शृङ्गारकी है, और शृङ्गारका वर्ण श्याम है—'**श्यामो भवति शृङ्गार:**'। इसीसे शृङ्गारवर्णनमें प्रथम श्यामरंगका ही वर्णन किया। (ख) *'सुभाय सुहावन'* कहनेका भाव कि आगे आभूषणोंसे श्यामशरीरकी शोभा कहनेको हैं (इससे कोई यह न समझ बैठे कि शरीर स्वयं सुहावन नहीं है), इसीसे यहाँ प्रथम ही कहे देते हैं कि श्यामशरीर स्वाभाविक ही सुन्दर है, कुछ आभूषणोंसे नहीं। (ग) यहाँ श्यामशरीरकी कोई उपमा नहीं दी, क्योंकि पूर्व लिख चुके हैं, यथा—*'नीलसरोरुह नील मनि नील नीरधर श्याम॥'* (१४६) (*'केकिकंठदुति श्यामल अंगा॥'* (३१६। १) (घ) *'सोभा कोटि मनोज लजावन'* इति।

कामदेवको लजानेवाला कहनेका भाव कि कामदेव श्याम है और श्रीरामजीका शरीर भी श्याम है, इसीसे सर्वत्र कामका ही लज्जित होना लिखते हैं। यथा—*'नील सरोरुह………। लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥'* (१। १४६) तथा यहाँ।

टिप्पणी—२ (क) *'जावक जुत…'* इति। *'पद कमल'* कहनेका भाव कि चरणोंकी ललायी कमलकी ललायीके समान है, उनकी-सी ललायी महावरमें नहीं है। यहाँ चरणोंकी शोभा महावरसे नहीं कहते, वे सहज ही सुन्दर हैं। *'मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए'*—चरणोंमें मुनिके मन छाये रहते हैं। यह भी चरणोंकी शोभा है। *'जावक जुत पद कमल सुहाए'* यह चरणोंके रूपकी शोभा है—(महावर चरणोंके ऊपरी भागमें, अँगुलियोंमें और पैरके चारों ओर लगाया जाता है। यह लाल रंगका होता है जो लाखसे बनाया जाता है। विवाह आदि मङ्गल अवसरोंपर ही दूलहके चरण इससे चित्रित किये जाते हैं, नहीं तो केवल सौभाग्यवती स्त्रियाँ ही इससे अपने चरणोंको चित्रित करती हैं। प्राय: नाइनोंद्वारा महावर लगवाया जाता है। महावरकी विचित्र रचना भी सुन्दर लगती है, यह विवाह-समयकी शोभा है। *'मुनि मन……'* यह चरणोंके माहात्म्यकी शोभा है। (ध्यान तलवों और नखोंका किया जाता है। विशेषकर तलवों और चरणचिह्नोंका ध्यान पाया जाता है; इस तरह *'मुनि मन……'* से पदतलकी शोभाको ले सकते हैं)। (ख) *'मुनि मन मधुप रहत……'* इति। (मुनिके मन मधुप हैं। भौंरे कमलमकरन्दका पान करते हैं।) मन पदकमलके मकरन्दका पान करते हैं, इसीसे पदको *'सुहाये'* कहते हैं। पदकमलोंकी शोभा ही उनका मकरन्द है, यथा—*'मुख सरोज मकरंद छबि करै मधुप इव पान॥'* (२३१) छबि और शोभा पर्याय हैं। (ग) *'छाए'* का भाव कि भ्रमर कमलको छोड़कर चला भी जाता है पर मुनिके मन-मधुप प्रभुके चरणोंका दिन और रात बराबर सेवन करते हैं, कभी साथ नहीं छोड़ते। यथा—*'रामचरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू॥'* (१। १७। ४) (अथवा, जैसे भौंरा दिन-रात साथ नहीं छोड़ता, वैसे ही मुनि-मन सदा साथ रहते हैं। भौंरा रात्रिमें कमलके भीतर बंद हो जाता है, मुनिके मन चरणोंके ध्यानमें सोते हैं। भौंरा रात्रिमें मकरन्द पान नहीं करता पर मुनियोंके मन रात्रिमें भी सेवन करते हैं, यह विशेषता है)।

टिप्पणी—३ *'पीत पुनीत मनोहर धोती……'* इति। (क) विवाहमें वर पीला वस्त्र धारण करता है (और श्रीरामजीके ध्यानमें सर्वत्र पीताम्बर धोती कही गयी है)। *'पुनीत'* कहकर रेशमी सूचित किया। *'पीत पुनीत'* अर्थात् पीताम्बरी है। (बाबा हरिहरप्रसादजीका मत है कि पीतरंग और दोनों ओर अँचरावली होनेसे *'पुनीत'* कहा।) *'मनोहर'* अर्थात् बनावट सुन्दर है। (ख) *'हरति बालरबि दामिनि जोती'* इति। *'हरति'* का भाव कि जैसे सूर्यकी द्युतिके आगे चन्द्रमाकी द्युति हर जाती है वैसे ही पीताम्बरी धोतीकी द्युतिके आगे बालरवि और दामिनीकी द्युति हर जाती है। बालरविकी ज्योतिको हरण करती है अर्थात् बहुत प्रकाशमान है, उसमेंसे किरणें उत्पन्न होती हैं।*'हरति दामिनि जोती'* से जनाया कि बहुत चमचमाती है। *'बालरबि'* कहकर सूचित किया कि कुछ अरुणता लिये हुए है। [बालरविकी किरणें सुनहली होती हैं, इससे रङ्ग लिया और बिजलीसे चमक और चकाचौंधका भाव लिया। *'हरति बालरबि……'* का भाव कि रङ्ग और चमकमें दोनों मिलकर भी पीताम्बरके सादृश्यको नहीं पहुँच सकते। (गौड़जी)]

टिप्पणी—४ *'कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर……'* इति। *'कल'* कहकर मधुर ध्वनि करनेवाली जनाया, यथा—*'कलौ तु मधुरध्वनिः'*। *'कटिसूत्र'* को मनोहर कहकर सूचित किया कि यह बड़ी कारीगरीसे बनाया गया है। *'बिभूषन'*-विशेष भूषण हैं अर्थात् भारी मूल्यके हैं, सुन्दर हैं, बनावट उत्तम है।

पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई॥ ५॥
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषन राजे॥ ६॥
पिअर उपरना काँखा-सोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥ ७॥
नयन कमल कल कुंडल काना। बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥ ८॥

सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा॥ ९॥
सोहत मौरु मनोहर माथें। मंगलमय मुकुता मनि गाथें॥ १०॥

शब्दार्थ—**मुद्रिका**=वह अँगूठी जिसपर नाम या चिह्न नगमें खुदा होता है। **पिअर**=पीला। **उपरना**=दुपट्टा। **काँखा-सोती**=दुपट्टा डालनेका एक ढङ्ग जिसमें दुपट्टेको बाएँ कंधे और पीठपरसे ले जाकर दाहिने बगलके नीचेसे निकालते हैं और फिर बाएँ कंधेपर डाल लेते हैं। जनेऊकी तरह दुपट्टा डालनेका ढङ्ग। ***आँचर*** (आँचल, अंचल)=बिना सिले हुए वस्त्रोंके दोनों छोरोंपरका भाग, पल्ला, छोर।

अर्थ—पीला जनेऊ बड़ी ही छबि दे रहा है। हाथकी अँगूठी चित्तको चुराये लेती है॥ ५॥ ब्याहसाज साजे हुए सोह रहे हैं। छाती चौड़ी है, उसपर उर-भूषण विराजमान हैं॥ ६॥ पीला दुपट्टा काँखासोती पड़ा है, उसके दोनों किनारों (छोरों) पर मणि और मोती लगे हुए हैं॥ ७॥ सुन्दर कमल-समान नेत्र हैं, कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं और मुख तो सम्पूर्ण सुन्दरताका खजाना ही है॥ ८॥ भौंहें सुन्दर हैं, नासिका मनोहर है। माथेपर तिलक सुन्दरताका निवासस्थान है॥ ९॥ माथेपर मङ्गलमय मणि-मुक्ताओंसे गुँथा हुआ सुन्दर मनोहर मौर सोह रहा है॥ १०॥

टिप्पणी—१ (क) ***'पीत जनेउ······'*** इति। बाहुका वर्णन किया। बाहुके समीप यज्ञोपवीत है, इसीसे यहाँ यज्ञोपवीतका वर्णन किया। यथा—***'केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुंदर तेऊ॥'*** (१४७। ७) ***'पीत जनेउ'***— श्रीरामजी सदा पीत जनेऊ धारण करते हैं, यथा—***'पीत यज्ञ उपबीत सुहाए।'*** (२४४। २) और विवाहमें तो पीत जनेऊ पहननेकी विधि ही है। ***'महाछबि देई'***—भाव कि श्याम रंगपर पीत रंगकी शोभा बहुत होती है, यही श्याम शरीरमें पीत जनेऊका महाछबि देना है। (ख) ***'कर मुद्रिका चोरि चितु लेई'*** इति। ***'कर मुद्रिका'*** कहनेका भाव कि मुद्रिका मुहरछापकी भी होती है तथा एक नवग्रह-शान्तिकी भी होती है और हाथमें पहननेकी होती है; यह मुद्रिका हाथमें पहननेवाली है। ***'चोरि चितु लेई'*** का भाव कि यह श्रीरघुनाथजीके हाथकी है उसपर भी अत्यन्त सुन्दर है, इसीसे चित्तको चुरा लेती है। 'चुरा लेने' का भाव कि मुद्रिकाको देखकर लोग विदेह हो जाते हैं तब वह चित्तको खींच लेती है।

टिप्पणी—२ (क) ***'उर आयत उर भूषन राजे'*** इति। उर विस्तृत है। यहाँ अङ्गका लक्षण कहनेसे पाया गया कि सब अङ्गोंके लक्षण भी दिखाये गये हैं। पद कमल अर्थात् अरुण हैं, ***'कटि सूत्र मनोहर'*** से कटिका पतली होना कहा, बाहु विशाल अर्थात् लम्बे हैं, वक्षःस्थल विस्तृत है। इसी तरह आगे ***'नयन कमल'*** से कमलदलसमान बड़े-बड़े जनाये। ये सब अङ्गोंके लक्षण हैं, यथा—***'राज लषन सब अंग तुम्हारे।*** (२। ११२) उर आयत है; इसीसे भूषण शोभा पा रहे हैं। 'उर-भूषण' बहुत हैं, इसीसे उनकी गणना न की। [मुक्तामाल, मणिहार, पदिक, मूँगमाल, वनमाल, वैजयन्तीहार इत्यादि; यथा—***'उर मुकुतामनिमाल मनोहर मनहुँ हंस अवली उड़ि आवति॥ हृदय पदिक भृगुचरन चिन्ह बर···'*** (गी० ७। १७),***'भृगु पद चिन्ह पदिक उर सोभित मुकुतमाल कुंकुम अनुलेपन'*** (गी० ७। १६), ***'रुचिर उर उपबीत राजत पदिक गजमनिहारु'*** (गी० ७। ८), ***'बिबिध कंकनहार उरसि गजमनिमाल मनहुँ बगपाँति जुग मिलि चली जलद ही।'*** (गी० ७। ६); ***'उरसि राजत पदिक ज्योति रचना अधिक, माल सुबिसाल चहु पास बनि गजमनी। श्याम नव जलद पर निरखि दिनकर कला, केतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन अनी॥'*** (गी० ७। ५), ***'उरसि तरुन तुलसिमाल, मंजुल मुकुतावलि जुत जागति जिय जोहैं। जनु कलिंदनंदिनी मनि-इंद्रनील सिखर परसि धँसति लसति हंसश्रेनि संकुल अधिको हैं'।*** (गी० ७। ४), ***'भ्राजत बनमाल उरसि तुलसिका प्रसून रचित बिबिध बिधि बनाई'*** (गी० ७। ३)। हमने गीतावलीके उदाहरण कई एक इसलिये दिये हैं कि इनमें उत्प्रेक्षाएँ सुन्दर-सुन्दर हैं जिनसे ***'राजे'*** का भाव निकल आता है।] (ख) ***'राजे'*** अर्थात् दीप्तिमान् हैं, मणियोंका प्रकाश हो रहा है। **'राज दीप्तौ'**।

टिप्पणी—३ ***'पिअर उपरना काँखा-सोती।······'*** इति। (क) पीत रङ्ग माङ्गलिक है। विवाहमें पीतवस्त्र धारण किये जाते हैं, इसीसे ग्रन्थकार सर्वत्र पीत लिखते हैं, यथा—***'पीत पुनीत मनोहर धोती', 'पीत जनेउ***

महाछबि देई', 'पीअर उपरना' इत्यादि। (ख) *'दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती'*—मणि-मोतीके लगनेसे पाया गया कि दुपट्टा कामदार है, कारचोबीका काम है, छोरोंपर मणि-मोतीका काम है। (ग) *'पीत'* से रङ्गकी, *'काँखा-सोती'* से पहनावेकी और *'लगे मनि मोती'* से बनावटकी शोभा कही। (घ) सर्वत्र सुन्दरतावाचक शब्द दिये, परंतु यहाँ *'पिअर उपरना……'* में नहीं दिया। भाव यह कि *'पीत'* की शोभा दो बार लिख आये—*'पीत पुनीत मनोहर धोती।……'* और *'पीत जनेउ महाछबि देई।……'*, इसीसे यहाँ शोभावाचक शब्द नहीं लिखा। (यहाँ भी समझ लेना चाहिये।)

टिप्पणी—४ *'नयन कमल कल कुंडल'* इति। (क) *'कल'* देहलीदीपक है। नयन कमलदलके समान बड़े और कर्णपर्यन्त हैं, यथा—*'अरुन-राजीव दल नयन करुनाअयन'* (गी० ७। ६), *'अरुन अंभोज-लोचन बिसाल'* (विनय०), **'कर्णान्तदीर्घनयनम्'** (स्तोत्र)। (ख) नेत्र कर्णपर्यन्त हैं, इसीसे उनके समीपस्थित कर्णोंकी शोभा वर्णन की। (ग) *'बदन सकल सौंदर्ज निधाना'* इति। *'सकल'* देहलीदीपक है,सकल बदन और सकल सौंदर्य। *'सकल बदन'* अर्थात् ठोढ़ी (चिबुक), ओष्ठ, दंतपंक्ति, कपोल ये सब सौन्दर्यनिधान हैं। *'सकल सौंदर्य'* अर्थात् बनावकी सुन्दरता, द्युतिकी सुन्दरता और लालित्यकी सुन्दरता (अथवा माधुर्य, लावण्य आदि जितने सुन्दरताके अङ्ग हैं वे सब)।

गौड़जी—जगज्जननी श्रीजानकीजीकी शोभाके प्रसङ्गमें कहा था कि *'सुंदरता कहँ सुंदर करई। छबि-गृह दीपसिखा जनु बरई॥'* अर्थात् कविगण जिसे सुन्दरता कहते हैं वह कैसी कल्पना हो सकती है और जिसे छबि कहते हैं वह कैसी शोभा हो सकती है, यह पहले कल्पनामें आ नहीं सकती थी। यहाँ कल्पनातीत महासुन्दरता और अगोचर छबिने प्रत्यक्ष होकर दिखा दिया कि देखो प्रकृत अलौकिक सौन्दर्य यह है जो कि सुन्दरताकी कल्पनासे भी अत्यन्त उँचा है, देखो प्रकृत अलौकिक छबि यह है, इसी छबिके एक रश्मिमात्रसे स्थूल सौन्दर्य सुशोभित है। वहाँ तो सुन्दरता-सुखमूलकी चर्चा है। यहाँ मुख 'सारे सौन्दर्यका खजाना' है। जो कुछ जहाँ कहीं सौन्दर्य है, इसी खजानेसे बरामद हुआ है, मगर यह वह खजाना है जिसके लिये श्रुति कहती है—**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥'** इसीमेंसे प्रकृतिका पूर्ण सौन्दर्य श्रीमैथिलीजीके रूपमें दूसरी ओर प्रकट है। पूर्णसे पूर्ण निकला फिर भी पूर्ण ही बचा।

टिप्पणी—५ (क) *'सुन्दर भृकुटि मनोहर नासा'* इति। *'भृकुटि मनोज चाप छबिहारी।'* (१४७। ४) में भृकुटिकी शोभाकी उपमा दे चुके हैं, इसीसे यहाँ *'सुंदर भृकुटि'* इतना ही कहा। (ख) *'भाल तिलकु रुचिरता निवासा'* का भाव कि तिलककी शोभाका निवास समस्त भाल (ललाट) में है, यथा—*'तिलक ललाट पटल दुतिकारी।'* (१४७। ४) [मिलान कीजिये—*'तिलक-रेख सोभा जनु चाकी।'* (२१९। ८) गीतावलीमें उत्प्रेक्षाद्वारा तिलककी शोभा यों कही गयी है—*'भृकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम रेखु। भ्रमर द्वै रबि किरनि ल्याए करन जनु उनमेखु॥'* (७। ९)*'भाल बिसाल बिकट भृकुटी बिच तिलक रेख रुचि राजे। मनहु मदन तम तकि मरकत धनु जुगल कनक सर साजे।'* (७।१२)]

टिप्पणी—६ *'सोहत मौरु मनोहर……'* इति। (क) *'मनोहर'* देहलीदीपक है। मौर भी मनोहर और मस्तक भी मनोहर। ऐसा ही पूर्व कहा है, यथा—*'रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस।'* (२१९) में चौतनी भी सुन्दर और सिर भी सुन्दर कहा गया। (ख) *'मंगलमय मुकुता मनि'* इति। *'मंगलमय'* कहनेसे पाया गया कि मुक्ता और मणि अमङ्गलमय भी होते हैं। मौर मङ्गलकी चीज है, इसीसे उसमें मङ्गलमय मुक्तामणि गुँथे हैं। मुक्ता और मणि पृथक्-पृथक् हैं। मणि अनेक रंगकी होती है, मौरमें अनेक रंगकी मणियाँ लगती हैं; इसीसे आगे छन्दमें मणिको पृथक् कहा है, यथा—*'गाथे महामनि मौरु मंजुल'।*

छंद—गाथें महामनि मौरु मंजुल अंग सब चित चोरहीं।
पुरनारि सुर सुंदरी बरहि बिलोकि सब तिन तोरहीं॥

मनि बसन भूषन बारि आरति करहिं मंगल गावहीं।
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं॥ १॥
कोहबरहि आने* कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइकै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइकै॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥ २॥

शब्दार्थ—**तिन तोरहीं**=बुरी नजरसे बचानेके लिये तिनका तोड़नेकी रस्म है। **लहकौर**=(कौर लहना), विवाहमें यह भी एक रीति है कि कोहबरमें दूलह और दुलहिन एक-दूसरेके मुँहमें घी वा दही-बताशा इत्यादिका कौर डालते हैं।=लह (=लघु)+ कौर (=ग्रास) =छोटे कौर—(मा० त० वि०)।

अर्थ—सुन्दर मौरमें महामणि गुँथे हुए हैं। सभी अंग चित्तको चुराये लेते हैं। नगरकी स्त्रियाँ और देवताओंकी स्त्रियाँ सभी दूलहको देख-देखकर तिनका तोड़ती हैं। मणि, वस्त्र और आभूषणोंको निछावर कर-करके आरती उतारती और मंगल गीत गाती हैं। देवता फूल बरसाते है। सूत, मागध और भाट सुयश सुनाते हैं॥ १॥ सुहागिनी स्त्रियाँ सुखपूर्वक कुँअर और कुमारीको कोहबरमें लायीं और मंगल गीत गा-गाकर बड़े प्रेमसे लौकिक रीति करने लगीं। गौरीजी रामचन्द्रजीको लहकौर सिखाती हैं और सरस्वतीजी सीताजीसे कहती हैं, अर्थात् सिखाती हैं कि श्रीरामजीको कौर खिलाओ। रनवास हास-विलासके आनन्दमें मग्न है, सभी जन्म लेनेका फल पा रही हैं॥ २॥

टिप्पणी—१(क) ***'गाथें महामनि मौरु'*** इति। प्रथम मुक्तामणि कह आये, यथा—***'मंगलमय मुकुता मनि गाथें'***। अब उनसे पृथक् 'महामणि' को कहते हैं। मौरमें अनेक रंग होते हैं, वैसे ही महामणि भी अनेक रंगोंकी होती हैं, सब रंगोंकी महामणियाँ इसमें गुँथी हैं। मौरकी शोभा दो बार कही—***'सोहत मौरु मनोहर......'*** और ***'गाथें महामनि मौरु मंजुल'***। एक बार ***'मनोहर गाथें'*** के सम्बन्धसे और एक बार मुक्ता-मणिके सम्बन्धसे। (ख) ***'अंग सब चित चोरहीं'***—सर्वाङ्गका वर्णन कर आये, इसीसे अब अन्तमें कहते हैं कि सभी अंग चितचोर हैं। ***'सब अंग'*** का भाव कि समस्त मूर्तिकी, संपूर्ण शरीरकी कौन कहे, प्रत्येक अंग पृथक्-पृथक् चित्तको चुरा लेता है। (ग) ***पुर नारि सुर सुंदरी बरहि बिलोकि'*** इति। भाव कि ***'पुनि पुनि रामहि चितव सिय.....।'*** (३२६) से लेकर यहाँतक श्रीजानकीजीका देखना कहा; अब स्त्रियोंका देखना कहते हैं। ये सब वरको देखकर तिनका तोड़ती हैं कि कहीं हमारी नजर न लग जाय। (घ) ***'मनि बसन भूषन बारि..........'*** इति। ऊपर जो कहा था कि ***'अंग सब चित चोरहीं'*** उसीको यहाँ चरितार्थ कर रहे हैं। सब स्त्रियोंके चित्तोंको चुरा लिया है, इसीसे निछावर कर-करके आरती करती हैं, चित्त सावधान नहीं है, नहीं तो आरती करके निछावर करतीं, जैसा विधान है। [प० प० प्र० स्वामीजी कहते हैं कि 'प्रथम निछावर और पीछे आरतीको ***'चित चोरहीं'*** का परिणाम बताना कहाँतक ठीक होगा, जब कि मानसमें अन्यत्र तीन स्थानोंमें यही अनुक्रम है।' अतः उन तीनों प्रसङ्गोंपर विचार किया जाता है। दो० ३४८ (६-७) में निछावरके पश्चात् आरतीका उल्लेख अवश्य है, पर वहाँ पुरवासी पहले दर्शन पाते और निछावर करते हैं। यह निछावर आरती करनेवाली स्त्रियोंकी नहीं है। स्त्रियोंका आरती करना आगे है। यथा—***'पुरबासिन्ह तब राउ जोहारे। देखत रामहि भये सुखारे॥ करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा॥ आरति करहि मुदित पुरनारी।'*** बालकाण्डमें केवल एक और स्थानपर निछावर शब्द पहले है, यथा—***'रूपसिंधु सब बंधु लखि हरखि उठी रनिवासु। करहिं निछावरि आरती महामुदित मन सासु॥'*** (३३५) पर यहाँ सासुएँ प्रेमविवश हैं, यथा—***'प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागी'***, इससे निछावर

* आनि—१६६१

पहले करें या पीछे इसका विचार नहीं रह गया। उत्तरकाण्डमें (९। ५—७) में भी निछावरके पश्चात् आरतीका प्रसङ्ग है। यथा—*'जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहिं असीस हरष उर भरहीं॥ कंचन थार आरती नाना। जुबती सजें करहिं कल गाना॥ करहिं आरती आरतिहर कें।'* परन्तु प्रसंगसे स्पष्ट है कि आरती करनेवाली युवतीगण दूसरी हैं और निछावर करनेवाली दूसरी हैं। अन्य सभी स्थानोंमें, १९४ (५), ३१९ छंद, ३४९ (१-२), ३५० (४-५) तथा ७। ७ (५-६) में आरती और निछावरका क्रम ठीक ही है। अतः मेरी समझमें पं० रामकुमारजीके भावमें कोई असंगति नहीं है।](ङ) *'सुर सुमन बरिसहिं'*—जब श्रीरामजी कोहबरमें जाने लगे तब उनके ऊपर फूल बरसाये और बंदी आदि सुयश सुनाने लगे।

टिप्पणी—२ *'कोहबरहिं आने कुँअर कुँअरि'*"" इति। (क) *'दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइकै।'* (३२६ छन्द ४) उपक्रम है और *'कोहबरहिं आने'*"" उपसंहार है। उपक्रममें *'दुलहिनिन्ह'* बहुवचन कहा और यहाँ *'कुँअर कुँअरि'* एकवचन कहते हैं, इसमें अभिप्राय यह है कि चौकपरसे चारों जोड़ियोंको एक साथ लेकर चली थीं, इसीसे वहाँ ले चलनेके समय बहुवचन शब्द दिया। परन्तु जब कोहबरके भीतर जाने लगीं तब चारों जोड़ियाँ पृथक्-पृथक् हो गयीं; क्योंकि चारों जोड़ियोंके लिये कोहबर पृथक्-पृथक् बने हैं, अतएव *'कोहबरहि आने'* के साथ एकवचन *'कुँअर कुँअरि'* कहा। *'सुआसिनिन्ह'* बहुवचन कहकर जनाया कि प्रत्येक जोड़ीके साथ बहुत-बहुत सुवासिनी स्त्रियाँ हैं। (ख) *'सुख पाइकै'* इति। कोहबरमें कोई पुरुष नहीं है जिनको देखकर संकोच हो, अतः सुवासिनियाँ सुख पा रही हैं कि एकान्तमें खूब अच्छी तरह दर्शन करेंगी, बोलेंगी, बातचीत करेंगी और हास्य करेंगी। इनका हास्य करना उचित है, इसीसे सुखी हो रही हैं। (ग) *'अति प्रीति'*"" इति। कोहबरमें वेदरीति या कुलरीति नहीं होती केवल लोकरीति होती है, बत्ती मिलायी जाती है, अर्थात् एक दीपकमें दो बत्तियाँ जलायी जाती हैं, वरसे उन दोनोंको मिलानेको कहा जाता है, इत्यादि। *'अति प्रीति'* से जनाया कि लौकिक रीति करनेमें स्त्रियोंको बड़ा प्रेम होता है। ['लौकिक रीति' कहकर जनाया कि इसमें जो उचित-अनुचित व्यवहार होते हैं, वह हास्यनिमित्त किये जाते हैं, इससे वे दोष नहीं माने जाते। कोहबरकी रीति प्रान्त-प्रान्तकी कौन कहे थोड़ी-ही-थोड़ी दूरमें नयी-नयी देखनेमें आती है। कन्याके मुखमें गरी, सुपारी आदि रखकर फिर उसीको पानमें रखकर वरको खिला देती हैं, कहीं मिस्सी पानमें छोड़कर खिलाती हैं और उसके द्वारा फिर बहुत हास्य करती हैं। कहीं कन्याके वस्त्र बिछावनके नीचे बिछा देती हैं और उसीसे वरका मुँह पोंछती हैं। कहीं दूध और पानी मिलाकर थालमें रखती हैं और उसमे अँगूठी छोड़कर वर और कन्या दोनोंसे ढूढ़नेको कहती हैं, कन्याने पहले निकाल लिया तो उसकी जीत हुई। वर निकाल ले तो उसकी जीत। इस तरह सात बार खेल खिलाती हैं, और गालियाँ देती हैं।] (घ) *'लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं'* *'सीय सन सारद कहैं'* इति। श्रीराम-जानकीजीको गौरी और शारदा सिखाती हैं, इस कथनसे यह सूचित किया कि और भाइयों और दुलहिनोंको अन्य देवताओंकी स्त्रियाँ लहकौर सिखाती हैं। पूर्व कह आये हैं कि *'सची सारदा रमा भवानी।'"मिलीं सकल रनिवासहि जाई॥'* (१। ३१८) इनमेंसे भवानी श्रीरामजीको और शारदा श्रीसियजूको सिखाती हैं। भवानीके समीप रमाको चौपाईमें कहा है और शचीको शारदाके समीप, इससे सिद्ध हुआ कि रमा दूलहके पक्षकी और शची दुलहिनके पक्षकी हैं। रमा भरतजीको सिखाती हैं और शची माण्डवीजीको। अब रहीं दो जोड़ियाँ, इनको सिखानेवाली देवाङ्गनाएँ कौन हैं? पूर्व कह आये कि *'बिधि हरि हर दिसिपति दिनराऊ'* कपट वेषसे बारातमें मिल गये। इनमेंसे विधि, हरि और हर तीनकी शक्तियोंको कह चुके। दिशिपतियोंमें पूर्वादिके क्रमसे पूर्वके स्वामी इन्द्र हैं, इनकी शक्ति शची हैं, सो भी ऊपर आ गयीं, इसके पश्चात् क्रमसे अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य हैं। अग्नि, यम और राक्षस क्रमसे इनके स्वामी हैं। अग्निकी शक्ति स्वाहा, यमकी मृत्यु और राक्षसोंकी राक्षसी हैं—ये सिखानेके योग्य नहीं हैं। तत्पश्चात् पश्चिमके पति वरुण और उत्तरके कुबेर हैं। वरुणकी स्त्री उर्मिलाजीको सिखाती हैं और कुबेरकी स्त्री लक्ष्मणजीको। *'दिनराऊ'* से अष्टलोकपालका अर्थ किया गया था। इसमेंसे और तो

आ गये, सूर्य और चन्द्रमा शेष रहे। सूर्यकी स्त्री संज्ञा हैं, यह श्रुतिकीर्तिजीको सिखाती हैं और चन्द्रमाकी स्त्री रोहिणी शत्रुघ्नजीको सिखाती हैं। (ङ) *'रनिवास हास बिलास रस बस'* अर्थात् रनिवास हास्यरसके विलास अर्थात् आनन्दके वश है। (हमने 'हास-विलासके आनन्दके वश' अर्थात् उसमें मग्न ऐसा अर्थ किया है।) रनवास कहनेसे समस्त स्त्रियोंका ग्रहण हुआ, क्योंकि सभी रनवासमें मिली हैं, यथा—*'मिलीं सकल रनवासहि जाई।'* (३१८। ७) सब स्त्रियाँ हँस रही हैं। हँसनेमें आशय यह है कि जब श्रीरामजी ग्रास लेनेके लिये मुँह फैलाते हैं तब श्रीजानकीजी ग्रासका हाथ खींच लेती हैं, मुखके सामने ग्रास ले गयीं और फिर दिये नहीं तब सब हँसने लगती हैं।

नोट—*'लहकौर'......'हास बिलास रस बस'* इति। भाव यह कि शारदाजीने श्रीसीताजीसे कहा कि कौर हाथसे उठाकर श्रीरामजीको खिलाओ, जब कौर उठाकर श्रीसीताजीका हाथ पकड़े हुए सरस्वतीजी पास ले जाती हैं और श्रीरामजी मुँह खोलते हैं, बस तभी ये सीताजीका हाथ हटा लेती हैं। इसी प्रकार रामजी हास करते हैं। यह कौतुक देख हास-विलासका आनन्द हो रहा है। कोहबरमें वरसे कई प्रकारसे हास-विलास किया जाता है। यथा—कपड़ेमें छिपाकर उसकी जूती उसीसे धोखेसे पुजाना चाहतीं, वरको दूलहिनका जूठा खिलानेका प्रयत्न करती हैं, लहकौर सिखानेपर हँसी करती हैं कि दुलहिनके जूठनमें आज जैसा स्वाद मिला होगा वैसा क्यों कभी मिला होगा और खा लो इत्यादि। श्रीजानकीमङ्गलसे मिलान कीजिये—*'चतुर नारि बर कुँवरिहिं रीति सिखावहिं। देहिं गारि लहकौर समय सुख पावहिं॥ जुवा खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह। जीतिहारि मिस देहिं गारि दुहुँ रानिन्ह॥'* (९३) देवतीर्थस्वामीजीका एक पद इसपर यह है—*'करन लगे राम सिया गुरबानी। हँसि हँसि गौरि सिखावति रामहिं सियहिं सिखावति हैं ब्रह्मानी॥ पंचभूत पाँचों कर साखा लेइ कवर समतानी। समता सो सियमुखमें रघुपति देत ब्रह्मरस जानी॥ सिया देति रघुपतिके मुखमें पंचामृत रससानी। रही एकता छिपि दोउन की सो यहि थल फरिआनी॥ गुड़ सो रस दधि से नहिं उबिठै प्रेम अटूट निसानी। मुदित होहिं गुन शक्ति देवता यह रहस्य पहिचानी॥'* (श्रीरामरंगग्रन्थ १—३)

कोहबरमें वरसे सरहजें आदि हँसी करती हैं। देवतीर्थस्वामीके ये पद इसपर हैं—(क) *'हँसि हँसि पूँछति हैं रघुबर से कौतुकघरमें नारी। तुमहि जगतको सार कहत मुनि, कहि न सकहिं हम डर सें॥ तुम्ह नहिं पुरुष न नारि कहत श्रुति, खेलउ खेल मकर सें। सोइ लखि परत मकर कुंडल से और किशोर उमर सें॥ दशरथ गौर कौशिला गोरी तुम साँवर केहि घर सें। दोउनकौ हरि ध्यान प्रगट भा अस हमरी अँटकर सें॥ बिंग चतुरता गारी सुनि कै देखा राम नजर सें। भईं कृतारथ देव मनावहिं जिनि ये जाहिं नगर सें॥'* (रामरंगग्रंथ १—४। ईमन) (ख) *'मिथिला अवध कै हास बिलासु सुनि सुनि बढ़त हुलास॥ अहँरत पर पुरुषहि से तुमहुँ रहहु जनकके पास। अहाँ अयोध्या तुमहुँ बिदेहा तनिक न हौंस हवास॥ जरिहा तबटा लोग अहाँके उहऊँ बिदग्ध नेवास। अहँके देस कनीक अनरसा राउर दही मिठास॥ अहँ कै बचन अहमकारे कस तोहरिउ छी परकास। अहँ कै दसरथ राव तुम्हारेउ निमि औ नेम दुहाँस॥ अहँके छधि चकवै प्रिय तोहरिब चक्रधरहि की आस। देव मुदित सियराम मुदित मन मुदित होत रनिवास॥'* (जानकीबिंदु १—४। धनाश्री)

छन्द—निज पानि मनि महुँ देखियति* मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।
बर कुँअरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं॥ ३॥

---

* देखि प्रतिमूरति—१७२१, १७६२, छ०, को० रा०। देखि पति मूरति—१७०४। देखियति मूरति—१६६१।

तेहि समय सुनिअ असीस जहँ तहँ नगर नभ आनँदु महा।
चिरु जिअहु जोरी चारु चार्‌यो मुदित मन सब ही कहा॥
जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनीं।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय* भनी॥ ४॥

दो०—सहित बधूटिन्ह कुँअर सब तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास॥ ३२७॥

शब्दार्थ—**मूरति** (मूर्ति)=प्रतिबिम्ब, परछाही; सूरत शकल। **चालना**=चलाना, हिलाना डुलाना। **भुजबल्ली**=भुजलता। स्त्रियोंकी भुजाओंको 'बल्ली वा लता' कहते हैं। 'दण्ड' पुरुषोंकी भुजाओंके साथ और 'बल्ली' स्त्रियोंकी भुजाओंके साथ प्रयुक्त होता है। लता कोमल और सुकुमार होती है, दण्ड कठोर और बलवान् होता है।

अर्थ—अपने हाथकी मणियोंमें स्वरूपनिधान श्रीरामचन्द्रजीका प्रतिबिम्ब देखकर श्रीजानकीजी दर्शनमें वियोग होनेके डरके वश भुजबल्ली और दृष्टिको हटाती नहीं, हास-विलास, विनोद, प्रकर्ष आनन्द और प्रेम कहा नहीं जा सकता, सखियाँ ही जानती हैं। सब सखियाँ सब सुन्दर दूलह-दुलहिनोंको जनवासेको लिवा ले चलीं॥ ३॥ उस समय नगर और आकाशमें जहाँ देखिये तहाँ ही आशीर्वाद सुनायी दे रहा है, सर्वत्र महान् आनन्द छा रहा है, सभी प्रसन्न मनसे कहते हैं कि सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरजीवी हों। योगीश्वर, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओंने प्रभुको देखकर नगाड़े बजाये और फूल बरसाकर जय जय जय कहते हुए हर्षपूर्वक अपने-अपने लोकोंको चले॥ ४॥ तब सब कुँवर बहुओंसमेत पिताके पास आये। शोभा और आनन्द-मङ्गलसे भरकर मानो जनवासा उमड़ पड़ा॥ ३२७॥

टिप्पणी—१ *'निज पानि मनि महुँ देखियति·····'* इति। [(क) सखियों और कुलवृद्धाओंकी लज्जासे सम्मुख देखनेमें संकुचित होती हैं, इससे हाथकी अंगूठी, आरसी इत्यादिके नगोंमें अपने प्रियतम प्यारेकी छबिका दर्शन करती हैं। हाथ हटाने वा हिलानेसे दर्शन न होगा, दर्शन न होनेसे विरह सतावेगा; इसी भयसे कि दर्शनका वियोग न हो जाय, वे हाथ नहीं चलातीं, न उठाती हैं, न हिलाती-डुलाती हैं, यद्यपि सखियाँ कहती हैं। हाथ न उठानेसे उनके भाईकी स्त्रियाँ उनसे हँसी करती हैं] श्रीजानकीजी लज्जावश साक्षात् श्रीरामजीको नहीं देख सकतीं, केवल चित्रका दर्शन करती हैं। (ख) *'चालति न भुजबल्ली'* कहनेका भाव कि शारदा सीताजीसे कहती हैं कि ग्रास उठाकर श्रीरामजीको खिलाओ तब वे भुजा नहीं उठातीं। न उठानेका कारण बताते हैं—*'बिरह भय बस'*। विरहके वश हो जानेका भय है। *'भुजबल्ली'* का भाव कि जैसे बल्ली जड़ है, वैसे ही भुजा जड़ हो गयी है। *'चालति न भुजबल्ली बिलोकनि'* अर्थात् न भुजा हिलाती हैं और न दृष्टि ही चलाती हैं; इस कथनका तात्पर्य यह है कि अनेक भूषण हैं और उनमें अनेक मणियाँ हैं, अनेक मणियोंमें अनेक मूर्तियाँ हैं, परंतु वे एक मूर्तिको छोड़कर दूसरीको नहीं देखतीं (क्योंकि एक नगसे दूसरेपर दृष्टि डालनेमें जितना समय लगेगा उतनी देर मूर्तिका वियोग हो जायगा और वियोगसे विरह होगा); अभिप्राय यह है कि एक पलभरका विक्षेप नहीं करतीं। मिलान कीजिये—*'दूलह श्रीरघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं। गावहिं गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुआ जुरि बिप्र पढ़ाहीं। रामको रूप निहारति जानकि कंकनके नगकी परिछाहीं। याते सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं॥'* (क० १। १७) (ग) *'कौतुक बिनोद प्रमोदु'* इति। लहकौरमें कौतुक (हास आदि) हुआ। जूआ खिलाती हैं, थालमें या परातमें आभूषण छोड़ती हैं और कहती हैं कि देखें दोनोंमेंसे कौन प्रथम

* जय जय भनी—१६६१।

उठा लेता है। उनमें भी खूब हँसी-दिल्लगी होती है—यह विनोद अर्थात् क्रीड़ा है। प्रमोद अर्थात् प्रकर्ष आनन्दका भाव कि विवाह देखकर *'मोद'* हुआ और कोहबरमें कौतुक-विनोदसे प्रकर्ष मोद हुआ; कारण कि विवाहमें श्रीरामजीके दर्शनोंसे सुख हो रहा था और यहाँ एक तो एकान्तका दर्शन, दूसरे उसपर भी हास्यरसका आनन्द मिला। (घ) *'न जाइ कहि जानहिं अली'* इति। भाव यह कि सखियाँ जानती हैं पर वे भी कह नहीं सकतीं (दूसरा जानता ही नहीं तब कहेगा क्या?) *'न जाइ कहि'* कहकर कोहबरकी कथामें इति लगाते हैं (ङ) *'बर कुँअरि सुंदर सकल सखी लवाइ·········'* इति। यहाँ लिवा ले चलनेका क्रम दिखाते हैं। जिस क्रमसे वे चलीं वही यहाँ लिखते हैं—वर सबसे आगे है, उसके पीछे 'कुँअरि' है और कुँअरिके पीछे सखियाँ हैं। *'सकल'* देहली-दीपक है। सकल वर और सकल कुँअरि अर्थात् चारों जोड़ियाँ और *'सकल सखी'* अर्थात् चारों बहनोंकी सखियाँ। (च) *'लवाइ जनवासेहि चलीं'*—यह रीति क्षत्रियोंकी है, उनके यहाँ विवाहमें दुलहिन (कोहबरके पश्चात्) विदा होती है, वही रीति यहाँ कहते हैं।

टिप्पणी—२ (क) *'तेहि समय सुनिय असीस·······'* इस चरणका अर्थ अगले चरणमें स्पष्ट करते हैं। *'चिरु जिअहु जोरी चारु चार्‌यो'* यह आशिष सुन पड़ता है। *'सब ही कहा'* यह *'असीस जहँ तहँ'* का अर्थ खुला। अर्थात् सब आशीर्वाद दे रहे हैं, जो जहाँ है वह वहींसे आशिष दे रहा है। पुन: *'जहँ तहँ नगर नभ'* कहकर जनाया कि सब जगह नभमें, नगरमें, उस स्थानपर, द्वारपर इत्यादि सब जगह आशीर्वाद सुन पड़ता है। *'तेहि समय'* कहनेका भाव कि यह ऐसा समय ही है कि आशीर्वाद दिया जाय, फूल बरसाये जायँ, नगाड़े बजाये जायँ, इत्यादि। जैसे जब श्रीदशरथजी महाराज पुत्रोंका विवाह कराके बाहर निकले तब *'बृन्दारकागन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले। दुंदुभी जयधुनि बेदधुनि नभनगर कौतूहल भले॥'* (१।३२६), वैसे ही जब श्रीरामजी भाइयोंसहित बाहर निकले तब आशीर्वाद और नभनगरमें महान् आनन्द हुआ। *'सुनिय असीस'* का भाव कि उस समय सब दिशाओंमें आशिष-ही-आशिष सुनायी पड़ता और कुछ नहीं सुन पड़ता था। (ख) *'नगर नभ आनँदु महा'* इति। नगरमें मनुष्योंको और आकाशमें देववृन्दको महान् आनन्द है। इस महान् आनन्दकी प्राप्तिमें देवताओंसे मनुष्य विशेष हैं, इसीसे *'नगर'* को प्रथम कहा। (ग) *'चिरु जिअहु जोरी चारु चार्‌यो मुदित ·······'* —चारों जोड़ियोंको चिरजीवी होनेका आशीर्वाद देनेसे ज्ञात हुआ कि चारों जोड़ियोंको देखकर महान् आनन्द हुआ। यथा—*'दीन्हि असीस देखि भल जोटा।'* (२६९।७), *'चिरु जिअहु'* यह आशीर्वाद देनेका भाव कि सब सुख पूर्णरूपसे हैं ही, पर सुखका भोग करनेके लिये बहुत आयु चाहिये; इसीसे बहुत कालतक जीवित रहनेका आशीर्वाद देते हैं। *'जोरी चारु'* कहनेका भाव कि चारों जोड़ियोंको देखकर महान् आनन्द हुआ, इसीसे जोड़ीकी सुन्दरताकी प्रशंसा करते हुए आशीर्वाद देते हैं *'मुदित मन सबही कहा'* का भाव कि प्रसन्न मनसे जो आशीर्वाद दिया जाता है वह सफल होता है।

टिप्पणी—३ (क) *'जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव'* इति। पूर्व कहा था कि *'बिधि हरि हर दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥'* उसमेंसे देवताओंमें जो श्रीरामजीका प्रभाव जानते हैं उन देवविशेषोंके नाम तो वहाँ स्पष्ट कहे गये—'विधि, हरि, हर दिक्पाल और लोकपाल'। इनके अतिरिक्त कौन हैं जो श्रीरघुवीर-प्रभाव जानते हैं। यह वहाँ न कहा था। उसे यहाँ कहते हैं। योगीन्द्र, सिद्ध और मुनीश ये प्रभाव जानते हैं। योगीन्द्र अर्थात् श्रेष्ठ योगी, सामान्य नहीं, मुनीश अर्थात् श्रेष्ठ मुनि सामान्य नहीं और सिद्ध तो विशेष हैं ही। प्रथम विशेष देवताओंके नाम दे चुके, इसीसे यहाँ *'देव'* के साथ विशेषतावाचक शब्द नहीं मिलाया गया। [योगीन्द्र जैसे कि याज्ञवल्क्य आदि, सिद्ध लोमशादि और मुनीश नारद, सनकादि (वै०)] (ख)—*'बिलोकि प्रभु'* से जनाया कि 'प्रभुभाव' से देखा अर्थात् ये हमारे स्वामी हैं इस भावसे देखकर। *'दुंदुभि हनीं'* नगाड़े बजाये, यह अपनी सेवा जनायी। (ग) *'चले हरषि बरषि प्रसून'*—फूल बरसाकर चले, क्योंकि विवाहोत्सवमें फूलके बरसानेके अवसर समाप्त हो गये, अब पुष्पवृष्टिका प्रयोजन नहीं रह गया। अत: जाते समय फूल बरसाते गये। जब श्रीरामजी श्रीअवधको प्रस्थान करेंगे तब फूल बरसानेका अवसर

होगा, तभी फिर आवेंगे। *'हरषि'* का भाव कि जैसे *'मुदित मन'* से चिरञ्जीवी होनेका आशीर्वाद दिया वैसे ही हर्षित होकर *'जय जय जय'* कहा। *'जय जय जय भनी'* अर्थात् बहुत दिन जियो और सबसे बड़े रहो (सबपर सदा विजयी हो)। तीन बार जय कहनेका भाव कि '**त्रिसत्या हि देवा:**' देवता सत्य सूचित करनेके लिये तीन बार कहते हैं। यथा—*'सत्य सत्य पन सत्य हमारा।'* (१५२। ५)

टिप्पणी—४ *'सहित बधूटिन्ह कुँअर सब'''''''* इति। (क) *'सहित बधूटिन्ह'* अर्थात् अपनी-अपनी स्त्रीके साँठ-गाँठ जोड़े (गठबन्धन किये) हुए। *'तब आए'* अर्थात् जब देवता लोग अपने-अपने लोकोंको चले गये तब पिताके पास आये। इस कथनसे जनाया कि यहाँतक देवता लोग फूल बरसाते, नगाड़े बजाते आये। *'पितु पास'* कहकर जनाया कि चारों भाई पिताके पास ही रहते हैं, पृथक् डेरा नहीं है। (ख) *'सोभा मंगल''''उमगेउ जनु जनवांस'* इति। जनवासेका उमगना कहकर सूचित किया कि जनवासा पहलेहीसे शोभा-मंगल-मोदसे भरा हुआ रहा है। अब बहुओंसहित चारों भाइयोंके आनेसे शोभा आदि अधिक हो गये। अथवा, चारों भाइयोंको देखकर जनवासेवाले उठकर खड़े हो गये, यही उमगना है। ['चारों पुत्रोंकी शोभा और मङ्गल-मोदसे जनवासा भरा हुआ था। जब वे चारों बधूटियोंसमेत आये तब वह उमग उठा और देवताओंका जय जय करके जाना उस उमङ्गका प्रभाव है।' (पाँड़ेजी) जनवासेको ले चलनेमें *'बर कुँअरि लवाइ चलीं'* कहा था। वर आगे हैं, दुलहिनें पीछे हैं। अत: जनवासेमें पहुँचनेपर *'सहित बधूटिन्ह'* कुँअरोंका पहुँचना कहा। जनवासेमें दूलहकी प्रधानता हुआ ही चाहे।]

प० प० प्र०—वाल्मीकीयमें चारों भाइयोंके विवाह साथ ही हो गये हैं। मानसमें वरके परिछनकी तैयारीसे विवाहकी समाप्तितक बारह छन्दोंका उपयोग किया गया है। तीनों भाइयोंके विवाह और विवाहके अङ्गोंका वर्णन भी बारह छन्दोंमें हुआ है। एक छन्द (३१६) उपक्रममें लगा है। इस रीतिसे विवाहमें पचीस छन्दोंका उपयोग हुआ। भाव यह कि—(क) मूल तत्त्व 'एक' ही है। यह तत्त्व 'अवतार वर' रूपमें रविकुलमें हुआ, और रवि द्वादशकलात्मक हैं। अत: बारह छन्दोंका प्रयोग हुआ। (ख) भरतादि भी परमात्मांश रविकुलमें ही प्रकट हुए, अत: इनके विवाहमें भी बारह छन्द हुए। शिवविवाहमें ११ छन्द हैं। (ग) हविके अर्धांशसे श्रीरामजी और शेष अर्धांशसे तीनों भ्राता हुए, इस कारण भी दोनोंमें छन्दोंकी समान संख्या हुई। (घ) विवाह साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण हो जानेपर उत्साह तो सदा कम हो जाता है, वैसे ही यहाँ भी देख लीजिये—दोहा ३२८ से ३३५ तक एक भी छन्द नहीं है। दोहा ३३६ के साथ फिर एक छन्द आता है, जब श्रीसुनयनाजी श्रीसीताजीको श्रीरामजीको समर्पित करके विनय करती हैं। (ङ) ☞ कवि छंदोंका प्रयोग तभी-तब किया करते हैं जब-जब वे किसी भी रसका परिपोष सीमातक करना चाहते हैं।

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती॥ १॥
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा॥ २॥
सादर सब के पाय पखारे। जथा जोगु पीढ़न्ह बैठारे॥ ३॥

शब्दार्थ—**जेवनार**=जो वस्तु जेई अर्थात् खायी जाय; भोजनके पदार्थ, रसोई।

अर्थ—फिर बहुत प्रकारकी रसोयी बनी (अर्थात् बहुत प्रकारके भोजन तैयार हुए। तब) श्रीजनकजीने बारातियोंको बुला भेजा॥ १॥ राजा दशरथजी पुत्रोंसहित चले। अनुपम वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ते जाते हैं॥ २॥ आदर-पूर्वक चरण धोये और यथायोग्य सबको पीढ़ोंपर बैठाया॥ ३॥

टिप्पणी—१ *'पुनि जेवनार भई'''''''* इति। (क) *'पुनि'* अर्थात् विवाह हो जानेपर। रसोई (बननेका प्रारम्भ कब हुआ और कितनी देरमें रसोई कब तैयार हो गयी, यह सब इस चौपाईसे सूचित हो जाता है। इस प्रकारकी) गोधूलिबेलामें विवाहका प्रारम्भ हुआ, तबसे लेकर रात्रिभरमें चारों भाइयोंके विवाह हुए। सबेरे जेवनार बनने लगी और मध्याह्नके पूर्व रसोई तैयार हो गयी। (क्योंकि यदि रात्रिमें रसोई बनाते तो बासी हो जाती,

वह स्वाद न रहता। दूसरे, बराती भी बिना स्नान-पूजन किये हुए भोजन करेंगे नहीं। जितनी देरमें सब लोगोंने अपने नित्यके आह्निक कर्म किये इतनी देरमें इधर पूरी रसोई तैयार हो गयी।) (ख) '*बहु भाँती*' का अर्थ आगे कवि स्वयं स्पष्ट करेंगे, यथा—'***भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहिं जाहिं बखाने॥ ''''''''चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥ छरस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती॥***' (३२९। २—५) (ग) '***पठए जनक बोलाइ बराती***' इति। भोजनके लिये बुलानेमें समधीको बारातसहित बुलाना न कहकर बारातियोंको बुलाना कहा। कारण यह कि भोजनमें बाराती ही मुख्य हैं। (भाव यह कि समधी दहेजसे प्रसन्न होता है, वर दुलहिन पाकर संतुष्ट होता है और बाराती उत्तम भोजन पाकर प्रसन्न होते हैं। अत: भोजनके लिये बुलानेमें बारातियोंको प्रधान रखा। यथा—'***भाँति अनेक भईं जेवनारा। सूपसास्त्र जस कछु ब्यवहारा॥''''सादर बोले सकल बराती॥***' (१।९९)

टिप्पणी—२ '***परत पाँवड़े बसन अनूपा।''''''''***' इति। (क) प्रथम बार (द्वारचारके समय) जब द्वारपर आये तब सब सवारीपर आये, क्योंकि प्रथम बार सवारियोंपर ही आनेकी चाल (रीति) है। अब भोजन करने चले हैं, इसीसे जनवासेसे राजमहलतक पाँवड़े पड़े। '***परत पाँवड़े***' कहनेका भाव कि जब चले तभी पाँवड़े बिछाये जाने लगे। पहलेसे नहीं बिछाये गये; क्योंकि यदि पहलेसे ही बिछा देते तो उनका अनेक प्रकारसे अशुद्ध हो जाना सम्भव है। जैसे कि उनपरसे कोई पशु-पक्षी ही निकल आये, अथवा ऊपरसे ही पक्षियोंने विष्ठा कर दी, कोई अज्ञानी सूद्र निकल गया इत्यादि। [श्रीअवधेशजीकी पूजा श्रीशङ्करजीके समान मानकर की गयी और बारातियोंका पूजन समधी-समान जानकर किया गया, श्रीवसिष्ठजीकी पूजा कुल-इष्टभावसे की गयी। इत्यादि पूर्व कह आये हैं—(दोहा ३२०, ३२१ में) जिस वस्तुको दूसरेने बरता वह फिर भगवान् अथवा पूज्य महात्माके कामकी नहीं रह जाती। यदि पाँवड़े पहलेसे ही बिछे रहते तो उनपरसे कोई-न-कोई चलता ही, जिससे वे साधुबोलीके अनुसार अमनिया न रह जाते] पुन:, '***परत पाँवड़े***' से दूसरा प्रयोजन दिखाते हैं कि जब जनकजी सामध करके राजाको मण्डपतले ले गये, तब उन्होंने स्वयं ही वस्त्र बिछाये; इसीसे उस समय '***देत पाँवड़े***' कहा, यथा—'***देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए॥***' (३२०। ८) उस समय द्वारसे मण्डपतक ही पाँवड़े बिछाने थे, इससे स्वयं बिछाया था और इस समय जनवासेसे घरतक बिछाना है, इसीसे सेवकोंने बिछाये। (अथवा, उस समय जनकजी साथ-साथ महाराजको मण्डपमें ले गये थे, इससे स्वयं पाँवड़े देते लाये थे और इस समय वे घरपर हैं, वे जनवासेमें बुलाने नहीं गये, किन्तु दूसरोंको बुलाने भेजा था। जो लोग जनवासेमें उनको लेने आये उन्होंने स्वयं बिछाया। बुलानेवालोंके नाम नहीं दिये हैं, इसीसे '***देत***' न कहकर '***परत***' कहा। बुलाने या बिछानेवालोंके नाम देते तब '***देत***' ही कहते।) पुन: दूसरा भाव '***परत***' का यह कि जिसे एक ठौर बिछाया उसीको फिर उठाकर दूसरी ठौर बिछावें सो नहीं, आगे दूसरे वस्त्र बिछाते हैं; वा, जिनको बिछाया वे जहाँ-के-तहाँ पड़े रहने दिये। '***परत***' से जनाया कि जैसे-जैसे बाराती चलते जाते हैं तैसे-तैसे उनके आगे पाँवड़े बिछते जाते हैं। (प्र० सं०)

☞ पाँवड़े बिछानेका उल्लेख मानसमें पाँच स्थानोंमें है। यथा—(१)'***बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं॥***' (३०६। ५) (अगवानी लेकर जनवासेमें ले जाते समय।) (२) '***पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना॥***' (३१९। ३) (द्वारचार हो जानेपर मण्डपको जाते समय।) (३) '***देत पाँवड़े अरघु सुहाए। सादर जनकु मंडपहिं ल्याए।***' (३२०।८) (दशरथजीको मण्डपको जाते समय।) (४) यहाँ और (५) '***निगम नीति कुल रीति करि अरघु पाँवड़े देत। बधुन्ह सहित सुत परछि सब चलीं लवाइ निकेत॥***' (३४९) (कौसल्या आदि माताएँ परिछन और आरती करके बधुओंसहित पुत्रोंको घरमें ले जा रही हैं।) इनमेंसे तीनमें '***परहिं***' और दोमें '***देत***' शब्द प्रयुक्त हुआ।

प्रज्ञानानन्द स्वामीजीका मत है कि '***देत***' शब्दका 'अपने हाथसे' ऐसा भाव निकालनेमें बड़ी असम्बद्धता निर्माण होगी। कारण कि 'तब मानना होगा कि सुनयनाजी अपने हाथ पाँवड़े न बिछाकर दामादको मण्डपमें ले जाती हैं और कौसल्यादि अपने हाथोंसे बिछाकर ले जाती हैं।' मेरी समझमें श्रीसुनयनाजीके हाथमें आरती है, इसीसे उन्होंने पाँवड़े स्वयं नहीं बिछाये। इसीसे '***पट पाँवड़े परहिं बिधि नाना***' कहकर '***करि***

आरती अरघु तिन्ह दीन्हा' कहा गया। कौसल्यादि माताएँ परिछन और आरती कर चुकी हैं, यथा—*'मुदित मातु परिछनि करहिं''''* ॥ ३४८॥ *'करहिं आरती बारहिं बारा॥'* [हाथ खाली हैं, अतः उनका स्वयं अर्घ्य और पाँवड़े देना कहा गया।] (ख) *'अनूप'* अर्थात् विचित्र हैं, बहुमूल्य हैं, रेशमी हैं इत्यादि। यथा—*'बसन' बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनद धन मदु परिहरहीं॥'* (३०६। ५) (ग) *'सुतन्ह समेत गवन कियो भूपा'* इति। *'सुतन्ह समेत'* से राजाकी शोभा कही जो पूर्व कह आये हैं, यथा—*'सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनु धारी॥'* (३१५। ६) *'नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनुधारी॥'* (३०९। २) (घ) भोजनार्थ बुलानेमें बारातियोंको प्रधान रखा था और चलनेमें राजाकी प्रधानता कही, क्योंकि पाँवड़ोंपर चलना राजाओंको सोहता है। [*'भूपा'* पद देकर जनाया कि ये राजा हैं, अतः इनके साथ पुत्रोंके अतिरिक्त मन्त्री, ब्राह्मण, साधु और परिजन सभी हैं। (प्र० सं०) बारात भोजनके लिये तभी जाती है जब समधी (वरका पिता) जाता है। आगे वह होता है, पीछे वा साथमें बाराती होते हैं। (जेवनारमें वर भी रहता है। जब वह भोजन करना प्रारम्भ करता है, तब और सब भोजन करते हैं। इन कारणोंसे राजाकी यहाँ प्रधानता चलनेमें कही, उनके साथ पुत्र और बाराती क्रमसे हैं। यह रीति है कि वरका पिता सबको लेकर जाता है।)]

टिप्पणी—३ *'सादर सबके पाय''''''''* इति (क) *'सादर'* का अन्वय दोनों चरणोंमें है। [*'सादर'* यह कि सोनेकी चौकी जिसपर मखमलके गद्दे पड़े हैं, उनपर बिठाकर मणि वा सोनेके कोपरमें चरणोंको रखकर अनुकूल सुगन्धित जलसे उनको धोकर अँगोछेसे पोंछते थे] (ख)—*'पखारे'* इति। यहाँ मुनियोंके चरणोंका प्रक्षालन कह रहे हैं, आगे पुत्रोंसहित राजाके चरणोंका प्रक्षालन कहते हैं। इस तरह प्रक्षालनमें दो कोटियाँ कीं। इसीसे प्रक्षालनका शब्द पृथक्-पृथक् रखा। मुनियोंके चरण *'पखारे'*। राजा और श्रीरामजी तथा तीनों भाइयोंके चरणोंको *'धोए'*। [*'सबके'* से यदि महर्षियोंको ही लेते हैं तो और बाराती रह जाते हैं, क्योंकि आगे और बारातियोंके चरणप्रक्षालनका वर्णन नहीं लिखा गया है। पूर्व सामधके पश्चात् जो बारातियोंके पूजनका क्रम है उसमें प्रथम वसिष्ठजी, विश्वामित्रजी, वामदेवादि ऋषि; फिर कोसलपति, और *'सकल बराती'* का पूजन है। (३२० छन्दसे ३२१। ४ तक) यदि वही क्रम यहाँ चरणप्रक्षालनमें बरता गया हो तब तो *'सबके'* से ऋषियोंका ही अर्थ होगा। उस हालतमें यह समझा जायगा कि अन्य क्षत्रियगणके चरण धोनेकी रीति न थी, इससे उनका चरण-प्रक्षालन नहीं कहा गया। जो ठीक नहीं जँचता। प० प० प्र० स्वामीजी कहते हैं कि *'पखारे'* और *'धोए'* इस शब्दभेदसे भाव-भेद निकालनेसे *'पखारे'* शब्दको अधिक गौरवसूचक मानना पड़ेगा, जिससे यह कहना पड़ेगा कि कन्यादानके पूर्व जब जनकजी *'पाय पुनीत पखारन लागे', 'लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली'*, *'ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु'* तब श्रीरामजीके चरणोंका अधिक गौरव था और अब उतना गौरव नहीं है, इसीसे इस समय उन्हींके चरणप्रक्षालन-समय *'बहुरि रामपद पंकज धोए'* कहते हैं। वस्तुतः *'पखारे'* और *'धोए'* पर्याय शब्द हैं। और *'सबके'* सभी बारातियोंके लिये हैं। जनकजीने स्वयं किनके चरण धोये यह बतानेके लिये *'धोये जनक अवधपति चरना'* से उपक्रम किया और *'धोए चरन निज पानी'* से उपसंहार किया गया।] (ग) *'जथा जोगु पीढ़न्ह बैठाए'* इति। *'जथा जोगु'* भी देहली-दीपक है। यथायोग्य सबके चरण पखारे और यथायोग्य पीढ़ोंपर बैठाया। 'यथायोग्य' से सूचित किया कि जिस क्रमसे पूर्व मण्डपतले मुनियोंका पूजन हुआ था उसी क्रमसे यहाँ पद-प्रक्षालन हुआ और आसन दिया गया। प्रथम श्रीवसिष्ठजीका चरण-प्रक्षालन करके तब श्रीविश्वामित्रजी और तत्पश्चात् वामदेवादि समस्त ऋषियोंका चरण-प्रक्षालन हुआ, यह क्रम पूर्व कह चुके हैं, इसीसे यहाँ क्रम नहीं लिखा। पीढ़े भी सामान्य और विशेष हैं। ये क्रमसे रखे हुए हैं, ऋषियोंको ला-लाकर क्रमसे यथायोग्य बैठाया। 'बैठाया' शब्दसे आदरपूर्वक बिठाना पाया गया। जैसे आदरसहित चरण धोये वैसे ही आदरसहित बैठाया गया। यदि अपनेहीसे जा-जाकर बैठ जाते तो बैठानेमें आदर न समझा जाता। (*'पीढ़न्ह''''''''पखारे'* पर विशेष आगे गौड़जीकी टिप्पणी है। *'आसन उचित'* चौ० ७ में देखिये)।

धोये जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥ ४॥
बहुरि रामपद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥ ५॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोए चरन जनक निज पानी॥ ६॥

अर्थ—श्रीजनकजीने अवधपति श्रीदशरथजीके चरण धोये। (उनका) शील और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ४॥ फिर (उन्होंने) श्रीरामजीके चरणकमल धोये, जिन्हें शिवजी (अपने) हृदय-कमलमें छिपाये रखते हैं॥ ५॥ तीनों भाइयोंको श्रीरामजीके समान जानकर जनकजीने अपने हाथोंसे (उनके भी) चरण धोये॥ ६॥

टिप्पणी—१ *'धोये जनक अवधपति चरना'*……' इति। (क) *'अवधपति'* का भाव कि जिस अवधपुरीके दर्शनमात्रसे समस्त पाप दूर हो जाते हैं, यथा—*'देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा॥'* (७। २९। ८) (और जो श्रीरामजीको अति प्रिय है), उसके ये पति हैं; इनके चरण-प्रक्षालनसे सम्पूर्ण पापोंका नाश होता है, इस भावनासे चरण धोये। (ख) *'सील'* से विनम्र, सिर नीचा किये हुए और संकोचयुक्त सूचित किया। अर्थात् जैसा बड़ोंके आगे अदब-लिहाज-कायदा (शिष्टाचार) होना चाहिये वैसा ही अदब-कायदा रखते हुए चरण धो रहे हैं। यथा—*'गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिर अवनि बिलोकी॥ सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न रामसम स्वामि सँकोची॥'* (२। ३१३) —(चित्रकूटमें गुरु और राजा जनक सभामें हैं। शीलसे श्रीरामजीने सकुचाकर सिर नीचा कर लिया, इसीको यहाँ शीलकी मुद्रा कही गयी है। यही शील है।) (ग) *'सील सनेह'*—शीलसे नम्रता, संकोच आदि बाहरकी शोभा कही और स्नेहसे भीतरकी शोभा कही। (श्रीदशरथजीपर इस 'शील सनेह' का इतना प्रभाव पड़ा कि बारात लौटनेपर भी उनका वर्णन करते थे, यथा—*'जनक सनेह सील करतूती। नृप सब भाँति सराह बिभूती॥'* (३३२। १) यह तो जनकपुरकी बात है, और, *'जनकराज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥ बहु बिधि भूप भाट जिमि बरनी।'* (३५४। ७-८), यह अवधमें रनिवासमेंकी बात है।)

टिप्पणी—२ *'बहुरि रामपद पंकज धोए'*……' इति। (क) *'जे हर हृदय कमल महुँ गोए'* अर्थात् जिन चरणोंका शिवजी ध्यान करते हैं, उन्हीं चरणोंको श्रीजनकजी प्रत्यक्ष इस भावसे धो रहे हैं कि ये चरण अत्यन्त दुर्लभ हैं, ये सदा श्रीशिवजीके हृदयमें बसते हैं, वही आज हमको साक्षात् प्राप्त हैं, हमारे धन्य भाग्य हैं। यथा—*'हर उर सर सरोज पद जेई। अहो भाग्य मैं देखिहउँ तेई॥'* (५। ४२) (ख) *'गोए'* कहनेका भाव कि श्रीरामजीके चरणकमलोंके योग्य सबका हृदय नहीं है। सबके हृदय कठोर हैं, मलिन हैं, अनेक वासनाएँरूपी मल उनमें लगा है तथापि सब कोई उन्हें अपने हृदयमें बसाना ही चाहता है, इसीसे वे श्रीशिवजीके हृदयमें जाकर छिप गये हैं। चरण कमल है और शिवजीका हृदय भी कमल है, अतः चरण कमलके बसनेके योग्य है अर्थात् कोमल है, सुन्दर है और पवित्र है। पुनः *'गोए'* का भाव कि जिसको महादेवजी कृपा करके दिखावें वही इन चरणोंको देख सकता है। (ग) *'पदपंकज'* और *'हृदयकमल'* अर्थात् चरणको और हरहृदय दोनोंको कमल कहकर सूचित किया कि श्रीरामजीके चरण और श्रीशिवजीका हृदय एक हो रहा है, उनका हृदय श्रीरामचरणोंमें लीन हो गया है। (शिवजीने ही जनकजीको आज्ञा दी थी कि धनुष तोड़नेकी प्रतिज्ञा श्रीसीताजीके विवाहके लिये करो। वही जनकजीने किया। अतः शङ्करजीकी कृपासे उन छिपे हुए चरणोंके स्पर्श और प्रक्षालनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुनः, *'जे हर हृदय कमल महुँ गोए'* यह विशेषण देनेका भाव कि श्रीरामजीके चरण उनमें परमात्मबुद्धि रखकर धोये, जामातृभावसे नहीं धोये।)

प० प० प्र०—श्रीशिवजी अवढर दानी हैं, इसीसे वे इन चरणोंको हृदयमें छिपाकर रखते हैं। यदि ऐसा न करते तो अनधिकारीको भी देना पड़ता। कमलको कमलमें रखनेसे दूसरे कमलका ज्ञान किसीको न हो सकेगा। इतना छिपाकर रखनेसे वे जनकजीको प्रत्यक्ष तनधारी होकर मिल गये और उन्हें उनके धोनेका असाधारण सौभाग्य प्राप्त हो गया। यह भाग्य श्रीशिवजीको नहीं मिला।

टिप्पणी—३ *'तीनिउ भाइ राम सम जानी।*……' इति। (क) *'राम सम जानी'* अर्थात् परमेश्वर-बुद्धिसे।

(श्रीरामजीमें परमेश्वरभाव रखकर ही उनके चरण धोये थे। इसीसे *'जे हर हृदय कमल महुँ गोए'* विशेषण दिया था।) वैसे ही इनके चरण धोये, जामातृ-भावसे नहीं किन्तु परमात्म-भावसे। *'राम सम'* अर्थात् सब रामरूप हैं, चतुर्व्यूह-अवतार हैं, सब एक पिण्डसे उत्पन्न हैं। (ख) *'निज पानी'*—भाव कि तीनोंमें ईश्वरबुद्धि हैं, तीनोंको रामसमान जानते हैं। अतः इनकी चरण-सेवाको परम दुर्लभ जानकर, यह समझते हुए कि ब्रह्मादि देवता भी इन चरणोंकी सेवाकी लालसा करते हैं, श्रीजनकजीने अपने हाथसे इनके चरण धोये, दूसरेसे नहीं धुलवाया। *'निज पानी'* से श्रीजनकजीकी भक्ति दिखायी। (बड़ेको छोटेका पैर धोना उचित नहीं, इस दोषके निवारणार्थ *'राम सम जानी'* कहा यह भी भाव लोग कहते हैं; परंतु जामाताके चरण श्वशुर धोता ही है, यह रीति है।)

नोट—☞ पं० रामकुमारजीके मतानुसार *'पखारे'* केवल ऋषियोंके लिये कहा गया। उस मतानुसार यहाँ यह भाव भी निकला कि जिस परातमें ऋषियोंके चरण धोये गये, उसी परातमें अथवा उस चरणोदकपर राजा और उनके पुत्र अपने चरण नहीं धुला सकते, उनके चरण अलग परातमें धोये गये—यह पृथक् शब्द देकर ही जना दिया गया।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी* सब लीन्हे॥ ७॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनिपान सवाँरे॥ ८॥
दो०—सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सबके परुसिगे चतुर सुआर बिनीत॥ ३२८॥

शब्दार्थ—**सूपकारी**=सूप (दाल) बनानेवाला। रसोईमें दाल मुख्य है, इसलिये रसोइयेको 'सूपकार' कहते हैं। **पनवारे**=पत्तल। **पान**=पत्ते। **सूपोदन**=सूप+ओदन=दाल-भात। **सुरभी** (सुरभि)= गऊ=सुगन्धित, बढ़िया। **सरपि**= घी, यथा—**'घृतमाज्यं हविः सर्पिर्नवनीतं नवोद्धृतम्।'** इति। (अमरकोश) **सुआर**= सूपकार, रसोइया। **बिनीत**=जिसमें उत्तम शिक्षाका संस्कार और शिष्टता हो, सुशील, विनययुक्त, विनम्र, शिष्ट। **परुसिगे**=परस गये। परसना। (सं० परिवेषणसे)= किसीके सामने भोज्य पदार्थ रखना। इस क्रियाका प्रयोग भोजन और भोजन करनेवाले दोनोंके लिये होता है।

अर्थ—राजाने सबको उचित आसन दिये। (फिर) सब रसोइयोंको बुला लिया॥ ७॥ आदरसहित पत्तलें पड़ने लगीं, जो मणियोंके पत्तोंसे सोनेकी कीलें लगाकर बनायी गयी थीं॥ ८॥ चतुर और विनीत रसोइये पवित्र और सुन्दर स्वादिष्ट दाल, भात और गायका सुगन्धित बढ़िया घी क्षणमात्रमें सबके सामने परस गये॥ ३२८॥

नोट—१ *'आसन उचित सबहि नृप दीन्हे'।* (क) आसन और पीढ़ा दोनोंका यहाँ एक ही अर्थ है, परन्तु यहाँ ऋषियोंकी पंगतको अलग दिखानेके विचारसे उनके लिये *'पीढ़न्ह बैठारे'* कहा और क्षत्रियोंकी पंगतमें *'आसन दीन्हे'* कहा। भिन्नता दिखानेके लिये भिन्न-भिन्न शब्दोंका प्रयोग किया। श्रीमान् गौड़जी कहते हैं कि पीढ़ा ब्राह्मणके लिये उपयुक्त था, जहाँ सात्त्विकता, सादापन आदिकी आवश्यकता थी। आसन, वैभव-ऐश्वर्यके अनुकूल कीमती जरी, मणिमुक्ता, हीरे आदिसे जटित राजाओंके लिये दिये गये। 'उचित' शब्द ऐसे अवसरपर अत्यन्त साभिप्राय है।

टिप्पणी—१ (क) *'आसन उचित सबहि नृप दीन्हे'* अर्थात् जैसे ब्राह्मणोंको यथायोग्य पीढ़ोंपर बैठाया; वैसे ही सब क्षत्रियोंको *'उचित'* अर्थात् यथायोग्य आसन दिये। 'यथायोग्य' का अर्थ 'यथा उचित' है, यह यहाँ स्पष्ट किया। आसन अर्थात् पीढ़ा। *'दीन्हा'* से जनाया कि आदरपूर्वक सबको बैठाया, जैसे ब्राह्मणोंको सादर बैठाया था। [यहाँ *'नृप'* शब्दसे कुशध्वज राजाको समझना उचित होगा क्योंकि वे

* सूपकारक—१७२१, छ०। सूपकारी—१६६१, १७०४, १७६२, को० रा०।

भी समधी हैं। ऐसे अवसरपर उन्हें भी सेवाका लाभ उठाने देना उचित है। (प० प० प्र०)] (ख) *'बोलि सूपकारी सब लीन्हे'* इति। चरण धोना, आसनपर बैठाना, यह सेवा राजाने स्वयं की, क्योंकि इसमें राजाकी शोभा है, भोजन परसनेमें राजाकी शोभा नहीं है, इसीसे रसोइयोंको बुलाया। भोजनके पदार्थ बहुत भाँतिके हैं और बारात भी बहुत बड़ी है। अत: *'सब'* रसोइयोंको बुलाया जिसमें परसनेमें देर न हो, लोगोंको बहुत देर बैठना न पड़ जाय। (ग) *'सब'* से यह भी सूचित किया कि व्यंजन बहुत हैं, यथा—*'छरस रुचिर ब्यंजन बहु भाँती। एक एक रस अगनित भाँती'।* जितने प्रकारके व्यंजन हैं उतने सूपकार हैं; एक-एक पदार्थ परसनेके लिये एक-एक रसोइया है। (पंगति बहुत बड़ी होनेपर एक ही व्यंजन दो, तीन या अधिक लोग परसते हैं।)

टिप्पणी—२ *'सादर लगे परन पनवारे।'''''''* इति। (क) *'सादर'* से सूचित करते हैं कि एक मूर्ति बहुत पत्तलें लिये हुए हैं और दूसरा दोनों हाथोंसे बारातियोंके आगे सँभालकर धीरेसे रखता है जिसमें शब्द न हो, क्योंकि मणियोंकी ही भूमि है और मणिके ही पत्तल हैं। (ख) बड़े लोग आदरसे प्रसन्न होते हैं, इसीसे सब सेवा आदरसे की गयी। आदरसे सबको बुलाया गया। यथा—*'परत पाँवड़े बसन अनूपा'* (पावड़े देते लाना आदर है)। आदरसे सबोंके चरण धोये और सबको आसनपर बैठाया। यथा—*'सादर सबके पाय पखारे। जथा जोगु पीढ़न्ह बैठारे॥'* आदरसे पनवारे पड़े;—*'सादर लगे परन''''''' '।* और आदरसहित आचमन कराया। यथा—*'आदर सहित आचमन दीन्हा।'* (३२९। ८)—[*'आदर'* शब्द आदि, मध्य और अन्त तीनोंमें देकर एकरस सत्कार सूचित किया। भोजनके पूर्व *'सादर'* चरण धोये, भोजनके लिये बैठानेपर पत्तलें *'सादर'* बिछायीं अर्थात् रखी गयीं और भोजनके अन्तमें *'आदर सहित'* आचमन कराया गया।—(प्र० सं०) *'लगे परन'*—पत्तल पड़ना मुहावरा है। भोजनके लिये पत्तल बिछाना, खानेवालेके सामने रखना 'पत्तल पड़ना' है] (ग) *'पनवारे'*—बारातका भोजन विवाह आदिमें पत्तलोंमें ही करानेकी रीति है, इसीसे मणिपत्रोंके पत्तल बनवाये गये, नहीं तो मणिकी थालियाँ या परात बनवाते। (रा० प्र० का मत है कि 'मणि' से पन्ना समझना चाहिये) (घ) *'सवाँरे'* से पत्तलोंके बनावको अत्यन्त सुन्दर जनाया।

नोट—२ *सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत'* इति। (क) 'नाता मिलानेके विचारसे प्रथम *'सूपोदन'* दाल-भात कहा और स्नेहहेतु *'सुरभी सरपि'* कहा।' (बाबा रामदासजी रामायणी) अर्थात् स्नेह चिकनाई स्निग्ध पदार्थका भी नाम है, और घृत भी चिकनाई है; अत: स्नेह-वृद्धि दोनोंमें हो, इसलिये *'सरपि'* कहा। (ख) जबतक कच्ची रसोई अर्थात् दाल-भात-रोटी इत्यादि दूलह और उसके परिवारवाले कन्याके यहाँ न पावें तब तक यह नहीं कह सकते कि सम्बन्ध पक्का हो गया। स्नेह और सम्बन्ध इसीसे समझा जाता है। पुनः, इससे जान पड़ता है कि आज भातकी रस्मका दिन था, इसीसे प्रथम दाल-भातका परोसना कहा। (ग)—यहाँ भोजन परोसनेका क्रम भी दिखाते हैं। पहले दाल परसी गयी तब भात और तब घी। यहाँ घृतमें सुगंध दिखानेके लिये *'सुरभी सरपि'* कहा।*'सुरभि'* सुगन्धको भी कहते हैं, यथा—*'सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।'* (पं० रामकुमारजी) (घ)—*'सुंदर स्वादु पुनीत'* इति। अर्थात् नवीन ताजा घी, बहुत दिनोंका रखा हुआ नहीं। पुराने घीमें न तो वह सुगन्ध रहती है और न वह स्वाद, जो ताजे घीमें होता है। पुराने घीकी रंगत भी कुछ-न-कुछ बदल जाती है। *'सुंदर स्वादु पुनीत'* का भाव कि घी देखनेमें सुंदर है, खानेमें स्वादिष्ट है और सबके ग्रहण करने योग्य है। *'पुनीत'* से जनाया कि शास्त्रवर्जित नहीं है। दूध बच्चावाली गऊका हो जिसे ब्याये हुए २१ दिन हो गये हों, गऊ नीरोग हो, ऐसी सवत्सा गऊके दूधका घी *'पुनीत'* कहलाता है। गर्भवती हो जानेपर भी जो दूध निकाला जाता है वह भी पवित्र नहीं होता और न वह दूध पवित्र है, जो बच्चेका पूरा भाग न देकर दुह लिया जाता है इत्यादि। अंग्रेजी राज्यके समय डेयरीफार्मसे जो दूध प्राप्त होता था और अब भी जहाँ-तहाँ वही रीति प्रचरित है, वह दूध अपुनीत है, क्योंकि बच्चा पैदा होते ही खौलते पानीमें डालकर मार डाला जाता था और दूध यन्त्रोंद्वारा निकाला जाता था)। मृतवत्सा जो 'तोरियाँ' कहलाती हैं, उन गायोंका घी